श्री ।

# मातृकाविलासः ।

( वर्णमातृकाजन्यसर्ववाङ्मयसंग्रहः )

सरडग्रामनिवासिकौशिकगोत्रजनुषा पण्डित-
मण्डलमण्डनेन श्रीवंशीधरपण्डितेन
संगृहीतः ।

Sa/
VAM

श्रेष्ठि
खेमराज श्रीकृष्णदासइत्यनेन
मुम्बय्यां
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये
मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

संवत् १९५३ शके १८१८

LIBRARY

श्रीः ।

# अथ मातृकाविलासानुक्रमणिका


| क्रमाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| १ | मङ्गलाचरणम् .... .... | १ |
| २ | ओंस्वस्ति श्रीगणेशाय नम इति दशाक्षरीविद्याया अनेकदेवतापरव्याख्यायां गणेशपरोऽर्थः .... .... .... | ” |
| ३ | अथ दशाक्षरीविद्याया विष्णुपक्षेऽर्थः .... .... .... | ३ |
| ४ | अथ महेश्वरपक्षेऽर्थः.... .... | ५ |
| ५ | अथ सूर्यपक्षेऽर्थः .... .... | ७ |
| ६ | अथ चन्द्रपक्षेऽर्थः .... .... | ” |
| ७ | अथोङ्कारपक्षेऽर्थः .... .... | ८ |
| ८ | अथ गुरुपक्षेऽर्थः .... .... | ९ |
| ९ | अथेन्द्रपक्षेऽर्थः.... .... .... | १० |
| १० | शेषपक्षे.... .... .... .... | ” |
| ११ | दुर्गापक्षे.... .... .... .... | ११ |
| १२ | वायुपक्षे .... .... .... | १२ |
| १३ | अग्निपक्षे .... .... .... | १३ |
| १४ | धर्मराजपक्षे.... .... .... | ” |
| १५ | कुबेरपक्षे .... .... .... | १४ |
| १६ | वरुणपक्षे .... .... .... | ” |
| १७ | सरस्वतीपक्षे.... .... | ” |
| १८ | ग्रंथोपक्रमस्तत्र मातृकाप्रादुर्भावः .... .... .... | १५ |
| १९ | मातृकाया अधिकारिणः .... | १८ |
| २० | अथ शिक्षायाः प्रयोजनकथनप्रसङ्गेन व्याख्याकथनम्.... | ” |
| २१ | सुगमोपायेनप्रयत्नविवेकः.... | २८ |
| २२ | यन्त्रचतुष्कम् .... .... | २९ |
| २३ | अथोदात्तादिस्वरविचारः .... | ” |
| २४ | अथाक्षरसमाम्नायस्योपमन्युव्याख्यातश्रीनन्दिकेशकाशिकादिसूत्रप्रकाशिका .... | ३१ |
| २५ | अथाक्षरसमाम्नायिकानां चक्रम्.... .... .... .... | ३८ |
| २६ | नादोत्पत्तिवर्णनम् .... .... | ४० |
| २७ | नादमाहात्म्यम् .... .... | ४१ |
| २८ | हंसोत्पत्तिकथनम् .... .... | ” |
| २९ | प्रणवभवनकथनम् .... .... | ४२ |
| ३० | प्रणवमाहात्म्यम् .... .... | ” |
| ३१ | छन्दोभेदस्थानादित्वकथनम् | ४३ |
| ३२ | गायत्र्यादिच्छन्दसां लक्षणसंज्ञादिकम् .... .... .... | ४५ |
| ३३ | वर्णच्छन्दसां षड्विंशतिर्जातयः | ” |
| ३४ | तासां क्रमात्कतीनांचिन्नामलक्षणानि .... .... .... | ४६ |
| ३५ | तत्र समवृत्तैकदेशदर्शनम् .... | ” |
| ३६ | विषमवृत्तदर्शनम् .... .... | ५१ |
| ३७ | अथ गद्यानि.... .... .... | ५३ |
| ३८ | मात्राप्रस्तारकथनम् .... | ५४ |
| ३९ | मात्रोद्दिष्टविधिः.... .... | ५५ |
| ४० | मात्रानष्टविधिः .... .... | ” |
| ४१ | मात्रामेरुः .... .... .... | ५६ |

श्रीः ।

# अथ मातृकाविलासानुक्रमणिका


| क्रमाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| १ | मङ्गलाचरणम् .... .... | १ |
| २ | ओंस्वस्ति श्रीगणेशाय नम इति दशाक्षरीविद्याया अनेकदेवतापरव्याख्यायां गणेशपरोऽर्थः .... .... .... | ” |
| ३ | अथ दशाक्षरीविद्याया विष्णुपक्षेऽर्थः .... .... .... | ३ |
| ४ | अथ महेश्वरपक्षेऽर्थः.... .... | ५ |
| ५ | अथ सूर्यपक्षेऽर्थः .... .... | ७ |
| ६ | अथ चन्द्रपक्षेऽर्थः .... .... | ” |
| ७ | अथोङ्कारपक्षेऽर्थः .... .... | ८ |
| ८ | अथ गुरुपक्षेऽर्थः .... .... | ९ |
| ९ | अथेन्द्रपक्षेऽर्थः.... .... .... | १० |
| १० | शेषपक्षे.... .... .... .... | ” |
| ११ | दुर्गापक्षे.... .... .... .... | ११ |
| १२ | वायुपक्षे .... .... .... | १२ |
| १३ | अग्निपक्षे .... .... .... | १३ |
| १४ | धर्मराजपक्षे.... .... .... | ” |
| १५ | कुबेरपक्षे .... .... .... | १४ |
| १६ | वरुणपक्षे .... .... .... | ” |
| १७ | सरस्वतीपक्षे.... .... .... | ” |
| १८ | ग्रंथोपक्रमस्तत्र मातृकाप्रादुर्भावः .... .... .... | १५ |
| १९ | मातृकाया अधिकारिणः .... | १८ |
| २० | अथ शिक्षायाः प्रयोजनकथनप्रसङ्गेन व्याख्याकथनम्.... | ” |
| २१ | सुगमोपायेनप्रयत्नविवेकः .... | २८ |
| २२ | यन्त्रचतुष्कम् .... .... | २९ |
| २३ | अथोदात्तादिस्वरविचारः .... | ” |
| २४ | अथाक्षरसमाम्नायस्योपमन्युव्याख्यातश्रीनन्दिकेशकाशिकादिसूत्रप्रकाशिका .... | ३१ |
| २५ | अथाक्षरसमाम्नायिकानां चक्रम्.... .... .... .... | ३८ |
| २६ | नादोत्पत्तिवर्णनम् .... .... | ४० |
| २७ | नादमाहात्म्यम् .... .... | ४१ |
| २८ | हंसोत्पत्तिकथनम् .... .... | ” |
| २९ | प्रणवभवनकथनम् .... .... | ४२ |
| ३० | प्रणवमाहात्म्यम् .... .... | ” |
| ३१ | छन्दोभेदस्थानादित्वकथनम् | ४३ |
| ३२ | गायत्र्यादिच्छन्दसां लक्षणसंज्ञादिकम् .... .... .... | ४५ |
| ३३ | वर्णच्छन्दसां षड्विंशतिर्जातयः | ” |
| ३४ | तासां क्रमात्कतीनांचित्रप्रलक्षणानि .... .... .... | ४६ |
| ३५ | तत्र समवृत्तैकदेशदर्शनम् .... | ” |
| ३६ | विषमवृत्तदर्शनम् .... .... | ५१ |
| ३७ | अथ गद्यानि.... .... .... | ५३ |
| ३८ | मात्राप्रस्तारकथनम् .... | ५४ |
| ३९ | मात्रोद्दिष्टविधिः.... .... | ५५ |
| ४० | मात्रानष्टविधिः .... .... | ” |
| ४१ | मात्रामेरुः .... .... .... | ५६ |

| क्रमाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| ४२ | मात्रापताका | ५६ |
| ४३ | वर्णप्रस्तारविधिः | ५७ |
| ४४ | अथ नष्टम् | ,, |
| ४५ | वर्णमेरुः | ,, |
| ४६ | वर्णपताका | ,, |
| ४७ | चतुरक्षरप्रस्तारः | ५८ |
| ४८ | एकाक्षरवर्णमेरुः | ,, |
| ४९ | अष्टकलपताका | ,, |
| ५० | चतुर्वर्णपताका | ५९ |
| ५१ | अन्यरीत्या पताकारचना | ,, |
| ५२ | पञ्चवर्णपताकाचक्रम् | ६० |
| ५३ | वर्णमर्कटविधिः | ,, |
| ५४ | वर्णसूचीविधिः | ६१ |
| ५५ | अष्टाक्षरसूचीप्रदर्शनम् | ,, |
| ५६ | संख्यानम् | ६२ |
| ५७ | गणस्वरूपदेवताफलमित्रादिभावचक्रम् | ,, |
| ५८ | दक्षिणामूर्तिविराचितबीजकोशसारः | ६४ |
| ५९ | तदुक्तान्येव कानिचिदस्योदाहरणानि तत्र त्रिपुरामन्त्रोद्धारः | ६७ |
| ६० | लक्ष्मीमन्त्रोद्धारः | ,, |
| ६१ | सरस्वतीमन्त्रोद्धारः | ६८ |
| ६२ | तारामन्त्रोद्धारः | ,, |
| ६३ | अथ मातङ्गयाः | ,, |
| ६४ | शारिकामन्त्रोद्धारः | ,, |
| ६५ | राज्ञीमन्त्रोद्धारः | ,, |
| ६६ | भेडामन्त्रः | ६९ |
| ६७ | ज्वालामुखीमन्त्रोद्धारः | ,, |
| ६८ | त्रिपुरासखीनां मन्त्रोद्धारः | ,, |
| ६९ | छिन्नामन्त्रोद्धारः | ६९ |
| ७० | तुरीमन्त्रोद्धारः | ,, |
| ७१ | दक्षिणाकालीमन्त्रोद्धारः | ७० |
| ७२ | श्याममन्त्रः | ,, |
| ७३ | कालरात्र्या मन्त्रोद्धारः | ,, |
| ७४ | अन्नपूर्णामन्त्रोद्धारः | ,, |
| ७५ | कुलवागीश्वरीमन्त्रोद्धारः | ,, |
| ७६ | कुमारमन्त्रास्तत्र गणेशमन्त्रोद्धारः | ७१ |
| ७७ | कुमारमन्त्राः | ,, |
| ७८ | कार्तवीर्यार्जुनस्य मन्त्रः | ,, |
| ७९ | हनुमन्मन्त्रः | ,, |
| ८० | भैरवमन्त्रः | ७२ |
| ८१ | महामृत्युञ्जयमन्त्रः | ,, |
| ८२ | अथ नवग्रहमन्त्रास्तत्रादौ सूर्यमन्त्रः | ,, |
| ८३ | शुक्रमन्त्रः | ,, |
| ८४ | बृहस्पतिमन्त्रः | ७३ |
| ८५ | चन्द्रमन्त्रः | ,, |
| ८६ | त्रिग्रहमन्त्रोद्धारः | ,, |
| ८७ | शनैश्चरमन्त्रः | ,, |
| ८८ | राहुमन्त्रः | ,, |
| ८९ | केतुमन्त्रः | ,, |
| ९० | मातृकाक्रमतो बीजानि | ७४ |
| ९१ | मातृकाया भेदद्वयकथनम् | ७७ |
| ९२ | अन्तर्मातृकायाश्छन्दोऽधिदेवतादिकथनम् | ,, |
| ९३ | करन्यासः | ७८ |
| ९४ | ध्यानम् | ,, |

| क्रमाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| ९५ | अथ बहिर्मातृका | ७८ |
| ९६ | बहिर्मातृकायाश्छन्दआदयः | ७९ |
| ९७ | बहिर्मातृकान्यासः | ,, |
| ९८ | ध्यानम् | ,, |
| ९९ | विलोममातृका | ८० |
| १०० | अनुलोममातृकायाः स्वरूपम् | ,, |
| १०१ | प्रतिलोममातृकायाः स्वरूपम् | ,, |
| १०२ | मातृकाया लिङ्गसंख्यावत्त्वेनापि योजनाकथनम् | ८१ |
| १०३ | अकारादिषोडशस्वराणां ब्रह्मादिवाचकत्वे सौभारिमुनिप्रणीतश्लोकाः | ८२ |
| १०४ | अथ कादिक्षान्तवर्णानां योजना | ८३ |
| १०५ | वर्णोत्पत्तिक्रमः | ८५ |
| १०६ | कादिद्वादशाक्षर्यर्थः | ८६ |
| १०७ | सादिद्वादशाक्षर्यर्थः | ८८ |
| १०८ | गपङ्क्त्यर्थः | ,, |
| १०९ | घकारपङ्क्तेः | ,, |
| ११० | ङकारपङ्क्तेः | ,, |
| १११ | चपङ्क्तेः | ८९ |
| ११२ | छकारपङ्क्तेः | ,, |
| ११३ | जपङ्क्तेः | ,, |
| ११४ | झकारपङ्क्तेः | ,, |
| ११५ | ञपङ्क्तेः | ९० |
| ११६ | टकारपङ्क्तेः | ,, |
| ११७ | ठपङ्क्तेः | ,, |
| ११८ | डकारपङ्क्तेः | ९१ |
| ११९ | ढपङ्क्तेः | ,, |
| १२० | णकारपङ्क्तेः | ९१ |
| १२१ | तपङ्क्तेः | ,, |
| १२२ | थकारपङ्क्तेः | ९२ |
| १२३ | दपङ्क्तेः | ,, |
| १२४ | धकारपङ्क्तेः | ,, |
| १२५ | नपङ्क्तेः | ,, |
| १२६ | पकारपङ्क्तेः | ९३ |
| १२७ | फपङ्क्तेः | ,, |
| १२८ | बकारपङ्क्तेः | ,, |
| १२९ | भपङ्क्तेः | ,, |
| १३० | मकारपङ्क्तेः | ९४ |
| १३१ | यपङ्क्तेः | ,, |
| १३२ | रकारपङ्क्तेः | ,, |
| १३३ | लपङ्क्तेः | ,, |
| १३४ | वकारपङ्क्तेः | ९५ |
| १३५ | शपङ्क्तेः | ,, |
| १३६ | षकारपङ्क्तेः | ,, |
| १३७ | सपङ्क्तेः | ९६ |
| १३८ | हकारपङ्क्तेः | ,, |
| १३९ | क्षपङ्क्तेः | ,, |
| १४० | क्रमातृकार्थयोजना | ९७ |
| १४१ | संयुक्तवर्णार्थाः | ९८ |
| १४२ | वर्णसमाम्नायाद्वेदाविर्भावकथनम् | १०६ |
| १४३ | अक्षरसमाम्नायत एव आन्वीक्षिक्याद्यष्टादशविद्यानामाविर्भावकथनम् | १०७ |
| १४४ | चत्वारि धर्मप्रस्थानानि | ,, |
| १४५ | तेषां क्रमेण स्वरूपकथनम् | १०८ |
| १४६ | चतुर्णां वेदानां प्रयोजनम् | १११ |

| क्रमाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| १४७ | वेदाङ्गानां प्रयोजनं तत्र शिक्षायाः .... .... .... | ११२ |
| १४८ | व्याकरणप्रयोजनं तत्स्वरूपञ्च.... .... .... ... | " |
| १४९ | निरुक्तप्रयोजनं तत्स्वरूपञ्च | " |
| १५० | निघण्टुस्वरूपम् .... .... | ११३ |
| १५१ | छन्दःस्वरूपं तत्प्रयोजनम् .... | " |
| १५२ | ज्यौतिषस्वरूपं तत्प्रयोजनम् | " |
| १५३ | कल्पस्वरूपं तत्प्रयोजनञ्च .... | ११४ |
| १५४ | पुराणोपपुराणनामानि .... | " |
| १५५ | न्यायस्वरूपम् .... .... | " |
| १५६ | वैशेषिकस्वरूपम् .... .... | " |
| १५७ | पूर्वमीमांसास्वरूपं तत्प्रयोजनञ्च .... .... .... | " |
| १५८ | उत्तरमीमांसास्वरूपं तत्प्रयोजनञ्च .... .... .... | ११५ |
| १५९ | धर्मशास्त्रस्वरूपप्रयोजनकथनम् .... .... .... | ११६ |
| १६० | चत्वार उपवेदास्तत्रायुर्वेदस्वरूपम् .... .... .... | " |
| १६१ | आयुर्वेदान्तर्गतकामशास्त्रनिरूपणम् .... .... .... | " |
| १६२ | आयुर्वेदस्य प्रयोजनम् .... | ११७ |
| १६३ | धनुर्वेदस्वरूपतत्स्थविषयाणां निरूपणम् .... .... | " |
| १६४ | धनुर्धरप्रशंसा .... .... | " |
| १६५ | धनुर्दानविधिः .... .... | ११८ |
| १६६ | तत्र मन्त्राः .... .... | " |
| १६७ | वेधप्रकारः .... .... .... | ११९ |
| १६८ | चापप्रमाणम् .... .... | " |

| क्रमाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| १६९ | गुणलक्षणानि.... .... .... | १२० |
| १७० | शरलक्षणानि.... .... .... | १२१ |
| १७१ | फललक्षणम् .... .... .... | " |
| १७२ | फलपायनम् .... .... .... | " |
| १७३ | नाराचनालीकौ .... .... | १२२ |
| १७४ | स्थानमुष्ट्याकर्षणलक्षणानि.... | " |
| १७५ | गुणमुष्टयः .... .... .... | " |
| १७६ | धनुर्मुष्टिसंधानम् .... .... | १२३ |
| १७७ | व्यायाः .... .... .... | " |
| १७८ | लक्ष्यम् .... .... .... | " |
| १७९ | अनध्यायाः .... .... .... | १२४ |
| १८० | श्रमक्रिया .... .... .... | " |
| १८१ | लक्ष्यस्खलनविधिः .... .... | १२५ |
| १८२ | दृढभेदिता .... .... .... | " |
| १८३ | हीनगतयः .... .... .... | " |
| १८४ | बाणानां लक्ष्यस्खलनगतयः | १२६ |
| १८५ | शुद्धगतयः .... .... .... | " |
| १८६ | दृढचतुष्कम्.... .... .... | " |
| १८७ | चित्रविधिः .... .... .... | " |
| १८८ | धावल्लक्ष्यम्.... .... .... | १२७ |
| १८९ | शब्दवेधित्वम् .... .... | " |
| १९० | अस्त्रविधिः .... .... .... | " |
| १९१ | स्कान्दोक्तकतिचिदस्त्रस्वरूपाणि .... .... .... | १२८ |
| १९२ | तत्र ब्रह्मास्त्रप्रयोगोपसंहारौ.... .... .... .... | " |
| १९३ | ब्रह्मदण्डप्रयोगोपसंहारौ .... | " |
| १९४ | ब्रह्मशिरःप्रयोगोपसंहारौ .... | १२९ |
| १९५ | पाशुपतप्रयोगोपसंहारौ .... | " |
| १९६ | वायव्यप्रयोगोपसंहारौ .... | " |

| क्रमाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| १९७ | आग्नेयप्रयोगोपसंहारौ | १२९ |
| १९८ | नारसिंहप्रयोगोपसंहारौ | ,, |
| १९९ | शस्त्रवारणम् | १३० |
| २०० | संग्रामविधिः | ,, |
| २०१ | तत्र रक्षामन्त्रः | ,, |
| २०२ | प्रयाणसमये स्मरणीयनामानि | १३१ |
| २०३ | अक्षौहिणीसंख्या | ,, |
| २०४ | महाक्षौहिणीसंख्या | १३२ |
| २०५ | व्यूहविधिः | ,, |
| २०६ | युद्धविधिः | ,, |
| २०७ | गान्धर्ववेदप्रयोजनम् | १३३ |
| २०८ | गेयस्य चत्वारः प्रकाराः | १३४ |
| २०९ | चतुर्विधं वाद्यम् | ,, |
| २१० | नृत्यसंग्रहः | ,, |
| २११ | अथ गान्धर्ववेदप्रक्रिया तत्र गान्धर्वलक्षणम् | ,, |
| २१२ | गीतप्रशंसा | १३५ |
| २१३ | सुगीतलक्षणम् | ,, |
| २१४ | वागुपकारस्य गुणाः | ,, |
| २१५ | वागुपकारलक्षणानि | ,, |
| २१६ | शिप्यकारः | ,, |
| २१७ | गायनलक्षणानि | ,, |
| २१८ | गायनदोषाः | ,, |
| २१९ | सालगसूडः | १३६ |
| २२० | ध्रुवकलक्षणं तद्भेदाश्च | ,, |
| २२१ | षोडश ध्रुवाणां नामानि | १३७ |
| २२२ | तेषां स्वरूपम् | ,, |
| २२३ | मण्ठकलक्षणम् | १३८ |
| २२४ | प्रतिमण्ठलक्षणम् | १३९ |
| २२५ | निःसारुकलक्षणम् | ,, |
| २२६ | अड्डताललक्षणम् | ,, |
| २२७ | रासकलक्षणानि | १४० |
| २२८ | एकतालीलक्षणम् | ,, |
| २२९ | अष्टौ ध्रुवाः | ,, |
| २३० | शुद्धसूडनामानि | १४१ |
| २३१ | रूपकम् | ,, |
| २३२ | गमकम् | ,, |
| २३३ | प्रत्यन्तरम् | ,, |
| २३४ | स्वरादिकथनम् | ,, |
| २३५ | षट्त्रिंशत्प्रवर्तकरागाः | १४२ |
| २३६ | भैरवादिरागाणां पत्न्यः | ,, |
| २३७ | रागविशेषे कालविशेषः | १४३ |
| २३८ | भैरवादिरागाणां तत्पत्नीनां च वर्णनीयरूपाणि तत्र भैरवतत्पत्नीनाम् | ,, |
| २३९ | मालकौशिकस्य | ,, |
| २४० | हिन्दोलनाम्नः | १४४ |
| २४१ | दीपकस्य | १४५ |
| २४२ | पाठान्तरम् | ,, |
| २४३ | मेघनादस्य | ,, |
| २४४ | श्रीरागस्य | १४६ |
| २४५ | रागप्रशंसा | ,, |
| २४६ | अथ गणाः | १४७ |
| २४७ | वर्णप्रस्तारः | ,, |
| २४८ | गुरुलघुप्लुतद्रुतलक्षणानि | ,, |
| २४९ | तालप्रस्तारः | ,, |
| २५० | अथौषधानि | १४८ |
| २५१ | अथ रसशास्त्रप्रयोजनं तत्स्वरूपञ्च | ,, |
| २५२ | शृङ्गारादयो नवरसाः | ,, |
| २५३ | तत्र शृङ्गारभेदौ तत्स्वरूपञ्च | ,, |
| २५४ | हास्यस्वरूपम् | १५१ |
| २५५ | करुणस्वरूपम् | ,, |
| २५६ | रौद्रस्वरूपम् | ,, |
| २५७ | वीरस्वरूपम् | ,, |
| २५८ | भयानकस्वरूपम् | ,, |
| २५९ | बीभत्सस्वरूपम् | १५२ |
| २६० | अद्भुतस्वरूपम् | ,, |

| क्रमाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| २६१ | शान्तस्वरूपम् .... | ....१५४ |
| २६२ | रसानां विरोधाविरोधौ .... | ,, |
| २६३ | स्थायिनो भावाः .... | ....१५३ |
| २६४ | स्थायिलक्षणम् .... .... | ,, |
| २६५ | तस्यैव विशेषलक्षणम् .... | ,, |
| २६६ | विभावस्वरूपम् .... .... | ,, |
| २६७ | अनुभावलक्षणम् .... .... | ,, |
| २६८ | सात्विकलक्षणम् .... .... | ,, |
| २६९ | व्यभिचारिणो हेतवः.... | ....१५४ |
| २७० | तिस्रोरीतयः .... .... | ,, |
| २७१ | गौडीस्वरूपम् .... .... | ,, |
| २७२ | वैदर्भीस्वरूपम् .... .... | ,, |
| २७३ | माधवीस्वरूपम् .... .... | ,, |
| २७४ | जयदेवमते चतस्रोरीतयः.... | ,, |
| २७५ | तासां स्वरूपाणि स्थलानि च | १५५ |
| २७६ | मधुरादयः पञ्च वृत्तयस्तत्र मधुरास्वरूपम् .... .... | ,, |
| २७७ | प्रौढास्वरूपम् .... .... | ,, |
| २७८ | परुषास्वरूपम् .... .... | ,, |
| २७९ | ललिताभद्रयोः स्वरूपम् .... | ,, |
| २८० | क्रमेणोदाहरणानि.... | ....१५६ |
| २८१ | अथालंकारास्तत्रालंकारस्य सामान्यविशेषलक्षणे .... | ,, |
| २८२ | चित्रादयोऽष्टावलंकाराः .... | ,, |
| २८३ | चित्रलक्षण चित्रभेदाश्च .... | ,, |
| २८४ | खड्गबन्धरचना .... | ....१५७ |
| २८५ | पद्मबन्धमुरजबन्धयो रचना | १५८ |
| २८६ | सर्वतोभद्ररचना .... | ....१५९ |
| २८७ | वक्रोक्तिलक्षण तदुदाहरणञ्च | ,, |
| २८८ | अनुप्रासलक्षणं तदुदाहरणञ्च | ,, |
| २८९ | गूढस्वरूप तद्भेदाश्च | ....१६० |
| २९० | श्लेषलक्षणं वर्णादितद्भेदाश्च | १६३ |
| २९१ | वर्णश्लेषः .... .... .... | ,, |
| २९२ | पदश्लेषः .... .... .... | ,, |
| २९३ | लिङ्गश्लेषः .... .... | ....१६३ |
| २९४ | भाषाश्लेषः .... .... | ....१६४ |
| २९५ | प्रकृतिश्लेषः .... .... .... | ,, |
| २९६ | प्रत्ययश्लेषः .... .... .... | ,, |
| २९७ | विभक्तिश्लेषः .... .... | ,, |
| २९८ | प्रहेलिकास्वरूपं तद्भेदाश्च | ....१६५ |
| २९९ | अलंकारशेखरमतेन प्रहेलिकालक्षणं तद्भेदाश्च.... .... | ,, |
| ३०० | बिन्दुच्युतकम् .... | ....१६६ |
| ३०१ | व्यञ्जनच्युतकम् .... | ....१६७ |
| ३०२ | च्युतदत्ताक्षराः .... .... | ,, |
| ३०३ | स्थानच्युतकम् .... .... | ,, |
| ३०४ | अक्षरमुष्टिः .... .... .... | ,, |
| ३०५ | बिन्दुमती.... .... .... | ,, |
| ३०६ | प्रश्नोत्तरम्.... .... .... | ,, |
| ३०७ | यमकलक्षणम् .... | ....१६९ |
| ३०८ | यमकस्य विंशतिर्भेदाः | ....१७० |
| ३०९ | अर्थालंकारभेदाः .... | ....१७४ |
| ३१० | उपमोपमानोपमेयलक्षणानि | ,, |
| ३११ | उपमाया दशभेदास्तदुदाहरणानि.... .... .... .... | ,, |
| ३१२ | रूपकलक्षणं तद्भेदोदाहरणानि च .... .... | ....१७६ |
| ३१३ | उत्प्रेक्षालक्षण तदुदाहरणानि | १७७ |
| ३१४ | समासोक्तिस्तदुदाहरणानि च | १७८ |
| ३१५ | अपन्हुतिलक्षणं तदुदाहरणानि च | ,, |
| ३१६ | समाहितम् .... .... .... | ,, |
| ३१७ | स्वभावालंकारः .... .... | ,, |
| ३१८ | विरोधः। अयमेव विरोधाभासः.... .... .... .... | ,, |
| ३१९ | साराळंकारः.... .... | ,, |
| ३२० | दीपकलक्षण तद्भेदाश्च .... | ,, |
| ३२१ | मालादीपकम्.... .... | ....१७९ |
| ३२२ | सहोक्तिः .... .... .... | ,, |

| क्रमाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| ३२३ | अन्यदेशत्वम् .... | ....१७९ |
| ३२४ | विशेषोक्तिः .... .... .... | ,, |
| ३२५ | विभावना .... .... .... | ,, |
| ३२६ | व्यतिरेकालंकारः .... | ....१८० |
| ३२७ | आक्षेपः .... .... .... | ,, |
| ३२८ | काव्यप्रकाशरीत्या व्यञ्जना-वृत्तिसाधनम् .... .... | ,, |
| ३२९ | लक्षणाव्यञ्जनयोर्भेदकान्तरम्.... .... .... | ....१८२ |
| ३३० | संक्षेपतः समस्यापूरणविधिः | १८६ |
| ३३१ | नीतिशास्त्रं तद्भेदाश्च | ....१९२ |
| ३३२ | संक्षेपतो राजनीतिकथनम् | ,, |
| ३३३ | मन्त्रगुप्तिप्रकारस्तत्राख्यायिकाकथनम् .... .... | ....१९६ |
| ३३४ | दुर्मन्त्रिराजस्यानिष्टफलम् | ....१९८ |
| ३३५ | राज्ञो दुर्गस्यात्यन्तावश्यकता | ,, |
| ३३६ | राजगुणाः .... .... .... | ,, |
| ३३७ | राजचिह्नानि.... .... | ....१९९ |
| ३३८ | कुराजलक्षणम् .... .... | ,, |
| ३३९ | स्वीयराज्याद्राज्ञा पाखण्डिनो निष्कासनीयाः .... .... | ,, |
| ३४० | पृथग्जनदोषाः .... .... | ,, |
| ३४१ | पञ्चजीवन्मृताः .... .... | ,, |
| ३४२ | केवलनृपस्य निषेधः.... | ....२०० |
| ३४३ | सभायां गमने फलम् .... | ,, |
| ३४४ | युद्धे मरणप्रशंसा .... .... | ,, |
| ३४५ | पानादिवर्ज्यपदार्थाः .... | ,, |
| ३४६ | ज्ञातिभिः सह कार्याणि | ....२०१ |
| ३४७ | संहतिसामर्थ्यम् .... .... | ,, |
| ३४८ | देशकालादिचिन्तनम् | ....२०२ |
| ३४९ | धनव्ययस्थानानि .... .... | ,, |
| ३५० | राज्यलक्षणम्.... .... .... | ,, |
| ३५१ | भूपानां षड्गुणाः .... .... | ,, |
| ३५२ | शक्तित्रयम्.... .... .... | ,, |
| ३५३ | त्रय उदयाः.... .... | ....२०२ |
| ३५४ | उपायचतुष्टयम् .... .... | ,, |
| ३५५ | सेनाङ्गचतुष्टयम् .... .... | ,, |
| ३५६ | राज्ञो लक्ष्मीप्राप्तिकराणि .... | ,, |
| ३५७ | सन्मार्गेणैव गन्तव्यम्.... | ....२०३ |
| ३५८ | देवतानां देवतात्वे हेतवः.... | ,, |
| ३५९ | वाङ्माधुर्यं गुणः .... .... | ,, |
| ३६० | उद्योगप्रशंसा .... .... | ,, |
| ३६१ | हीनताकराणि .... | ....२०४ |
| ३६२ | हास्यनिषेधः.... .... .... | ,, |
| ३६३ | धनप्राप्तौ वाणिज्यप्रशंसा .... | ,, |
| ३६४ | समयोक्तवाणीप्रशंसा .... | ,, |
| ३६५ | पूर्यमाणान्यपि अपूर्णानि सप्त वस्तूनि .... .... .... | ,, |
| ३६६ | बुद्धिमता अप्रकाश्यानि .... | ,, |
| ३६७ | त्यागार्हवस्तूनि .... .... | ,, |
| ३६८ | वासानर्हस्थलानि .... | ....२०६ |
| ३६९ | बाललक्षणम्.... .... .... | ,, |
| ३७० | श्रोत्रियलक्षणम् .... .... | ,, |
| ३७१ | मैत्रीभङ्गस्य हेतवः .... .... | ,, |
| ३७२ | षड् लघुताहेतवः .... .... | ,, |
| ३७३ | मित्रप्रशंसा.... .... .... | ,, |
| ३७४ | मैत्रीकरणयोग्यलक्षणम् .... | ,, |
| ३७५ | जीवन्मृतकथनम् .... | ....२०७ |
| ३७६ | अन्यरेतोजातलक्षणम् .... | ,, |
| ३७७ | शीलप्रशंसा.... .... .... | ,, |
| ३७८ | अधमाधमाधमोत्तममध्यलक्षणम् | ,, |
| ३७९ | पितृसमाः .... .... .... | ,, |
| ३८० | सामान्यस्त्रीस्वभावः | ....२०८ |
| ३८१ | भार्यादिलक्षणम् .... .... | ,, |
| ३८२ | शयनविचारः .... .... | ,, |
| ३८३ | आश्रिते दाननिषेधः.... .... | ,, |
| ३८४ | ब्राह्मणावमानकरणनिषेधः | ....२०९ |
| ३८५ | दंभनिषेधः .... .... .... | ,, |

| क्रमाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| ३८६ | स्त्रीजितस्य दुष्परिणामः .... | २०९ |
| ३८७ | वाक्पारुष्यनिषेधः .... .... | " |
| ३८८ | पैशुन्यनिषेधः .... .... | " |
| ३८९ | याञ्चानिषेधः .... .... | " |
| ३९० | निर्दोषभृत्यत्यागनिषेधः .... | " |
| ३९१ | इन्द्रियजयोपायः .... .... | " |
| ३९२ | नास्तिकतानिषेधः .... .... | " |
| ३९३ | पूज्यापमाननिषेधः .... .... | " |
| ३९४ | नद्यादीनांविश्वासनिषेधः .... | २१० |
| ३९५ | अभिचारेच्छानिषेधः.... .... | " |
| ३९६ | विष्णुस्मरणविधिः .... .... | " |
| ३९७ | वैष्णवे मार्गे संदेहकरणवर्जनम् | " |
| ३९८ | जराहेतवः .... .... .... | " |
| ३९९ | चत्वारि मस्तकशूलानि .... | " |
| ४०० | वैरिकरा गुणाः .... .... | " |
| ४०१ | अपण्डितलक्षणम् .... .... | " |
| ४०२ | निरर्थकत्रयम् .... .... | २११ |
| ४०३ | त्यागार्हाः .... .... .... | " |
| ४०४ | पण्डितलक्षणम् .... .... | " |
| ४०५ | पुरुषद्वयकथनम् .... .... | " |
| ४०६ | सुभाषितसंग्रहः .... .... | २१२ |
| ४०७ | अश्वशास्त्रादिकथनम् .... | " |
| ४०८ | संक्षेपेण सांख्यशास्त्रमतिपादनम् .... .... .... | " |
| ४०९ | योगशास्त्रसारकथनम् .... | " |
| ४१० | पाशुपतशास्त्रसारकथनम् .... | २१३ |
| ४११ | वैष्णवपञ्चरात्रसारकथनम् .... | " |
| ४१२ | वैष्णवमन्त्रशास्त्रविचारकथनम् | " |
| ४१३ | वामागमशास्त्रविचारः | " |
| ४१४ | मस्थानभेदविचारः .... .... | " |
| ४१५ | आरम्भवादादिपक्षत्रयविचारः | २१३ |
| ४१६ | तार्किकाणां मतम् .... .... | " |
| ४१७ | मीमांसकानां मतम् .... | " |
| ४१८ | अद्वैतवैष्णवानां मतम् .... | " |
| ४१९ | ब्रह्मवादिनां सर्वेषां मस्थानकर्तृणां च मतम् .... | २१४ |
| ४२० | भागवतधर्मस्यैव उपादेयताकथनम् .... .... .... | " |
| ४२१ | वैष्णवानां साक्षादेव परमात्मा गम्योऽन्येषां तु परंपरया गम्य इत्यादिकथनम्.... .... | " |
| ४२२ | मातृकाया एव सर्वोत्पत्तिरिति कथनम्.... .... | २१५ |
| ४२३ | तत्र ममाणविचारः .... .... | " |
| ४२४ | सूर्योत्पत्तिमकारकथनम् .... | २१६ |
| ४२५ | भगवता तपोयोगबलाव्यासावतारान् धृत्वा मातृकात एव सर्ववेदशास्त्राण्याविर्भावितानीति कथनम् .... | २१७ |
| ४२६ | मातृकामाहात्म्यकथनम् .... | " |
| ४२७ | ग्रन्थोपसंहारः ... .... .... | " |
| ४२८ | तत्रोंनमःसिद्धमित्येतदर्थकथनम्.... .... .... | २१८ |
| ४२९ | सर्वत्र नारायण एव ध्येयो वेद्यश्चेति ममाणपूर्वककथनम् | " |
| ४३० | सर्वं त्यक्त्वा ब्रह्मण्येव रतिः कार्येति कथनम् .... .... | " |
| ४३१ | समाप्तिपद्यम्.... .... | २१९ |
| ४३२ | राधाकृष्णमीतिविषयकः स्वकृतहारबन्धः .... .... | " |
| ४३३ | ग्रंथकर्तुर्वासस्थानादिनिर्देशः | २२० |


इति मातृकाविलासानुक्रमणिका समाप्ता ॥

श्रीः ।

# अथ मातृकाविलासः प्रारभ्यते ।

ॐ श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीकृष्णं राधिकानाथं वृन्दावननिकुंजगम् ॥
वल्लवीगणसंवीतमाश्रये सर्वकारणम् ॥ १ ॥
ओंस्वस्तिश्रीगणेशायनमइत्यस्यव्याकृतिम् ॥
श्रीवंशीधरशर्माहं करोमि विदुषां मुदे ॥ २ ॥

अथ सर्वशास्त्रारंभ इयमेव दशाक्षरीविद्या स्मर्यते तत्कथमन्येषां श्रीमहाविष्ण्वादीनां स्मरणस्यापि 'मंगलानाञ्च मङ्गलम्' इत्यादिवाक्यैर्मंगलस्यापि मंगलत्वात्तत्कथन्न स्मर्यत इति चेदत्रेदमवधेयम्। अस्यामेव दशाक्षर्यां स्मृतायां सर्वदेवस्मरणसंभवादियमेव स्मर्य्या। किंचास्या दशाक्षर्याः सर्वदेवतानां मूलमंत्रत्वादप्यादौ जपो न्याय्यः। मूलमंत्रलक्षणस्य गरुडोक्तस्यात्र सत्त्वात्। तथाहि' प्रणवादिनमोंतंच चतुर्थ्यंतं च सत्तम ॥ देवतायाः स्वकं नाम मूलमंत्रः प्रकीर्तितः' इति। देवपूजायां जपरूपपूजाया एव श्रैष्ठ्यं 'यज्ञानां जपयज्ञोस्मि' इति। श्रीमुखोक्तेः कथमत्र सर्वदेवतास्मरणमिति चेत्तद्दर्शयतीह। तथाहि 'कार्यारंभे गणेशश्च पूजनीयः प्रयत्नतः' इति स्मृतेस्तस्यैवादिपूज्यत्वं विघ्ननाथत्वेन विघ्नवारकत्वात्। श्रीगणेशाय नमः ॥ नमआदियोगे चतुर्थी सर्वत्र वोध्या। गण्यंते दुःखप्रदत्वेनेति गणा विघ्नाः 'समूहे भगणे विघ्ने प्रमथेंद्रियदैवते ॥ यमसैन्ये स्तवार्हेषु पार्षदे च गणः स्मृतः' इत्यनेकार्थध्वनिवाग्विलासे। गण संख्याने धातोः कर्मण्यप्रत्ययः। ईष्टे उपद्रवनाशकत्वेन द्योतत इतीशः ईश ऐश्वर्येऽतः कर्तरीगुपधात्कः। 'ईशः स्वामिनि शंकरे' इति वामनः। गणानां वि-

गानां प्रमथानां चेशः स्वामी गणेशो हेरंबः 'रुद्रे विनायके विष्णौ विष्वक्सेने विधातरि। मुख्याधिष्ठातृसैन्येषु गणेशः परिकीर्तितः' इत्यप्यनेकार्थध्वनिवाग्विलासे। श्रिया कीर्त्या दीप्त्या ऋद्धिसिद्धिभ्यां वा सहितो गणेशः श्रीगणेशस्तस्मै तथा 'ऋद्धिश्रीकीर्त्तिदीप्त्याशीर्गिरासु श्रीरितीरितः' इत्यपि तत्रैव। स्वस्त्यस्तु नमस्कर्तुरिति शेषः। ओमित्यंगीकारे ब्रह्मणि चेत्यव्ययपाठात्। एतत्सर्वैः कार्यादावंगीकार्यमिति भावः।' अनाराध्य गणाध्यक्षं यत्कर्म क्रियते नरैः॥ तन्न सिद्धिमवाप्नोति ह्यत आदौ तमर्चयेत्' इति पुराणात्। यद्वा कथंभूताय श्रीगणेशाय ओम् कोर्थः ब्रह्मरूपिणे। अव्ययत्वादेव चतुर्थ्या लुक् सत्यपि लुकि विभक्त्यर्थानपायस्योपकृष्णं देहीत्यादिप्रयोगे दर्शनादव्ययस्य तत्तद्विभक्त्यंतविशेषणत्वे न दोष इत्यवधेयमत्र। तथाच श्रुतिः' नमस्ते गणपतये त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि' इति। अत्र विशेष्यसंबंधत्वादन्ययोगव्यवच्छेदकेनैवकारेण पार्थ एव धनुर्धर इत्यत्र पार्थादन्यत्र धनुर्धरत्वस्येव गणपतेरन्यत्र साक्षाद्ब्रह्मत्वस्य योगो व्यवच्छिद्यते। अतः श्रेयस्कामैः सर्वैरपि स एवाराध्यस्तत्पूजां विनाऽन्यपूजाया वैयर्थ्यस्मरणेन फलजनकत्वायोगात् 'अवश्यापेक्षितानपेक्षितं समर्पणीयम्' इति न्यायेन। तदाराधनस्यावश्यकत्वात्। कृते च तस्मिन् 'विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम्॥ पुत्रार्थी लभते पुत्रं मोक्षार्थी परमं पदम्' इत्यादिवचनेभ्यः सर्वेष्टलाभसंभवे 'अनधीते महाभाष्ये व्यर्था स्यात्पदमंजरी। अधीतेपि महाभाष्ये व्यर्था स्यात्पदमंजरी' इति न्यायेनान्याराधने प्रयोजनाभावात्। सूर्याद्याराधनफलारोग्यादिमोक्षांतकथनानंतरम् 'सर्वमिच्छेद्गणाधिपात्' इति स्मरणमप्यत्र मानम्। तस्मादेव ब्रह्माद्युत्पत्तिस्तत एव तेषां सृष्ट्यादिसामर्थ्यलाभश्च। अथ च गणपतेस्तत्त्वेन वर्णनमुपासनार्थं वास्तवाभेदबोधनार्थञ्च न चैताव-

तान्यदेवानाराधनापत्तिः। प्रयाजादिषु कृतेष्वपि ज्योतिष्टोमादीनामननुष्ठानापत्तेःइतरोपास्तिविधायकवाक्याप्रामाण्यापत्तेश्च'सर्वमिच्छेत्' इति तु विनायकाराधनस्य परंपरया सर्वत्रोपयोगवर्णनपरं नत्वितरनिषेधपरम् । तद्विधीनां विरोधात् । प्रयाजादयोंगानि ज्योतिष्टोमो ह्यंगी नह्यंगैकदेशे कृते सर्वांगिनो यथा सिद्धिः तथा श्रीगणेशार्चनस्य यज्ञादिकर्मप्रारंभरूपैकांगत्वान्नत त्कृते सर्वयज्ञसिद्धिरिति गणेशपक्षः । विष्णुपक्षेप्यस्य व्याख्या । ॐनमः कोर्थो ब्रह्मणे नमः 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' इति ब्रह्मोपनिषदि । श्रीगीतायां च । अव्ययपाठेपि'ओमित्यंगीकारे ब्रह्मणि च' अव्ययत्वादेव विभक्तिलुक् । किंभूताय ॐ श्रीगणेशाय, श्रयति विष्णुचरणमिति श्रीर्लक्ष्मीः । क्विबत्र कर्त्तरि । 'कृटप्रुज्वि'त्यादिना दीर्घः।'कमला श्रीर्हरिप्रिया'इत्यमरात् । श्रिया लक्ष्म्या गणाः पार्षदा इंद्राद्यास्तेषामीशः प्रेरकस्तस्मै 'इंद्राद्याः पार्षदा यस्याः सा लक्ष्मीर्वरदास्तु मे' इति पुराणांतरोक्तेः । यःश्रीपतिः स एव तदीयगणानां पतिः पुरुषस्य स्त्रीपतित्वात्तत्संबंधिनिखिलोपकरणपतित्वस्य प्रथितत्वादतो लक्ष्मीगणानां पतिर्विष्णुरेवेति । किंभूताय ॐ स्वस्ति कल्याणरूपिणे । स्वस्तीति कल्याणेर्थेव्ययमत एवात्रापि पूर्ववच्चतुर्थ्या लुक् । 'मंगलं भगवान्विष्णुः'इत्याद्युक्तेः'नमस्ते कमलाकांत सर्वकल्याणरूपिणे' इति पुराणाच्च । ओमित्यत्रोंशब्दस्य ब्रह्मवाचित्वं स्वीकृतं तच्च सगुणस्यैवेति ज्ञेयम् । 'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तं च' इतिश्रुतेर्ब्रह्मणो द्वैविध्यप्रसिद्धेर्मूर्तं सगुणममूर्तं च निर्गुणं, निर्गुणस्य लक्ष्म्यादिपतित्वममूर्तत्वादेव न संगच्छते । सगुणस्य तु 'लक्ष्मीकांतं कमलनयनम्' इत्यादिवाक्यात्।'श्रियःपतिर्यज्ञपतिर्धरापतिः'इति द्वितीयस्कंधोक्तेः 'श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगत्' इत्यादि-

महाकविप्रयोगाच्च तत्संगच्छत एवेति । श्रीविष्णोः सर्वदेवाधिपत्वेनोत्कृष्टत्वात्तत्पक्षेऽन्योप्यर्थः । ॐ ज्ञानं तदेव स्वं धनं येषां ते ॐस्वा योगिनः 'ज्ञानं हि योगिनां धनम्'इत्युक्तेः। 'महेशे ब्रह्मणि विष्णौ त्रिगुण्यां प्रणवेपि च ॥ ओंकारः शब्द्यते शुद्धौ ज्ञाने त्रय्यां च कोविदैः' इत्यनेकार्थध्वनिवाग्विलासोक्तेः । 'स्वः स्वीयात्मधनेषु च' इति हलायुधः । ओंस्वा ज्ञानयोगिनस्तैः स्तीर्यते ध्यायत इति ॐस्वस्तिर्विष्णुःस्तृञाच्छादन इत्यस्मादौणादिको डिप्रत्ययस्ततष्टिलोपे रूपसिद्धेः । धातूनामनेकार्थत्वाद्ध्याानार्थतापि स्तृणातेर्युक्तैव । 'धातवश्चोपसर्गाश्च निपाताश्चेति ते त्रयः ॥ अनेकार्थाः स्मृताः सर्वे पाठस्तेषां निदर्शनम्' इति वैयाकरणराद्धांतात्।अत एवोक्तं'योगिभिर्ध्यानगम्यम्''ध्यायंति यं योगिन'इति च। श्रिया सर्वोत्कृष्टकीर्त्या गण्यते संख्यायते स्तूयते वेति श्रीगणः 'सर्वोत्कृष्टा यस्य कीर्तिस्स श्रीगण उदाहृतः' इति निरुक्तेः । नहि विष्णोरधिका कस्यचिदपि कीर्तिरस्ति 'न त्वत्समोस्त्यभ्यधिकः कुतोन्यः' इति श्रीगीतास्वर्जुनोक्तेः । स चासावीशः सर्वनियंता चेति श्रीगणेशः । 'सर्वस्येशानः सर्वस्य वशी च' इति श्रुतेः । पुनरोंस्वस्तिशब्देन कर्मधारयः । ओंस्वस्तिश्चासौ श्रीगणेशश्चेति तथा । कोर्थः, विष्णवे नमः 'विष्णुरेव परं ब्रह्म' इति स्कांदोक्तेः । परब्रह्मज्ञानस्य परमानंदहेतुत्वात्पुनर्विष्णुपक्ष एव व्याख्यायते । 'यदुवंशेवतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः' इति श्रीदशमोक्तेर्विष्णुशब्दः श्रीकृष्ण एव मुख्यया वृत्त्या वर्त्तते।अत एवामरसिंहेन जैनेन प्रतीपक्षीभूतेनापि विष्णुनामकथनोत्तरं'वसुदेवोस्य जनकः' इत्युक्त्वा तस्यैव विष्णुत्वं व्याख्यातम्। अतएव श्रीव्यासदेवेनाप्युक्तम् 'ते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्' इति ॥ ॐ विष्णुशब्दवाच्यः कृष्णस्तेन स्वस्ति कल्याणं यस्य तदोंस्वस्ति

व्रजमंडलं 'व्रजभूमिविहारी च व्रजमंडलस्वस्तिकृत्'इति व्रजमाहात्म्योक्तेः। तस्योंस्वस्तिनो व्रजमंडलस्य श्रीः शोभा गण्यते येन स ओंस्वस्तिश्रीगणः श्रीकृष्णः 'शोभाकल्याणलक्ष्मीषु श्रीशब्दःसेवने श्रुतौ' इति मार्तंडः । 'व्रजाभा कृष्णचंद्रेण गण्यते सर्वदा प्रभो' इत्यपि व्रजमाहात्म्ये । पुनरीशशब्देन पूर्ववत्कर्मधारये पूर्ववदपरोप्यर्थः कृष्णपक्ष एव । ॐ कृष्णस्तेन स्वास्ति कल्याणं यासां ता ॐस्वस्तयो गोप्यः 'सख्यस्स्वस्तिकृदस्माकं नहि नेदात्मजं विना' इति व्रजमाहात्म्येऽन्योन्यं गोप्युक्तेः'व्रजजनार्त्तिहन्वीरयोपिताम्' इति श्रीदशमोक्तेश्च। ॐस्वस्तीनां गोपीनां श्रीः शोभा कल्याणं वा यया सा ॐस्वस्तिश्रीः राधा 'राधा गोपीकदंबस्य शोभा सृष्टेह चात्मना'इति, आत्मना श्रीकृष्णेन स्ववामांगतः सर्वगोपीनां समूहस्य शोभा राधैव सृष्टेति निरूपितं ब्रह्मवैवर्त्ते।सा गण्यते पत्नीत्वेन येन स ॐस्वस्तिश्रीगणः स चासावीशश्चेति तथा। यद्वा ॐस्वस्तिश्रिया गणा गोपीसमूहास्तेषामीशस्तथा राधापतये गोपीनाथाय वा कृष्णाय नम इत्यर्थः। अथ 'ज्ञानं महेश्वरादिच्छेत्'इत्युक्ते ज्ञानकामनया शिवपक्षेपि व्याचक्ष्महे । अवति पालयति विश्वमित्योम्, औणादिकप्रयोगः । ॐ विष्णुस्तस्यैव पालकत्वात् । सुष्ठु दुष्टदितिजनाशकत्वेन साधुत्राणार्थमस्तिर्भवनमवतारो यस्य स स्वस्तिर्विष्णुः 'संरक्षणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे' इति श्रीमुखोक्तेः, 'स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्स्वस्तिः' इति विष्णुसहस्रनामस्वपि स्वस्तिशब्दो विष्णुवाचको दृश्यते। ॐचासौ स्वस्तिश्चेति ॐस्वस्ति।यद्यपि स्वस्तिशब्दोऽव्ययेषु पठितस्तथापि 'नतु शब्दनिर्देशे' इत्युक्तेर्विभक्तेर्लुग्नेति ज्ञेयम्।ॐस्वस्तिं श्रयति सेवत इति ॐस्वस्तिश्रीमहादेवः 'यंमामपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्समासहस्रांत उपारतं वै ॥ स

एप साक्षात्पुरुपः पुराणः' इति पार्वतीं प्रति स्वयं शिवेनाष्टमस्कंधे मोहिन्युपाख्यान उक्तत्वात्। 'तव वरद वरांघ्रावाशिषेहाखिलार्थे यदि रचितधियं माविद्यलोकोपविद्धम्' इति दक्षोपाख्याने च। 'अतो महेशोपि विहाय भेदबुद्धिं सदा सेवत एव विष्णुम्' इति विद्वन्मोदतरंगिण्यां चिरंजीवभट्टोक्तेश्च। गणाः प्रमथास्तेषामीशो गणेशः 'गणः संघे च प्रमथे' इत्यभिधानात्। ॐस्वस्तिश्रीश्चासौ गणेशश्चेति तथा शिवाय नमः इत्यर्थः। नन्वयमपि पक्षो विष्णोरेव ॐस्वस्ति श्रयतीत्यनया निरुक्त्या विष्णोः प्राधान्यस्य शिवस्य च सेवकत्वस्योक्तत्वात्। यस्य पक्षो यत्र वर्ण्यते तत्र तस्यैव महत्त्वं वर्ण्यतेऽतो मृडमहत्त्वसूचकोऽपरः पक्षोत्र विरच्यते। ओमा शुद्ध्या स्वस्ति कल्याणं येषां ते ॐस्वस्तयः विप्राः 'शुद्ध्या ब्राह्मणतावृद्धिरशुद्ध्या शूद्रता भवेत्' इत्यादिपुराणात्। तैः श्रीयते सेव्यत इति ॐस्वस्तिश्रीर्महादेवः 'त्वं हि भगवन्देवेषु ब्राह्मणोऽहंमनुष्येषु ब्राह्मणः, ब्राह्मणो हि ब्राह्मणमुपधावति' इति जाबालोपनिषदुक्तेः, 'शिवो विप्रो हरिः क्षत्री' इत्यादिपराशरपुराणोक्तेश्चेशस्य 'ब्राह्मणदेवत्वाद्ब्राह्मणसेव्यत्वमस्तीति। ई लक्ष्मीं गच्छतीतीगो विष्णुः 'लक्ष्मीरीकार उच्यते' इत्येकाक्षरात्। ईगेन नम्यत इतीगणः शिवः। निपातनान्नस्य णःप्रत्ययश्चात्र डः। स चासावीशश्चेतिगणेशः। यद्वा ॐ ज्ञानं सूते इति ॐसूर्वेदः 'वेदो वै ज्ञानकारणम्' इत्युक्तेः। ॐसुवो वेदस्यास्तिराविर्भावो यस्मात्स ॐस्वस्तिर्महादेवः 'त्वं शब्दयोनिर्जगदादिरात्मा' इति 'सांख्यात्मनः शास्त्रकृतस्तवेक्षा' इति चाष्टमस्कंधे महादेवं प्रति लोकपालोक्तेः 'शास्त्रयोनित्वात्' इति सूत्राच्च। श्रियं गणयाति भार्यात्वेनेति श्रीगणो विष्णुस्तस्येशः श्रीगणेशः 'सदाहं शंकरं सेवे वैकुंठेशोपि भोः सुराः' इति पाद्मात्। ओंस्वस्तिश्चासौ श्रीगणेशश्चेति ॐस्वस्तिश्रीगणेशस्तस्मै

तथा शिवाय नम इत्यर्थः ॥ ' आरोग्यं भास्करादिच्छेत् ' इति स्मृतेर्वक्तृश्रोत्रोरारोग्यतात्तये श्रीसूर्यं प्रणमति । ओंशब्देन ब्रह्मविष्णुरुद्राणां बोधो भवति । ' अकारो वासुदेवः स्यादुकारः शंभुरुच्यते॥ मकारो विधिवाचकः ' इत्येकाक्षरात् । स्वर् स्वर्गे तप्यते सर्वोत्कृष्टत्वेनेति स्वस्तिरिन्द्रः । स्वरव्ययोपपदात्तपऐश्वर्येऽस्मादेवादिकात्कर्त्तरि डिप्रत्यय औणादिकः । श्रिया धनसंपत्त्या गण्यत इति श्रीगणः कुबेरः'कुबेरः श्रीगणः श्रीदः शिवमित्रो धनाधिपः'इत्यभिधानात् । स्वस्तिश्च श्रीगणश्चेति स्वस्तिश्रीगणौ इंद्रकुबेरौ।ओमा विष्णुरुद्रब्रह्मणा सहितौ स्वस्तिश्रीगणौ ओंस्वस्तिश्रीगणौ तयोरीश ओंस्वस्तिश्रीगणेशस्तस्मै तथा।तदुक्तं भविष्योक्तादित्यहृदये'ब्रह्मेंद्रनारायणरुद्रवंदितः स नः सदा यच्छतु मंगलं रविः' इति। ईश एव वंद्यते नत्वनीशःयतः सर्वैर्ब्रह्मादिदेवैःसूर्यो वंद्यतेऽतः स एव तेषामीश इति भावः।तथा च सूर्याय नमः, अस्त्वित्यध्याहार्य्यम्।नहि क्रियाविनिर्मुक्तं वाक्यं भवतीत्युक्त्वा ' कर्तृकर्मक्रियादीनां यदि स्थानं न लभ्यते ॥ अध्याहारं तदा कुर्यान्मुख्यार्थप्रतिपत्तये ' इत्यभियुक्तोक्तेश्चापेक्षितपदानयनमध्याहार इति सूर्यपक्षः ॥ चंद्रस्य पक्षे 'सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा ' इति सर्ववेदाधिकरणब्राह्मणकुलस्याधीशत्वात्सर्वकर्मारंभेऽनुकूलचंद्रेणैव शुभं भवति ' कुर्याच्चंद्रबले सर्वम् ' इति ज्योतिःशास्त्रोक्तेश्च प्रथमं तं नमति । श्रिया दीप्त्या विशिष्टा गणा भगणास्तेषामीशः श्रीगणेशः । यद्वा श्रिया शास्त्रसंपत्त्या विशिष्टो गणः श्रीगणो ब्राह्मणसमूहस्तस्येशस्तस्मै । किंभूताय श्रीगणेशाय ओम्।कोर्थः ब्रह्मरूपिणे।'नक्षत्राणामहं शशी' इति श्रीमुखोक्तेः । पुनः स्वस्ति कल्याणकारिणे'पितृदेवमनुष्याणां स्वस्तिकर्त्ता निशाकरः ' इत्यादिपुराणात् । इह स्वस्तिपदं स्वस्तिकर्त्तरि लाक्षणिकम् । लक्षणा हि मुख्यार्थबाधे गौणार्थकल्प-

नम्। सा चानेकविधा, मंचाः क्रोशंति, शोणो धावतीत्याद्युदाहरणै-रुदाहृता ग्रंथेषु। यथेह मंचपदं मंचस्थे, शोणपदं रक्तवर्णवत्यश्वादौ लाक्षणिकं तथात्रापि स्वस्तीति स्वस्तिकर्त्तरि। लक्षणाबीजं त्वन्वयानुपपत्तिः क्वचित्क्वचिच्च तात्पर्यानुपपत्तिरिह च तात्पर्यानुपपत्तिरेवेत्यलमतिप्रसंगेन इति चंद्रपक्षः॥ अथोंकारस्य 'ओंकारो वै सर्वा वाग्' इत्यादिश्रुतेः सर्ववाग्रूपत्वात्तद्ध्यानस्य च 'कामदं मोक्षदंचैव' इत्युक्तेः सर्वाभीष्टहेतुत्वाच्चादौ तदेवाह। ओं स्वस्ति श्रीगणे शाय नमः। अत्र पट्ट पदच्छेदाः कार्याः। हे श, कोर्थः, हे वरेण्य, 'शश्च शोभावरेण्ययोः' इति वामनः। ननु हेशब्दः संबुद्धिद्योतको भवत्यत्र तदभावात्कथं हे शेत्युक्तम्। तत्रोच्यते। 'हे-शब्देन विनापि स्यात्क्वचिदंतेऽपि हेपदम्'॥ यथा राम प्रसीद त्वं राम हे त्वां भजाम्यहम्, इति प्रबोधचंद्रिकोक्तेर्हेशब्देन विनापि संबुद्धिर्न विरुद्धेति। अथ प्रकृतम्, त्वमोम् कोर्थः ॐकारमक्षरं ब्रह्मस्वरूपमय ध्याय। अय गतावित्यस्य धातूनामनेकार्थत्वाद्ध्यानार्थतापि। 'अनुक्तमप्यूहति पंडितो जनः' इत्यादिप्रयोगदर्शनात् 'अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमानित्यम्' इति बहुधा प्रपञ्चितं शाब्दिकैरतोऽयतेः परस्मैपदप्रयोगोपि न विरुद्ध इति। नन्वोंकारस्य ध्यानं न कोपि करोतीति चेत्तत्राह। 'ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायंति योगिनः॥ कामदं मोक्षदञ्चैव ॐकाराय नमोनमः॥' इति मंत्रात्तद्ध्यानं तु योगिनोपि कुर्वंत्यन्येषां तु का कथेति भावः। किंभूतम् ॐनमः। सर्वोत्कृष्टत्वेन नमस्कारार्हम्। णम् प्रह्वत्वे इत्यस्मादौणादिकोऽसुप्रत्ययः। सर्वोत्कृष्टत्वञ्च प्रणवस्य ब्रह्मविद्योपनिषदि व्याख्यातम् 'ॐमित्येकाक्षरं ब्रह्म यदुक्तं ब्रह्मवादिभिः॥ शरीरं तस्य वक्ष्यामि स्थानं कालं लयं तथा॥ तत्र देवास्त्रयः प्रोक्ता लोका वेदास्त्रयोग्नयः। तिस्रो

मात्रार्द्धमात्राश्च अक्षरस्य शिवस्य च॥ऋग्वेदो गार्हपत्यश्च पृथिवी ब्रह्म एव च । अकारस्य शरीरं तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः ॥ यजुर्वेदोंतरिक्षञ्च दक्षिणाग्निस्तथैव च । विष्णुश्च भगवान्देव उकारः परिकीर्त्तितः ॥ सामवेदस्तथा द्यौश्चाहवनीयस्तथैवच । ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्त्तितः ॥ सूर्यमंडलमाभाति अकारः शंखमध्यगः । उकारश्चंद्रसंकाशस्तस्य मध्ये व्यवस्थितः ॥ मकारश्चाग्निसंकाशो विधूमो विद्युतोपमः । तिस्रो मात्रास्तथा ज्ञेयाः सोमसूर्याग्नितेजसः ॥ शिखा च दीपसंकाशा यस्मिंस्तुप रिवर्तते । अर्द्धमात्रा तथा ज्ञेया प्रणवस्योपरिस्थिता॥ पद्मसूत्रनिभा सूक्ष्मा शिखा या दृश्यते परा॥ सा नाडी सूर्यसंकाशा सूर्यं भित्त्वा तथा परम् ॥ द्वासप्ततिसहस्राणि सूर्यं भित्त्वा तु मूर्द्धनि । वरदः सर्वभूतानां सर्वं व्याप्यैव तिष्ठति ॥ कांस्यघंटानिनादस्तु यथा लीयति शांतये ॥ ओंकारस्तु तथा योज्यः शांतये सर्वमिच्छता ॥ यस्मिन्संलीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते । ध्रुवं हि चिंतयेद्ब्रह्म सोऽमृतत्वाय कल्पते॥'इति । कस्मै, स्वस्ति । कोऽर्थः, स्वस्तये मोक्षाय अत्र चतुर्थी त्वव्ययत्वादेव न । 'कल्याणे भवने मोक्षे स्वस्तीत्युक्तस्तथा हरौ' इत्यभिधानात् । यद्वा किंभूतमों, स्वस्ति मंगलरूपम् । 'सर्वेषां मंगलानां च बीजं प्रणव एव हि' इत्यादिसंहितोक्तेश्च । पुनः श्रीगणे कामाप्तौ, श्रीयंते स्पृहयालुभिरिति श्रियः कामाः, गण्यते प्राप्यत इति गणनं गणनं गण् प्रापणमित्यर्थः । धातूनामनेकार्थत्वादाप्त्यर्थाद्गणेर्भावे क्विपि रूपम् । श्रियां गण् श्रीगण् तस्मै तथा।तथाच' ॐकारं बिन्दुसंयुक्तम्' इति मंत्रार्थोऽत्र ध्वनित इत्योंकारपक्षः ॥ अथ च शास्त्रज्ञानस्य । 'गुरुमूलमिदं सर्वं शास्त्रज्ञानं सुरेश्वरि' इति शंभुवाक्यात्,'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्र-

काशंते महात्मनः' इति श्वेताश्वतरश्रुतेश्च गुरुभक्तिजन्यत्वादादौ गुरुनतिरेव कार्याऽतो गुरुपक्षेपि दशाक्षरीं योजयति ॐ ज्ञानं तदेव स्वं धनमोंस्वं तेन ज्ञानधनेन स्तभ्नाति कर्मप्रवृत्त्या संसारे भ्रमन्तं शिष्यं रुणद्धीत्योंस्वस्तिगुरुः। 'गिरतीह पाप्मानम्' इति श्रुतिप्रतिपादितो गुरुपदार्थोनेन ध्वनितः। स्तंभु रोधनेऽस्मात्कैयादिकादौणादिको डिप्रत्ययः कर्तरीति । अत्र दृष्टांतः यथा कृतापराधं नरं गृहीत्वा राजपार्श्वे गच्छंतं तत्प्रियः कश्चिद्धनं दत्वा तं स्वं मोचयति एवं गुरुरपि ज्ञानधनं दत्वा कर्मणः सकाशान्मोचयतीति ध्येयःनहि गुरूपदेशं विना संसारः शाम्यतीति भावः । श्रीर्लक्ष्मीस्तां गच्छति प्राप्नोतीति श्रीगो विष्णुस्तं नमतीति श्रीगणः।साधनमस्य शिवपक्षे वर्णितम् । ओंस्वस्तिश्रीगणपदाभ्यामत्र 'श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' इति श्रुत्यर्थोपि ध्वनितः । ओंस्वस्तिश्चासौ श्रीगणश्चेति ओंस्वस्तिश्रीगणः, पुनरीशपदेन कर्मधारयः पूर्ववत् । 'किञ्च आचार्यवान्पुरुषो वेद' इति श्रुतेर्भगवत्स्वरूपज्ञानमपि गुरुप्रसादादेव भवतीत्यलं विस्तरेणेति गुरुपक्षः॥ इंद्रस्य सर्वदेवराजत्वात्सोऽपि शास्त्रादौ ध्येय एवेत्यत इंद्रपक्षेप्यस्य योजनामाह । ओमा विष्णुना वामनरूपेण स्वस्ति कल्याणं यस्य स ओंस्वस्तिरिन्द्रःश्रिया समेधिता गणाःश्रीगणा देवाः'श्रिया समेधिताः सर्वे उपारमत विग्रहात्' इति ब्रह्मप्रेषितनारदस्य देवासुरसंग्रामे देवान्प्रत्युक्तेः । अत्र मध्यमपदलोपी समासः । तेषामीशःश्रीगणेश ओंस्वस्तिश्चासौ श्रीगणेश ओंस्वस्तिश्रीगणेशस्तस्मै इंद्राय नमः । अथ शेषस्य सर्वाधारत्वात्सर्वसर्पगणमुख्यत्वेन सर्पादिभीतिवारणाय तमत्र नमस्करोति । शाय नमः । कोर्थः' शेषाय नमः । ' शं वदंति बुधाः शेषम्' इत्येकाक्षरात् । किंभूताय शाय ओंस्वस्तिश्रीगणे । ओंपदेन सत्वादिगुणत्रयसु-

च्यते। 'त्रिगुण्यां प्रणवेपि च' इत्यभिधानात्। तथा च ओमा गुणत्रयेण सुष्ठु अस्ति भवनं यस्य तदोंस्वस्ति, भवनमत्र स्थितिसंहारयोरप्युपलक्षणम्, तच्च ब्रह्मांडं तस्य श्रीः शोभा गण्यतेऽनेनेत्योंस्वस्तिश्रीगण् तस्मै। तथा गणसंख्यानेऽस्तोऽधिकरणे क्विप्। सहस्रशिरसश्शेषस्य कस्मिंश्चिच्छिरोमुकुटैकदेशे सिद्धार्थ इव शोभा ब्रह्मांडस्य। इति पञ्चमस्कंधादौ विशेषतःप्रपंचितम्। वाक्यानि च विस्तरभियेह न लिखितानीति शेषपक्षः॥ 'अनाराध्य जगद्धात्रीं विष्णोर्भक्तिर्न जायते'इति ब्रह्मवैवर्ते प्रकृतिखंडोक्तेः। किञ्च 'आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा' इति मार्कंडेयोक्तेश्चैहिकामुष्मिकफलार्थिभिरवश्यं दुर्गा सेव्याऽतस्तत्पक्षेप्यस्या योजनां कुर्मः। ओंभ्यो वासुदेवादिभ्यः सुष्ठु अस्ति भवनं यस्यास्सा ओंस्वस्तिः 'यद्भ्रूच्छंभवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम्। ब्रह्मणस्तेजसा पादौ' इत्यादुक्तेः। ओंभ्य इति बहुवचनं सप्तशत्यास्तत्प्रसिद्धदेवग्रहणार्थमन्यथा ब्रह्मादित्रयाणामेव ग्रहणं स्यादिति। यद्वोंभ्यो विष्ण्वा

माना रर्णोविका। त एव सद्यः संभूता गणाः शतसहस्रशः' इत्युक्ते-र्गणा निःश्वासोद्भूतास्तेषामीशा तस्यै नमः। अस्यापत्वादाव्याडा-गमाद्यभावेन पुंस्त्वम्। ऋषिरत्र वेदः 'वैदिकत्वं चास्य सर्ववाङ्मयादित्वेनापौरुषेयत्वादिति।'अपौरुषेयं वाक्यं वेदः' इति पूर्वमीमांसायां वेदलक्षणोक्तेः। नहि केनचित्पुरुषेणैतद्रचितमनादित इत्थमेवेयं दशाक्षरी विद्येति प्रसिद्धेरिति दुर्गापक्षः॥ अथ'वाय्वधीनमिदं जगत्'इत्यादिपुराणात्सर्वचेष्टाहेतुत्वाद्वायुमप्यत्र नमस्करोति। ओम्भिः सत्वरजस्तमोभिः सुष्ठुअस्ति भवनं स्थित्युत्पत्तिसंहृतिरूपं यस्य तद्ब्रह्मांडमोंस्वस्ति तस्य श्रीःकल्याणं येन स ओंस्वस्तिश्रीर्वायुः 'त्वं वायो सर्वब्रह्मांडस्वस्तिकल्याणदःसदा। त्वदधीनमिदं सर्वं जगतश्चेष्टितं विभो॥ अतीव कश्मलो देहस्त्वत्संयोगात्परः शुचिः। त्वत्त्यक्तस्तु पवित्रोपि विप्रदेहोऽशुचिर्भवेत्॥ पवित्राणां पवित्रस्त्वं मंगलानां च मंगलम्' इत्यादिसंहितोक्तेः। गण्यंते ज्ञानकर्त्रोपकारकत्वेनेति गणा इंद्रियाणि तेषामीशः प्रवृत्तिहेतुत्वात्स्वामी गणेशः। प्राणवायुं विना किमपि कर्तुमिंद्रियगणैर्न शक्यते तेषां तदधीनत्वात्। प्राणेंद्रियसंवादोपि श्रूयते शास्त्रे। तथाहि इंद्रियैरुक्तं वयं शरीरधारकाणि प्राणैरुक्तं वयमिति परस्परं विवदित्वा तन्निर्णयाय ब्रह्मपार्श्वं गताः। ब्रह्मणोक्तं शरीरान्निर्गत्य पृथक्पृथक् प्रवेशः पुनः शरीरे क्रियताम्, यत्प्रवेशेन शरीरमुत्तिष्ठते तदेव महदिति श्रुत्वा सर्वाणींद्रियाणि प्रविष्टानि शरीरे चेष्टापिनागता। पुनर्ब्रह्मणा वायुं प्रत्युक्तं त्वं प्रविश।ततःप्रविष्टे वायौ शरीरमुत्थितमभूत्ततो ब्रह्मणोक्तमयमेव शरीरधारकः सर्वेभ्यो महान्सर्वेषां भवतां स्वामीति।तथा-च श्रुतिः' अथ खलु प्राण एव प्रज्ञात्मेदं शरीरं परिगृह्योत्थापयति' इति। अत एव वक्ष्यते' उक्थेन रहितो ह्येष मृतकःप्रोच्यते यथा' इति प्रथमपंचदशाध्याये। अथ प्रकृतमनुसरामः ओंस्वस्तिश्री-

श्वासौ गणेशश्चेति तथा तस्मै प्राणरूपाय वायवे नमइति वायुपक्षः । 'ब्राह्मणोऽग्निश्च वै विष्णोः सर्वदेवात्मनो मुखम्' इति स्मृतेः, "अग्निमीळे पुरोहितम्" इति श्रुतेश्च । पुरोऽग्रेऽग्निमहमीळे ईडे । किंभूतं हितं सर्वहितकरम् ' अग्नौ प्रास्ता हुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः' इति । यथा च पूर्वमग्निरेव हितेच्छुभिः सेव्योऽतोऽग्निपक्षेऽपि दशाक्षरीं योजयति । ओमा ज्ञानेन स्वस्ति कल्याणं येषां ते ॐस्वस्तयो जीवाः ' ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' इति श्रुतेः' कषायपक्तिः कर्माणि ततो ज्ञानं प्रवर्त्तते । ज्ञानान्मोक्षमवाप्नोति' इति स्मृतेश्चोताञ्जीवान् श्रयत्याश्रयतीत्योंस्वस्तिश्रीःसंसारस्तस्य गणो लोभादयः'न विद्यते ते ग्रहणानुबंधः कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृताः ॥ लोभादयो येऽबुधलिंगभावाः ' इति गोवर्द्धनधारिणं प्रतीन्द्रोक्तिः । अग्रहणानुबंधः संसारस्तद्धेतवःसंसृतिहेतवस्तत्कृता अज्ञानकृता इत्यर्थः । अत्र संसारस्य लोभादीनां चाज्ञानकार्यत्वेन समानत्वाद्गणगाणिभावो ध्येयः । तस्य संसारगणस्य लोभादेरीशो निवर्त्तकः । अत्रायमाशयः । अग्नेर्यज्ञादिकर्मणा मुख्यसाधनत्वात्तत्साध्या चांतःकरणशुद्धिः, सा च लोभादिनिवृत्तिरूपैव ततः शुद्धेंतःकरणे ज्ञानमुदेति । अत एवोक्तं । 'कर्मणा ज्ञानमातनोति ज्ञानेनामृतीभवति । अथामृतानि कर्माणि ' इति श्रुत्या कर्मणाग्निसाध्येन यागादिनेत्यर्थः। तथा चाग्नये नम इत्याग्निपक्षः । अधिधर्मराजस्य सर्वरोगाधिपत्वाद्धर्माविवेचकत्वेन सर्वलोकहिताय प्रवृत्तत्वाच्च शास्त्रादौ वक्तृध्येतॄणां रोगादिभयापनुत्तये ध्येयत्वान्नमस्करोति । ॐविष्णुः स च गदाधरो गयाक्षेत्राधीशरूपोत्र श्राद्धस्तेन स्वस्तिर्मुक्तिर्येषां ते ॐस्वस्तयःपितरः । 'गदाधरो गयाक्षेत्रे पितॄणां मोक्षदायकः' इति बृहन्नारदीयोक्ति-

स्तैः श्रीयते सेव्यते इत्योंस्वस्तिश्रीधर्मराजः । 'यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणाः'इत्यादिपंचमस्कंधोक्तेः । गणा निजसैनिकास्तेषामीशो गणेशः।'यमसैन्ये स्तुत्यनेर 'इति कोशात्। पुनरोंस्वस्तिश्रीश्चासौ गणेशश्चेति तथा तस्मै । यद्वा ओमा ज्ञानेनार्थात्तत्सदुद्देशेन गयापिंडप्रदानेन स्वस्ति येषां त ॐस्वस्तयः पितरः। श्रिया पितृलोकलक्ष्म्या विशिष्टा ये गणा एकत्रिंशत्संख्याकाः 'विश्वो विश्वभुगाराध्य' इत्यादिना मार्कंडेयोक्ताः श्रीगणाः । ॐस्वस्तीनां पितॄणां श्रीगणाॐस्वस्तिश्रीगणास्तेषामीशः स्वामी धर्मराजस्तस्मै नमः ।'वाराणस्यां च यो वासो हरिभक्तिस्तथैवच॥ गयापिंडप्रदानं च ब्रह्मज्ञानं च तत्समम्' इति बृहन्नारदीयादिति धर्मराजपक्षः । अथ च कुवेरस्य सर्वधनाधिपत्वात्तदाप्तये सोऽपि नमस्कार्य इति ॐमा शंकरेण स्वस्ति कल्याणं यस्य सःॐस्वस्तिः कुवेरस्तस्य शिवसखत्वप्रसिद्धेः । सखाहि सख्युः कल्याणं करोत्येवेति भावः । श्रीणां धनानां रक्षका गणाः श्रीगणा यक्षास्तेषामीशश्श्रीगणेशः । ॐस्वस्तिश्चासौ श्रीगणेशश्चेति तथा तस्मै कुवेराय नमः इत्यर्थः । इति कुवेरपक्षः । वरुणस्य जलाधिपत्वेन जलभीनिवृत्तये तमपि नमस्करोति । ॐ ज्ञानं तदेव स्वमोंस्वं तत्स्तृणंत्याच्छादयंत्योंस्वस्तीनि रत्नानि मुक्ताहीरकादीनि । 'नह्यन्यो जुषतो ज्योष्यान्बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः । श्रीमदादभिजात्यादिर्यत्र स्त्री द्यूतमासवः' इति दशमे नारदोक्तेः। अथ स्तृणातेर्डिः । तैश्श्रीर्यस्य स ॐस्वस्तिश्रीर्वरुणः । 'मुक्तावैदूर्यहीरकैः । अलंकृतशरीराय वरुणाय नतोस्म्यहम्' इति मंत्रात्। गणानां यादोगणानामीशो गणेशः । 'यादोगणानामृषभं प्रचेतसम्' इति तृतीयस्कंधोक्तेः। ॐस्वस्तिश्चासौ गणेश ॐस्वस्तिश्रीगणेशस्तस्मै वरुणाय नम इत्यर्थः। इति वरुणपक्षः । अथ वागाधिष्ठा-

तृदेवीमप्रतिबद्धवाग्व्यापाराय नमति। ओं ज्ञानं सूत इत्योंसूःसरस्वती 'बुद्धिप्रदां शारदाम्'इत्युक्तेः। अस्ति श्रीरनयेत्यस्तिश्री। 'धनं शोभां सर्वमानं लभते वाक्प्रसादतः' इत्यादिपुराणात्। ओंसूश्चासावस्तिश्रीरित्योंस्वस्तिश्रीः, गणानां छात्रादिसमूहानामीशोऽनयेति गणेशा, ओंस्वस्तिश्रीश्चासौ गणेशा ओंस्वस्तिश्रीगणेशा तस्यै तथा। यथा पुंस्त्वमत्र तथा व्याख्यातमधस्तात्। सरस्वत्यै नम इत्यर्थः। ग्रंथविस्तरभियात्र बहु वक्तव्यमप्युज्झितमिति॥ओंस्वस्तिश्रीगणेशाय नमः॥ गणेशं पार्वतीशञ्च स्कन्दं राधापतिं हरिम्॥गुरुवर्यं नमस्कृत्यै कुर्वे व्याख्यां सुबोधिनीम्॥१॥ मातृकायाः परं रम्यां यज्ज्ञात्वासुखमेति ना। मातृका पाठिता येन पितरं तं महामतिम्॥ २ ॥ मातृकार्थो विना मातृकृपया नैव बुध्यते। तां सारस्वततेजोभां सदा पालनतत्पराम्॥ ३ ॥ अतो वंदे प्रथमतो गिरं शब्दार्थबोधिनीम्॥ मातृत्वात्सर्वशास्त्राणां मातृकेति निगद्यते॥ ४ ॥ आदिक्षान्ताक्षरमयी ज्ञेया सा बुद्धिमत्तरैः॥ उत्तमा मध्यमा चाथावरा सा त्रिविधा मता॥ ५ ॥ अधिकारिभिदा नाद्या कल्पादौ ब्रह्मणा तता॥ ततः प्रादुरभूत्सर्वं शास्त्रं वेदपुरस्सरम्॥ ६ ॥ अथ तत्प्रादुर्भावं यथाशास्त्रं वर्णयिष्यामः॥ मातृका त्रिविधा स्थूला सूक्ष्मा सूक्ष्मतरापि च॥ गुरूपदेशतो ज्ञेया नान्यथा ग्रंथकोटिभिः॥ १ ॥ तथा च परमात्मपूजा भवति। तत्र प्रथमोऽधिकारी स्थूलया मातृकयार्चयेत्, मध्यमः सूक्ष्मया, सूक्ष्मतरया चोत्तम इति विभागः। स्थूलादिरूपत्रयं चैवमवगन्तव्यम्। नियतकालपरिपाकानां हि प्राणिकर्मणां मध्ये परिपक्वानामुपभोगेन प्रत्ययात्। इतरेषाञ्चापरिपक्वानां भोगाभावेन तदर्थायाः सृष्टेरनुपयोगात्। प्राकृतप्रलये ग्रस्तसमस्तप्रपञ्चा माया स्वप्रतिष्ठे निष्कले परशिवाख्ये ब्रह्मणि

विलीना यावदवशिष्टकर्मपरिपाकं वर्त्तते । उक्तं हि 'प्रलये व्याप्यते तस्याश्चराचरमिदं जगत्' इति, तथा 'जगत्प्रतिष्ठा देवर्षे पृथिव्यप्सु प्रलीयते । तेजस्यापः प्रलीयंते तेजो वायौ प्रलीयते ॥ वायुः प्रलीयते व्योम्नि तदव्यक्ते प्रलीयते । अव्यक्तं पुरुषं ब्रह्म निष्कले संप्रलीयते ॥' इति । अव्यक्तं माया, तस्याश्च सम्यक् प्रलयो नाम मुक्ताविव नात्यन्तिको विनाशः; किन्तु सुप्तौ सती मायागोचरवृत्तीनामप्यभावात् । स्वप्रतिष्टपरमात्मप्रकाशस्याप्यत्यन्तनिर्विकल्पकतया तद्बलाद्भासमानाया अप्यप्रतिभातप्रायत्वं न पुनरनवभानमेव, प्रतिभासमात्रशरीरस्य हि मिथ्यावस्तुनोऽनवभाने सत्यभाव एव स्यादिति नचाभाव एवास्तु उत्तरसर्गानुपपत्तिप्रसंगादिति । अवशिष्टैः प्राणिकर्मभिश्च तस्यां मायायां विलीयैव क्रमेण प्राप्तपरिपाकैः स्वफलप्रदानाय परमेश्वरस्य सिसृक्षात्मिका मायावृत्तिर्जन्यते सैषा मायावस्था ईक्षणकामतपोविचिकीर्षादिशब्दैरभिधीयते । 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' इतिछांदोग्ये 'सऐक्षत लोकानु सृजे' इत्यैतरीये 'सोकामयत बहुस्यां प्रजायेय' इति तैत्तिरीये 'तपसाचीयत ब्रह्म' इति मुंडके 'विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुताम्' इति प्रपञ्चसारे । अपरिपक्वकर्मभेदाद्घनीभावस्तदर्थव्यापारश्चिकीर्षा परिपक्वकर्माकारपरिणतमायाविशिष्टं बिन्दुस्तदिदमविभागावस्थमव्यक्तमुच्यतेऽत एव तस्योत्पत्तिः स्मर्य्यते 'तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम' इति भारतादौ । स एव जगदङ्कुराकारोऽध्यात्मञ्चाधारादानाभिव्यज्यमानकुंडल्यादिशब्दैरुच्यते । यथाहुः 'शक्तिः कुंडलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमां ज्ञात्वेत्थं न पुनर्विशन्ति जननीगर्भे गर्भकत्वं नराः' इति । 'कुण्डलिनी सर्वथा ज्ञेया सुषम्ना तु गतैव सा' इति च

बिन्दोः कालक्रमेणाचिच्चिदचिच्चिदंशविभागात्रैविध्यं तत्रैवोक्तम् ‘कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा। स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते । स बिन्दुनादबीजत्वभेदेन च निगद्यते ’ इति। अचिदंशः स्थूलो बीजं चिदचिन्मिश्रः सूक्ष्मो नादः स एव पुरुषश्चिदंशः परो बिंदुः स एवेश्वरस्तस्य च त्रिधाविभागसमये शब्दब्रह्मापरनामधेयस्य परस्योत्पत्तिरुक्ता ‘ बिंदोस्तस्माद्भिद्यमानाद्रवो व्यक्तात्मकोभवेत् । स रवः श्रुतिसंपन्नः शब्दब्रह्मेति गीयते ’ इति। स एव ब्रह्मात्मको रवो जगदुपादानं बिन्दुतादात्म्येन संगतोऽपि प्राणिनां मूलाधारे व्यज्यत इत्युक्तम्। ‘स तु सर्वत्र संस्यूतो जाते भूतांकुरे पुनः। आविर्भवति देहेषु प्राणिनामर्थविस्तृते ॥’ इति। देहेष्विति मूलाधारे प्रदेशस्तस्यानुस्यूतस्य रवस्य संस्कृतपवनबलेनाभिव्यक्तिराविर्भावस्तत्र हि पवनोत्पत्तिरुक्ता ‘ देहेऽपि मूलाधारेऽस्मिन्समुद्यति समीरणः ’ इति। ज्ञातमर्थं विवक्षोः पुरुषस्येच्छया जातेन प्रयत्नेन मूलाधारस्थः पवनः संस्कृतस्तेन पवनेन सर्वत्र स्थितं ब्रह्म तत्राभिव्यज्यते तदभिव्यक्तं शब्दब्रह्म कारणं बिन्द्वात्मकं स्वप्रतिष्ठया निष्पंदं सत्परा वागित्युच्यते; तदेव नाभिपर्यंतमागच्छता तेन पवनेनाभिव्यक्तं विमर्शरूपेण मनसा युक्तं सामान्यस्पंदप्रकाशरूपिणीकार्यं बिन्दुतत्त्वात्मिकाधिदैवमीश्वररूपा पश्यंती वागित्युच्यते; तदेव ब्रह्म तेनैव वायुना हृदयपर्यंतमभिव्यज्यमानं निश्चयात्मिकया बुद्ध्या युक्तं विशेषस्पंदरूपनादबिन्दुमयी अधिदैवतहिरण्यगर्भरूपा मध्यमा वागित्युच्यते; तदेवास्यपर्य्यंतं तेनैव वायुना कंठादिस्थानेष्वभिव्यज्यमानककारादिक्षकारान्तवर्णमालारूपं परश्रोत्रग्रहणयोग्यं बीजात्मकमधिदैवतं विराड्रूपं वैखरी वागित्युच्यते। तदुक्तमाचार्यैः ‘मूलाधारा-

त्प्रथममुदितो यस्तु भावः पराख्यः पश्चात्पश्यंत्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः॥ वक्त्रे वैखर्य्यथ रुरुदिषोरस्य जंतोः सुषुम्नाबद्धस्तस्माद्भवति पवनप्रेरितो वर्णसंज्ञः ’ इति। तत्र वैखरी स्थूला मातृका सा प्रथमाधिकारिणः पूजोपकरणम् , मध्यमा सूक्ष्मा मातृका मध्यमाधिकारिणः पूजोपकरणम्, कारणकार्यबिन्द्वात्मिका परा, पश्यंतीरूपा सूक्ष्मतरा मातृका तूत्तमाधिकारिणः पूजोपकरणम्, मातृकात्रैविध्यं सर्वमंत्रोपलक्षणम् । अतः सर्वे मंत्रा उक्तरीत्या स्थूलसूक्ष्मसूक्ष्मतररूपाः प्रथममध्यमोत्तमाधिकारिविषया इत्यर्थः । बहुवक्तव्यश्चायमर्थ उपदेशमंतरेण शास्त्रैर्दुरधिगमत्वात्फलातिशयवत्त्वाच्चेति । अयमेवार्थः श्रीभगवता पाणिनिनापि शिक्षायां भंग्यंतरेण स्फुटीकृतः ‘अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि’ इत्यादिना शिक्षाप्रयोजनं सम्यग्वर्णोच्चारणं तच्च व्याकरणेनैव सिद्धं किमनयेति । सत्यम् । व्याकरणे तु शब्दानुशासनमेव चिंत्यते ‘ अथ शब्दानुशासनम् ’ इति कौस्तुभोक्तेः । किञ्च व्याकरण एतच्चिंत्यते गोशब्दः सास्नादिमत्यर्थे साधुरिह तु गोशब्दो जिह्वामूलेनोच्चारयितव्य इति भेदः । तदुक्तं तत्रैव ‘प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः । पुनर्व्यक्तीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम् ॥’ इति । अस्यार्थश्च नन्वकारादयो वर्णाः स्वस्थानेनैवोच्चार्य्यंते ,परस्थाननिराकांक्षत्वात्किमर्थोऽस्या आरंभस्तत्राह । प्रसिद्धमिति । बुद्धिहीनैः प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातं संतं पुनः पश्चात्स्फुटीकरिष्यामि वाचो गिर उच्चारणे उद्गिरणे विधिम्। ननु ‘विधिरत्यंतमप्राप्तौ’ इति भाट्टैः स्मर्य्यते न चात्रात्यंतमप्राप्तिः। उक्तं चाधस्तात् ‘ अकारादयो वर्णाः स्वस्वस्थानेनैवोच्चार्यंते ’ इति । उच्यते । यद्यपि स्वस्थानस्थिता एवोच्चार्यंते तथाप्यप्राप्तोंशः कथनीयोऽनुप्रदानादिरेतदर्थो विधिशब्दः । वागुच्चारणं

च वर्णैः क्रियते कति ते वर्णा इत्यत आह ' त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः संभवतो मताः। प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा' इति संभवतः संभूतेः सकाशान्मता ज्ञाताः। वर्णो वृणोतेः। अत्र ' यथोक्तं लोकवेदयोः ' इत्युक्तं तत्र किं लोके संस्कृतविषया एव वर्णा उत सर्वभाषाविषया इत्यत आह। ' प्राकृते संस्कृते चापि' इति। अपिशब्दादपभ्रंशादिष्वपि ये वर्णाः संभूतेर्वा जाताः संतस्तेऽपि ' स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा' इति। ब्रह्मणा स्वयमेवादरेण प्रकर्षेणोच्चारिता इति। कथं ते त्रिषष्टिः कथं वा चतुःषष्टिरित्याशंक्याह। ' स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः। यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः॥ अनुस्वारो विसर्गश्च ᳵकᳶपौ चापि पराश्रयौ। दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो ऌकारः प्लुत एव च। ' इति। अथ व्याख्या। स्वरा विंशतिरेकश्चेति स्मृता इति। स्वृ शब्दोपतापयोः। स्वर्य्यते शब्द्यतेऽनेन व्यंजनमिति करणेऽच्। कथं ते एकविंशतिरतः प्रथमतश्चतुरो यथास्मृति विवृणोति। अइउऋ एते चत्वारो ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदेन द्वादश 'ऌकारस्य दीर्घादयो न सन्ति' इति स्मरणात् ह्रस्व एवोपदिश्यते ते एते त्रयोदश एऐओऔ संध्यक्षराणि 'संध्यक्षराणामपि ह्रस्वा न संति' इति स्मरणात् दीर्घाः प्लुता एव गृह्यंते ॥ त एतेऽष्टौ। पूर्वैस्त्रयोदशभिः सहैकविंशतिः। स्पर्शानां पञ्चविंशतिः। कादयो मावसानाः स्पर्शाः। जिह्वामूलतालुमूर्द्धदंतोष्ठादिभिः परस्परं स्पर्शैरभिनिष्पन्ना आविर्भवन्तीति स्पर्शाः पूर्वैरेकविंशत्या सह षट्चत्वारिंशत्। यादयश्च स्मृता ह्यष्टाविति। यकारादयश्चाष्टौ यरलवशषसहा इति। आद्याश्चत्वारोऽन्तस्थसंज्ञाः। उपरितना ऊष्माणः। पूर्वैः षट्चत्वारिंशद्भिः सह चतुःपंचाशत्। 'चत्वारश्च यमाः स्मृताः' इति। यच्छन्तीति यमाः स्वयमेवोपरमेरन्। के ते यमा लोके। क्ख्ग्घ्

इति अनन्त्यानन्त्यसंयोगे मध्ये यमः पूर्वगुणः इत्यौदव्रजिः। तथा च नारदः 'अनन्त्यश्च भवेत्पूर्वो ह्यन्त्यश्च परतो यदि। तत्र मध्ये यमस्तिष्ठेत्सवर्णः पूर्ववर्णयोः ॥ वर्गान्त्यान् शषसैः सार्द्ध-मंतस्थैर्वाऽपि संयुतान्।दृष्ट्वा यमा निवर्तंते आदेशिकमिवाध्वगाः॥' इति। नारदौदव्रज्योर्मतेन यमो वर्णागम इति विधीयते। अस्मा-च्छास्त्रात् 'चत्वारश्च यमाः स्मृता' इति वर्णांतरत्वेनो-पदेशा त्तसंयोगशास्त्रात् । अथ चतुरक्षराणामुदाहरणमिति प्रकृत्य अग्निरिति यमौ गकारौ द्वौ नकार इकारश्च। अन्ये तु यमं वर्णा यंति मन्यंते। तथा च शौनकः 'स्पर्शा यमाननुनासिकान्स्वाप-रेषु स्पर्शेष्वननुनासिकेषु'इति। पूर्वैश्चतुःपंचाशद्भिः सहाष्टपंचाश-त् ॥ ४ ॥ अनुस्वारो विसर्गश्चेति। स्वरमनुभवतीत्यनुस्वारः अ-न्वकारानुगमेनानुस्वारः इति। वक्ष्यति च 'दंत्यमूलः स्वरानुगः' इति। विसर्ग इति। विविधं सृज्यते क्षिप्यत इति विसर्गः। ≍क≍पौ चापि पराश्रयौ। परौ ककारपकारावाश्रयः स्थानं ययोस्तौ परा-श्रयौ। तथा च वक्ष्यति-'अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभाजि-नः' इति। 'कपावपि परौ स्मृतौ' इति '≍क≍पौ चापि कपा-श्रयौ' इति च पाठः। परावनुस्वारविसर्गयोः परावित्यर्थः। कका-रपकाराश्रयौ तत्स्थानकावित्यर्थः। चशब्दादनुस्वारविसर्जनीया-विति पराश्रयौ। दुःस्पृष्टश्चेति। ईषत्स्पृष्टो वर्णधर्मो न वर्णा-तरम्। वक्ष्यति च 'अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषत्' इत्यादि। तथा चौदव्रजिः 'स्पृष्टकरणं स्पर्शानां दुःस्पृष्टमन्तस्थानाम्' इति। य-ण्भक्तिश्च यकारोऽभिधत्तेऽतो ऌकारो दुःस्पृष्टधर्मा। चशब्दा-द्दकारश्च इतिशब्दः पूरणार्थः। ऌकार इति ऌवर्णात्कारप्रत्ययः। प्लुत एव चेति। ऌकारस्य दीर्घादयो न संतीत्यधस्तात्परमतमु-

पन्यस्तं स्वमतमाह। ऌकारः प्लुत एव चेति त्रिमात्रश्च शब्दाद्ध्रस्वः। ननु वर्णानां प्रयत्न उपरिष्टाद्वर्णयिष्यत्येव किमर्थमप्रस्तुतः प्रयत्नः कथ्यते । उच्यते । प्लुतविधानार्थं तावत् ऌकार उच्चारयितव्य उच्चारिते च ऌकारे लाघवार्थमप्रस्तुतोऽपि प्रयत्न उच्चारितः ।दुःस्पृष्टश्चेति । अनुस्वारादयः प्लुतांताः पंच । पूर्वैरष्टपंचाशद्भिः सह त्रिषष्टिः । चतुःषष्टिः कथम् अनुस्वारो विसर्गश्चेति पाठांतरात् । कथं पुनरनुस्वारद्वयं ह्रस्वदीर्घभेदेनेति ब्रूमः । तथा चौदव्रजिः 'अनुस्वारावंआंइत्यनुस्वारौ ह्रस्वदीर्घौ दीर्घाद्ध्रस्वो वर्णः' इति । अत एव चतुःषष्टिः ॥ ५ ॥ अथ वर्णसंख्यापरिज्ञानोत्तरज्ञानं चिंत्यते । क एषामुच्चरयिता कथं चोच्चारयति केन क्रमेण चेत्याह । 'आत्मा बुद्ध्या समर्थ्यार्थान्मनो युंक्ते विवक्षया । मनः कायाग्निमाहंति स प्रेरयति मारुतम् ॥ ६ ॥ मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम् । प्रातःसवनयोगन्तं छंदोगायत्रमाश्रितम् ॥ ७ ॥ कंठे माध्यंदिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम् । तारं तार्तीयसवनं शीर्षस्थं जागतानुगम् ॥ ८ ॥ सोदीर्णोमूर्ध्न्यभिहतो वक्रमापद्यमारुतः । वर्णाञ्जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः ॥ ९ ॥ 'अथ व्याख्या। आत्मेति । शरीरेंद्रियमनोबुद्धिव्यतिरिक्त आत्मा । कथं पुनरेव तदवगम्यते यथा शरीरेंद्रियव्यतिरिक्त आत्मा । उच्यते । द्रष्टृत्वात् द्रष्टा हि दृश्याद्व्यतिरिक्तो भवति प्रयोजकत्वात् । बुद्ध्यादीनि कर्तृप्रयोज्यानि करणत्वात् कुठारवदिति न्यायात्, श्रुतेश्च । न्यायस्तावत् 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' इति । स्वर्गादिफलसाधनानि कर्माणि श्रूयंते स्वर्गश्च नवशरीरोपभोग्यस्तद्व्यतिरिक्त आत्मा । शरीरादेःश्रुतेश्च 'तस्य हैतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते, तेन प्रद्योतेन आत्मा निष्क्रामति चक्षुषो वा मूर्ध्नो वाग्भ्यो वा शरीरदेशेभ्यः' इति शरीरापक्रमणाच्च

शरीरादिव्यतिरिक्त आत्मा। छांदोग्यश्रुतेश्च 'एवमेवैष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतीरूपं संपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते' इति। क एषामुच्चारयितेति पृष्टे तस्योत्तरं दत्तमात्मेति। कथमुच्चारयति केन क्रमेणोच्चारयतीतिप्रश्नद्वयस्योत्तरं दीयते। स आत्मा बुद्ध्या सहार्थान्बाह्यान्समर्थ्य सम्यगवगम्यार्थप्रत्यायनाय यदि शब्दा उच्चार्यन्ते तदा मनो युंक्ते। वक्तुमिच्छया तच्च मनो नियुंक्ते आत्मा। मनः कायाग्निमाहन्तीति। तच्च मनो नियुक्तं सत्कायाग्निं शरीराग्निमाभिमुख्येन हन्ति तेनातिसंघर्षं प्राप्नोति सोऽग्निरभिहतः सन्मारुतं वायुं प्रयुंक्ते प्रेरयति। मारुतो वायुरुरसि वक्षसि चरन्मंद्रं गंभीरं स्वरमुत्पादयति 'मंद्रस्तु गंभीरे' इत्यमरः। प्रातःसवनेन सह योगोऽस्येति प्रातस्सवनयोगस्तम्। तथा च सुयज्ञः 'मंद्रया वाचा प्रातःसवनम्' इति। गायत्रं छन्दोऽस्याश्रयः॥ एतेन गायत्रीछंदोपि तत एव जातमिति ध्वनितम्। कंठ इति। अत्र मारुतः सवनं छंदस्स्वरं चरन्नित्यनुवर्त्तते। कंठे चरन् वायुर्मध्यमं स्वरं जनयति मध्यंदिनं युनक्तीति माध्यंदिनं सवनभाजं त्रिष्टुप्छंदोनुगामिनम्। तारमिति। तृतीयसवनभाजं तारं स्वरं मूर्ध्नि चरन्वायुर्जनयति जागतं छंदोनुगच्छतीति जागतानुगस्तम्। शीर्षे छंदसीति। शिरःशब्दस्य शीर्षादेशस्तत्र भवं शीर्षण्यम्। स वायुरुदीर्ण ऊर्द्धगतो मूर्द्धानं यावदुपरितनां गतिमलभमानः शिरःकपालेनावष्टब्धत्वात्पुनः प्रत्यावृत्य वक्त्रमेवापद्य वर्णान् जनयत्युत्पादयति। पुनर्मारुतग्रहणं स्पष्टार्थम्। तेषां वर्णानां जन्यमानानां विभागो विवेकः पञ्चधा पंचप्रकारः स्मृतः। कैर्हेतुभिः पञ्चधा तत्राह। स्वरत इत्यादि। स्वरस्थानेवहेतून्व्याख्यास्यामः। वर्णज्ञातारः पूर्वे मुनय इत्येवं प्राहुस्तं वर्णानां पञ्चधा विवेकं निपुणं स्फुटमुच्यमानं हे श्रोतारः यूयं

निबोधत शृणुत । अत्र किञ्चिदुच्यते बालव्युत्पत्त्यर्थम्। ननु सर्वमेवैतदनुपपन्नम् । कथम् । आत्मा बुद्ध्या सहार्थान्समर्थ्य मनो युंक्ते इति व्याख्यातम् । आत्मनश्च विनियोजकभावो नोपपद्यते अकर्तृत्वात्तस्य । तथा च श्रुतिः 'असंगो ह्ययं पुरुषः ' इति, 'अस्थूलमनण्वह्रस्वम्' इत्यादिका च । भगवता चैवमात्मस्वरूपं व्याख्यातम् । आत्मनश्च नियोजकभावे शरीरेंद्रियमनोबुद्धिव्यतिरिक्त इति शरीरादिव्यतिरिक्त आत्मा मनो युंक्ते इत्येतदनुपपन्नम् । उच्यते । अयमात्मा समर्थ्यार्थान्मनो युंक्ते इत्येतत् क्षेत्रज्ञाभिप्रायं क्षेत्रज्ञस्यैतदेव स्वरूपं यन्नियोजकत्वम् । तथा च मनुः 'योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते ॥ यः करोतीति कर्माणि स भूतात्मेत्युच्यते बुधैः ॥ जीवसंज्ञोन्तरात्मान्यः सहजः सर्वदेहिनाम् । येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च कर्मसु ॥ तावुभौ भूतसंपृक्तौ महाक्षेत्रज्ञ एव च ॥ उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं संव्याप्य तिष्ठति ॥ ' इति संव्याप्येति परमात्मानमाहुः । तथा च व्यासः- 'द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ॥ क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोक्षर उच्यते ॥ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः । यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ' ॥ ननु यद्यात्मा बुद्ध्या समर्थ्यार्थानित्युदाहृतो यो नित्यःक्षेत्रज्ञ एवात्रात्माभिप्रेतो भवेत्ततः क्षेत्रज्ञ एवात्मशब्दस्य चरितार्थत्वात् शरीरेंद्रियमनोबुद्धिव्यतिरिक्तत्वं कतरस्माच्छब्दात्त्वया वर्णितं किमर्थं च । उच्यते । आत्मा बुद्ध्येत्यत्र द्वावप्यात्मानौ तौ क्षेत्रज्ञपरमात्माभिधेयरूपावभिप्रेतौ तंत्रेणोच्चारितौ। तंत्रेणोच्चारणं सूत्राणामलंकारः । एवं चेत्किमर्थं परमात्मनो वर्णनिमित्तत्वं यदुक्तं तन्नोच्यते । अपवर्गसाधनोपायत्वाच्छिक्षायाः अपवर्गस्य चायमेवोपायः शरीरादिव्यतिरिक्तस्य परमात्मनो बोधः । अनवबोधस्य तु बुद्ध्या-

दिभिरैक्यं भवति किं तदपवर्गसाधनं यस्य शिक्षोपकारे वर्त्तते। उच्यते। वेदाश्च यज्ञाश्च। तथा च श्रुतिः। 'तमेतं वेदानुवचनेन विविदिषंति ब्रह्मचर्येण तपसा श्रद्धया यज्ञेनानाशकेन च' इति। वेदानुवचनं यज्ञगतमंत्रांगत्वात्सम्यग्वर्णोच्चारणेन यस्मान्मोक्षमवाप्नोति। वक्ष्यति च 'सुखमतुलं च' अतुलं सुखं मोक्ष एव भवति। 'स्वरतः कालतः स्थानात्प्रयत्नानुप्रदानतः। इति वर्णविदः प्राहुर्निर्णयं तं निबोधत॥ उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः।' इति। अलमतिप्रसंगेन प्रकृतमनुसरामः। उदात्तश्चेति। स्वरतः कालत इत्येतौ द्वौ हेतू श्लोके विवृणोति। स्वर उदात्तादिः कालो मात्राप्रभृतित्रिमात्रपर्यंतः।उदात्त इत्युपरिष्टात्परिगृहीतः।अनुदात्तस्तद्विपरीतः।अधस्ताद्गृहीतइत्यर्थः।स्वरितइति न स्वरांतरं स्वरतीतिस्वरितः।आक्षेपनिष्पाद्यो य उदात्तानुदात्तविकारः।तथा च नारदः। 'उच्चादुच्चतरं नास्ति नीचान्नीचतरं तथा। त्रैस्वर्ये स्वरसंज्ञायां किं स्थानं स्वर उच्यते॥ उच्चनीचस्थयोर्मध्ये साधारण इति श्रुतिः। तं स्वरं स्वरसंज्ञायां प्रतिजानंति शैक्षिकाः॥' स्वरास्त्रय इति। त्रय एव ऋग्यजुर्विषयाः। पञ्च सप्त च सामसु। ह्रस्व एकमात्रो दीर्घो द्विमात्रः प्लुतस्त्रिमात्रः। 'निमेषकाला मात्रा स्यात्'इत्यौदव्रजिः। तथा च नारदः। 'निमेषकाला मात्रा स्याद्विद्युत्कालेति चापरा' इतिशब्दः प्रकारार्थः। अनेन प्रकारेण कालतो हेतोः स्वरतश्च विषयविभागनियमः। तथा च नारदः।'स्वर उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित एव च। व्यंजनान्यनुवर्त्तते यत्र तिष्ठति स स्वरः'इति।'ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि'॥११॥ व्याख्यातमेतत्।'उदात्ते निषादगांधारावनुदात्त ऋषभधैवतौ। स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः॥१२॥ अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरःकण्ठःशिरस्तथा। जिह्वामूलञ्च दन्ता-

श्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥ १३ ॥ ओभावश्चविवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च । जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥ १४ ॥ यद्योभावप्रसन्धानमुकारादि परं पदम् । स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः ॥१५॥ हकारं पञ्चमैर्युक्तमन्तःस्थाभिश्च संयुतम् । औरस्यं तं विजानीयात्कण्ठ्यमाहुरसंयुतम् ॥ १६ ॥ स्पष्टार्थाः ॥ 'कण्ठ्यावहाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू । स्युर्मूर्द्धन्या ऋटुरषा दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः ॥ १७ ॥ जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्त्योष्ठ्यो वः स्मृतो बुधैः । ए ऐ तु कण्ठ्यतालव्या ओऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ ॥ १८ ॥ अर्द्धमात्रा तु कण्ठ्यस्य एकारैकारयोर्भवेत् । ओकारौकारयोर्मात्रा तयोर्विवृतसंवृतम् ॥ १९ ॥ संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम् । घोषा वा संवृताः सर्वे अघोषा विवृताः स्मृताः ॥२०॥ स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम् । तेभ्योऽपि विवृतावेङौ ताभ्यामैचौ तथैव च ॥ अनुस्वारयमानां च नासिका स्थानमुच्यते । अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः ॥ २२ ॥ स्थानत इति यदुक्तं तदाह । कण्ठ्याविति । स्थानं कंठादि । अहावकारहकारौ कण्ठ्यौ कण्ठतो जातौ । इच्विति । इकारश्च चवर्गश्च यकारशकारौ च एते तालव्यास्तालुतो जाताः । चु इत्युकारानुबंधो वर्गं ज्ञापयति वर्गादावन्यत्रापि कु चु टु तु पु इत्येवमादिषु । तथा च पाणिनिः । 'अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः' इति । आपिशलिरपि । 'स्पर्शवर्गस्य स्पर्शग्रहणे च ज्ञेयं वर्गस्य ग्रहणं स्थानेष्वित्यधिकारः' इति । उकारः पवर्गश्च ओष्ठाभ्यां जातौ । ऋकारः टवर्गश्च रेफषकारौ च मूर्द्धन्या मूर्द्धजा भवेयुः । लृकारस्तवर्गश्च लकारसकारौ च दन्त्या दन्तोद्भवाः ॥ १७ ॥ कवर्गस्तु जिह्वामूले जातः । प्रोक्तो विज्ञैः । वकारो दन्तेभ्य ओष्ठाभ्यां च जातः । एकार ऐकारश्च कंठतस्तालुतश्च जातौ ।

ओकार औकारश्च कंठोष्ठाभ्यां जातौ ॥ १८ ॥ एकारस्य ओकारस्य च सवर्णग्राहकत्वादैकारस्य औकारस्य चैतेषां चतुर्णां संध्यक्षराणां सम्बन्धिनी अर्द्धमात्रा कण्ठ्या कंठजा भवतीत्यर्थः। अध्यर्द्धास्ताल्वोष्ठस्थाना इति ॥ १९ ॥ स्पष्टार्थौ ॥ २० ॥ २१ ॥ अयोगेति । अनुस्वारो विसर्गश्च ≍क ≍पौ च इति चत्वारोऽयोगवाहाः । तथा चौदव्रजिः । 'अयोगवाहा अः इति विसर्जनीयः ≍क इति' जिह्वामूलीयः ≍प ≍फइत्युपध्मानीयः अंइत्यनुस्वारः नासिक्यः । न विद्यते योगः संयोगो वर्णांतरेण येषां तेऽयोगवाहास्ते चाश्रयस्य ककारादेः स्थानं भाजितुं शीलं येषां त आश्रयस्थानभाजिनः । अन्ये तु यमानप्ययोगवाहान्मन्यंते तेषां मतेऽयोगवाहशब्दः अश्वसमितावयवो रूढिशब्दोऽश्ववर्णवद्वेदितव्यः।अनुस्वारस्वरूपमाह।'अनुस्वारप्रकृतिस्तु पाणिनिनैव कथिता 'मोनुस्वारः' इति ॥२२॥ मूलम्॥'अलाबुवीणानिर्घोषो दंतमूल्यः स्वरानुगः। अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यं ह्रोः शषसेषु च ॥२३॥ अलाबुःतुंबी अलाबुयुक्तवीणाया निर्घोष इव शब्दो यस्य सोऽलाबुवीणानिर्घोषः स्थानं दन्तमूलं तत्र भवो दन्तमूल्यः।स्वरानकारादीननुगच्छत्यनुभवतीति स्वरानुगः।हकाररेफयोः शषसेषु च सदा भवति। तथा च नारदः ।' आपद्यते मकारो रेफोष्मसु प्रत्ययेष्वनुस्वारम् । यवलेषु परसवर्णं स्पर्शेषु चोत्तमापत्तिम् ' इति । ' अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कंठः शिरस्तथा । जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ' इतीमं श्लोकमनुवादरूपं केचित्पठंति ॥ २३ ॥ ' अनुस्वारे विवृत्यां तु विरामे चाक्षरद्वये । द्विरोष्ठौ तु विगृह्णीयाद्यत्रौकारवकारयोः ॥ २४ ॥ व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रान्दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत् । भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत् ॥ २५ ॥ यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्राँ इत्यभिभाषते । एवं रंगाः

प्रयोक्तव्याः खे अराँ इव खेदया ॥ २६ ॥ रंगवर्णान्प्रयुंजीरन्नोग्रसेत्पूर्वमक्षरम् । दीर्घस्वरं प्रयुंजीयात्पश्चान्नासिक्यमाचरेत् ॥ २७ ॥ हृदये चैकमात्रस्तु अर्द्धमात्रस्तु मूर्द्धनि । नासिकायां तथाऽर्द्धं च रंगस्यैवं द्विमात्रता ॥ २८ ॥ हृदयादुत्करे तिष्ठन्कांस्येन समनुस्वरम् । मार्दवं च द्विमात्रं च धन्वाँ इति निदर्शनम् ॥ २९ ॥ मध्ये तु कंपयेत्कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत् । सरंगं कंपयेत्कंपं रथीवेति निदर्शनम् ॥ ३० ॥ एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः । सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३१ ॥ गीती शीघ्री शिरःकंपी तथा लिखितपाठकः । अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च पडेते पाठकाधमाः ॥ ३२ ॥ माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः । धैर्यं लयसमर्थश्च पडेते पाठका गुणाः ॥ ३३ ॥ शंकितं भीतमुद्धुष्टमव्यक्तमनुनासिकम् । काकस्वरं शिरसिगं तथा स्थानविवर्जितम् ॥ ३४ ॥ उपांशु दष्टं त्वरितं निरस्तं विलंबितं गद्गदितं प्रगीतम् । निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यम् ॥ ३५ ॥ प्रातः पठेन्नित्यमुरःस्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन । माध्यंदिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसंकूजितसन्निभेन ॥३६॥ तारं तु विद्यात्सवनं तृतीयं शिरोगतं तच्च सदा प्रयोज्यम् । मयूरहंसाम्बुभृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरःस्थितेन ॥ ३७ ॥ अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषन्नेमस्पृष्टाः शरः स्मृताः । शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निबोधानुप्रदानतः ॥ ३८ ॥ अस्यार्थः । स्वरतः कालतः स्थानतो वर्णानां भेदः कथितः । अधुना प्रयत्नतो भेदः कथ्यते । प्रकर्षेण यत्नो वर्णोच्चारणं प्रत्यस्पृष्टादिभिस्स प्रयत्नः । अजिति प्रत्याहारग्रहणम् । अइउऋऌएऐओऔएतेऽस्पृष्टाः । यणो यरलवा एते ईषत्स्पृष्टाः । शरिति प्रत्याहारग्रहणम् । शषस एते नेमस्पृष्टा अर्द्धस्पृष्टा इत्यर्थः । शेषा हलः । हलूं प्रत्याहारः

प्रयोक्तव्यवर्णास्तु ᳲकᳲपाभ्यां सविसर्गकाः । श्वासाघोष-
त्पूर्वमक्ष्ख्यमहाप्राणप्रयत्नकाः ॥ २ ॥ घोषसंवारनादाल्पप्राणा
हृदये ीयकाः ॥ घोषसंवारनादाख्यमहाप्राणप्रयत्नकाः ॥ ३ ॥
रंगस्त्वारचतुर्थास्तु वर्णा वर्गेषु कीर्तिताः ॥ महाप्राणं
स्वरा प्रोक्ता अल्पप्राणाधिकास्तथा ॥ ४ ॥ वर्णपंचमवर्णास्तु
मध्यसंवारनादकाः ॥ यमयोर्वावसानास्तु वर्णाः प्रोक्ता
रथ्यक्षणे: ॥ ५ ॥ घोषसंवारनादाल्पप्राणकाः सुगमोक्तिभिः ॥ सा-
च४ः सान्तमादाय महाप्राणाधिकास्तथा ॥६॥ विवाराघोषश्वासा-
ख्यप्रयत्नाः परिकीर्तिताः ॥ घोषसंवारनादाख्यमहाप्राणास्तथैव
च ॥ ७ ॥ हकारस्य तु विज्ञेयाः प्रयत्नाः शब्दवित्तमैः ॥ यंत्रचतु-

| | |
|---|---|
| कखचछटठतथपफᳲᳲतत्सदृशयमाः ᳲक ᳲपविसर्गाःशषसाः२६एतेश्वासाघोषविवाराः | कगङचजञटडणतदनपबमएतत्सदृशयमाः यरलवा एते २९ ऽल्पप्राणाः |
| गघङजझञडढणदधनबभमएतत्सदृशयमाः यरलवाः ३१ घोषसंवारनादाः | खघछझठढथधफभएतत्सदृशयमाअनुस्वारविसर्गᳲकᳲप शषसहाः२८एतेमहाप्राणाः |

| गात्रमयत्नाः | विवाराघोषश्वासाल्पप्राणाः | विवाराश्वासघोषमहाप्राणाः | | संवारनादघोषाल्पप्राणाः उदात्तानुदात्तस्वरिताः | | | संवारनादघोषामहाप्राणाः | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अक्षराणि | कचटतप | खछठथफ | शषस | गजडदब ञमणन | अइउऋ लृएऐ ओऔ | यरल व | घझढधभ | ह |
| आभ्यंतरप्रयत्नाः | स्पृष्टः | | ईषद्विवृतः | स्पृष्टः | संवृतः ह्रस्वः विवृतः | ईषत्स्पृष्टः | स्पृष्टः | ईषद्विवृतः |

ष्कं चात्र लेख्यम् ।'छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥ ४१ ॥ शिक्षा घ्राणं
तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ॥ तस्मात्सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके
महीयते ॥ ४२ ॥ उदात्तमाख्याति वृषोंगुलीनां प्रदेशिनीमूल-
निविष्टमूर्धा ॥ उपांत्यमध्ये स्वरितं द्रुतं च कनिष्ठिकायामनुदा-
त्तमेव ॥ ४३ ॥ उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात्प्रचयं मध्यतोंगुलिम् ॥

निहतं तु कनिष्ठिक्यां स्वरितोपकनिष्ठिकाम् ॥ ४ ॥ अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः। स्वरितः कर्णमूले तु नासाग्रे प्रचयः स्मृतः ॥ उदात्तं भ्रुवि पातव्यं प्रचं नासाग्रमेवच । हृत्प्रदेशेऽनुदात्तं तु तिर्यग्जात्यादिरीरितः ॥अधो रक्तोऽनुदात्तः स्यादुदात्तोऽताम्र ईरितः । उपरिरक्तास्तिरोरक्तो वा स्वरितश्च कीर्त्तितः ॥ स्वरितपरा अताम्राः प्रचयाः परिकीर्तिताः । एकपदे नीचपूर्वोऽपूर्वो वाच्यवान्यतरस्युक्तो जात्यः॥ जात्ये तु पितृदानवद्धस्तम् । अंतोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तनीचस्वरितम् । मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तं त्र्युदात्तमितिनवपदशय्या ॥४५॥ अग्निः सोमः प्रवो वीर्यं हविषां।स्वर्बृहस्पतिरिंद्राबृहस्पती ।अग्निरित्यंतोदात्तं सोम इत्याद्युदात्तं प्रेत्युदात्तं वइत्यनुदात्तं वीर्यं नीचस्वरितं हविषां मध्योदात्तं स्वरितिस्वरितं बृहस्पतिरिति द्व्युदात्तमिंद्राबृहस्पतीतित्र्युदात्तम्। अनुदात्तो हृदि ज्ञेयोमूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः ॥ स्वरितः कर्णमूलीयः सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः ॥ ४६ ॥ चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रञ्चैव वायसः ॥ शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुलस्त्वर्द्धमात्रकम् ॥ ४७ ॥ कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम्॥ न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्बिषात् ॥ ४८ ॥ सुतीर्थादागतंव्यक्तंसाम्नायंसुव्यवस्थितम् ॥ सुस्वरेणसुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ॥ ४७ ॥ मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह॥स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्तियथेंद्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥ ५० ॥ अवक्षरमनायुष्यं विस्वरं व्याधिपीडितम् ॥ अक्षताः शस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके ॥ ५१ ॥ हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम् ॥ ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति ॥ ५२ ॥ हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम् ॥ ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ५३ ॥ शंकरः शांकरीं प्रादाद्दाक्षीपुत्राय धीमते ॥

वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः ॥ ५४ ॥ येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ॥ कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥५५ ॥ येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः ॥ तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ॥ ५६ ॥ त्रिनयनमुखनिःसृतामिमां य इह पठेत्प्रयतः सदा द्विजः ॥ स भवति धनधान्यकीर्त्तिमान्सुखमतुलं च समश्नुते दिवीति दिवीति ' इति पाणिनीयशिक्षा । शंकरः शिवः शांकरीं सुखकरीं विद्यां दाक्षी नाम्नी ऋषिकन्या तस्याः पुत्राय बुद्धिमते । नन्वप्रकृतं पाणिनिनमस्करणं किमर्थम् । उच्यते । अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषदित्यादिना प्रत्याहाराः शिक्षाग्रथिताः प्रत्याहाराश्च पाणिनिना शंकरादधिगम्य व्याकरणं शिष्योपकाराय प्रोक्तं स्वप्रत्याहाराल्लोके प्रवर्त्तितास्तदर्थां स्तुतिः ॥ १ ॥ त्रिनयनमुखान्निस्सृता यथा गुहायाः सिंहस्तेन नेयं कृतेत्यर्थः । सदातनत्वात् । अतुलं मोक्षाख्यं सुखं स्वर्गादेः सुखस्य परिमितकालत्वेन तुलितत्वादित्यर्थः ।अत्र वर्णसमाम्नाये श्रीनन्दिकेशेन सर्वविश्वोत्पत्तिस्थितिसंहृतिकारणतत्त्वानामुद्भवः षड्विंशतिकारिका रूपेण पतंजलिव्याघ्रपादव सिष्ठादिभ्यः प्रतिपादितो यथा तथोच्यतेऽधुना । तथा हि इह खलु सकललोकेशनायकः परमशिवः सनकसनंदनसनातनसनत्कुमारनंदिकेशपतंजलिव्याघ्रपादवसिष्ठादींश्चोद्धर्तुकामोढक्कानिनादव्याजेन चतुर्दशसूत्रात्मकं तत्त्वमुपदिदेश तदनु ते सर्वे मुनीन्द्रवर्य्या ऊचुः। चिरमुपास्ति कृतवतामस्माकं श्रीशिवश्चतुर्दशसूत्रात्मकं तत्वमुपदिदेशतत्सूत्रजालस्य तत्त्वार्थं श्रीशिवप्रसादानुग्रहेण श्रीनंदिकेश एव ज्ञातुं समर्थोऽत एनमेव वयं पृच्छाम इति । एवं परामृश्य श्रीनंदिकेशं प्रणिपत्य ते तत्तत्वं पप्रच्छुः । स च षड्विंशतिकारिकाभिस्तेभ्य उपदेष्टुकाम इदमाचष्ट ।'नृत्या-

वसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम् ॥ उद्धर्त्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥१॥ ' नटराजराजः विश्वरूपविलासवैचित्र्यचमत्कारप्रवीणत्वस्य वागाद्यगोचरत्वेन तत्प्रकाशकत्वान्नटराजराजः तांडवादिविलासवैचित्र्यचमत्कारप्रवीणत्वस्य त्वन्यत्र नटादावपि सत्त्वात् । स स्वात्मज्ञापनाय ढक्कानिनादव्याजेन सनकादीनुद्धर्तुकामोऽयं नवपञ्चवारं स्वांतर्गतात्मतत्वं प्रकटयितुं तदवसाने ढक्कां ननाद । अहं तदेतद्विततनिनादोद्भूतवर्णाद्यात्मकमाद्यमतिरहस्यं मातृकारूपेण सनातनमपि शब्दशास्त्रप्रवृत्तये किंचिद्वैलक्षण्येन श्रीशिवेनोक्तं शिवसूत्रजालं शिवसंबंधिसूत्रसमूहं कल्याणरूपसूत्रसमूहं वा विमृशे विचार्य स्फुटीकरोमि विमर्शे इति छांदसप्रयोगः ॥ १ ॥ अनुबन्धाः पाणिन्याद्युद्देश्यका एवेत्याह । ' अत्र सर्वत्र सूत्रेषु ह्यंत्यवर्णचतुर्दशम् ॥ धात्वर्थं समुपादिष्टं पाणिन्यादीष्टसिद्धये॥२॥ अत्र'एषु सर्वत्र सर्वेषु अंत्यं वर्णं'इत्यपि पाठः। उभयथापि बहुव्रीहिकदंबमन्यपदार्थः समासांतः । धात्वर्थं धातुमूलकशब्दशास्त्रप्रवृत्त्यर्थम् तथा चोक्तमिंद्रेण।'अंत्यवर्णसमुद्भूता धातवः परिकीर्त्तिताः' इति ॥ २ ॥ तत्राद्येन सूत्रेण सर्ववर्णानां समस्तभुवनानां च समुद्भवरूपं स्वात्मतत्त्वमुपदिष्टमित्याह।'अकारो ब्रह्मरूपः स्यान्निर्गुणः सर्ववस्तुषु ॥ चित्कलाभिं समाश्रित्य जगद्रूपी उणीश्वरः ॥३० ॥ अनेन अः परमेश्वरो निर्गुणः इ मायामाश्रित्य उर्व्यापकः सगुणः ण् ईश्वरः आसीदिति सूत्रार्थः सूचितः । सर्ववस्तुषु परापश्यंतिमध्यमावैखर्य्यादिषु चित्कलामाश्रित्येत्यत्र गायत्रीमीं पद्मानीमीतिवदीकारो बोध्यः। तत्र सूत्रे ईकारस्तु त्रिनेत्रेण नोदितः ढकारेण प्रकटीक्रियते 'ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोणः' इतिसूत्रस्थेनेति।अत्रप्रमाणम् 'असद्वा इदमग्रआसीत, ततो वै सदजायत' इति श्रुतिरेव। असदव्याकृतरूपं ब्रह्म वै निश्चितमग्रे सृष्टेः प्रागिद-

मकाररूपाक्षरात्मकमासीत् । ततोक्षरादसतो वै सत्सगुणमजायत जातमिति तदर्थः । श्रीगीतोपनिषत्स्वपि 'अक्षराणामकारोस्मि' इति ॥ ३ ॥ अतएवाह । ' अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमेश्वरः ॥ आद्यमंत्येन संयोगादहमित्येव जायते ॥ ४ ॥ ' 'आदिरंत्येन सहेता' इत्यादिप्रत्याहारसूत्राद्यप्यनेनाऽसूचि । आदिरकारः अंत्यो हकारः अकारादिसकारांताः सर्वे वर्णाः परमात्मन एव भवंतीत्यर्थः ॥ ४ ॥ सर्वं परात्मकं पूर्वं ज्ञप्तिमात्रमिदं जगत् ॥ ज्ञप्तेर्बभूव पश्यंती मध्यमा वाक् ततः स्मृता ॥ ५ ॥ वक्त्रे विशुद्धिचक्राख्ये वैखरी सा मता ततः ॥ सृष्ट्याविर्भावमाध्यात्मं मध्यमा वाक्समायुतम् ॥ ६ ॥ ईश्वर एवानादिजीवोपाध्याश्रितकर्मप्रेरितप्राणव्यापारान्तरं नाभौ पराख्यं मायया परिणाममुपेत्य हृदि पश्यंत्याख्यमुपेत्य विशुद्धिचक्रे मध्यमाख्यमुपेत्य पश्चाद्वक्त्रे वैखर्य्याख्यमवाप्य वेदादिरूपो भवतीत्यर्थः । श्रुतिरपि 'वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे' इति सूक्ष्मा वागेव विश्वाकारेण विवर्त्तते परिणमते वेति तदर्थः । श्रुत्यंतरमपि 'वाचैव विश्वं बहुरूपनिबद्धं तदेतदेकं विभज्योपभुङ्क्ते ' इति । अतात्त्विकोऽन्यथाभावो विवर्तो रज्जुभुजंगवत् । तात्त्विकोऽन्यथाभावो हि परिणामो मृद्घटकनककुंडलादिवत् । उभयरूपेण कथनं तु वेदांतसांख्यरूपमतद्वयाभिप्रायेण । सांख्यस्य पक्षः परिणामवादो वेदांतपक्षस्तु विवर्त्तवाद इति संक्षेपशारीरिकोक्तेः । अत्र सर्ववर्णसंभवकाले 'अइउऋऌ' इति वर्णपंचकमेव सर्वेषामेकोनपंचाशदक्षराणां भूतपञ्चकानां पञ्चवर्गाणां क्रमेण योनिः । तच्च ह्रस्वदीर्घभेदाद्द्विविधम् । प्लुतस्य पाश्चात्त्यादनादित्वं नास्तीति । एतत्सर्वं मातृकाव्याख्याने श्रीभगवदुद्धवसंवादादिना विशदीकरिष्याम इति ॥ ६ ॥ सर्वत्रेकारस्य स्वातंत्र्यमाह द्वाभ्याम् । अकारं सन्निधीकृत्य जग-

तां कारणत्वतः। इकारः सर्ववर्णनां शक्तित्वात्कारणं मतम् ॥ ७॥ जगत्स्रष्टुमभूदाञ्छा यदा ह्यस्य तदाभवत् ॥ कामबीजमिति प्राहुर्मुनयो वेदपारगाः ॥ ८॥ अक्षरार्थः स्पष्ट एव कामबीजस्वरूपं तंत्रांतरे। 'स्वप्रकाशपरमात्मवस्तुनो दृश्यमानजगतः सिसृक्षया॥ कामतः परशिवप्रवेशनं कामबीजमिदमेव निश्चितम्' इति। 'बीजं बिंदुद्वयारूढं सार्द्धं योनिस्वरूपकम् ॥ महाकामकलारूपमात्मानं चिंतयेत्प्रिये' इति श्रीरुद्रेणोमां प्रत्युक्तम् ॥ ८॥ उक्तमेव द्रढयति 'अकारो ज्ञप्तिमात्रः स्यादिकारश्च कला मता। उकारो विष्णुरित्याहुर्व्यापकत्वान्महेश्वरः ॥ ९॥' उकार इति उर्व्यापकत्वेनेश्वर आसीदित्यर्थके उणीश्वर इत्यत्रोति भावः। ननु सर्ववेदान्तेषु परमेश्वर एक इति निश्चितत्वात् मायामीं चित्कलामाश्रित्य जगद्रूपोऽभूदित्युक्तेरद्वैतहानिःस्यादित्याशंक्याह। 'ऋलृकसर्वेश्वरो मायां मनोवृत्तिमदर्शयत् ॥ तामेव वृत्तिमाश्रित्य जगद्रूपमजीजनत् ॥ १०॥' ऋपरमेश्वरः लृमायाख्यां मनोवृत्तिमदर्शयत् तामेवाश्रित्य स्वेच्छया जगज्जनयामासेत्यर्थः। ऋपरमेश्वरइत्यत्र 'ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिंगलम्' इति श्रुतिः प्रमाणम्। ऋतमिह तपर इदुदितिवत्। ऋतपदार्थमेव परं ब्रह्मेत्यर्थः 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इतिश्रुत्यन्तरम् श्रीतंत्रेऽपि 'मम चाभून्मनोरूपं लृकारः परमेश्वरी' इति ऋलृवर्णौ यथा तादात्म्यमापन्नौ संध्यादिकार्यं कुरुतस्तथा मायेशावपि जगत्कार्यं कुरुत इति भावः ॥ १० ॥ तादात्म्यमेवाह 'वृत्तिवृत्तिमतोरत्र भेदलेशो न विद्यते। चंद्रचंद्रिकयोर्यद्वद्यथा वागर्थयोरिव ॥ ११ ॥' इवेह पादपूरणे। अत्र प्रकृते भेदलेशो वास्तव इत्यर्थः ॥११॥ 'स्वेच्छया स्वस्य चिच्छक्तौविश्वमुन्मीलयत्यसौ ॥ वर्णानां मध्यमं क्लीबमृलृवर्णद्वयं विदुः ॥१२॥' असौ परमात्मा स्वेच्छयैव स्वसंबंधिचिच्छक्तौ चिदाभा-

सग्रहणयोग्यायांमायायां निमित्तभूतायां विश्वं जनयति । 'मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्'इति श्रीमुखोक्तेः । क्लीवं ब्रह्मरूपमित्यर्थः ॥ १२ ॥ ननु जन्यजनकभावेऽद्वैतहानिः स्यादित्याशंकायां 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'इति श्रुतिमाश्रित्याह । 'एओङ् मायेश्वरात्मैक्यविज्ञानं सर्ववस्तुषु ॥ साक्षित्वात्सर्वभूतानां स एक इति निश्चितम्'॥ १३ ॥ जन्यजनकत्वं च स्वस्यैव तत्तद्रूपेण विवर्त्तनादितिनाद्वैतहानिः । अकारोकाराभ्यां निष्पन्नप्रणवरूपेणोंकारेण सगुणनिर्गुणयोरैक्ये बोधिते तेनैव दृष्टांतेन सर्वत्रैक्यबुद्धौ द्वैतनाशो ध्वनितः । समष्टिव्यष्टिभेदेन पूर्ववर्णयुतद्वितीयस्य तद्युततृतीयस्य च समन्वयबोधकमिदं सूत्रम् । अकारात्मकः ईमायायुक्तः सन् य एरूपः स ओङ् अनुज्ञानरूपः प्रज्ञानात्मना सर्ववस्तूनामेकत्वादद्वैतोपपत्तेर्न नानात्वम् । जन्यजनकत्वं च स्वयं प्रविश्य तत्तद्रूपेण वर्त्तत इत्यर्थः । वटबीजन्यायेन च पूर्वसूत्रद्वयजनितं वर्णपञ्चकमेव सकलजगत्कारणमिति प्रागुक्तमुत्तरसूत्राणामपि तस्मादेव संभवः समष्टिव्यष्टिभेदेषु पूर्ववर्णयुतद्वितीयस्य तद्युततृतीयस्य च संयोगजनकमिदं सूत्रं समन्वयबोधकमप्येकत्वेनोक्तं सर्ववेदसंमतं च । तथा हि सनकदक्षिणामूर्त्तिसंवादे महावाक्यविवरणे 'शृणुत्वं सावधानेन चतुर्णामपि साम्यता । देवानाञ्च महाभाग चतुष्काणामिहोच्यते ॥ ब्रह्मशब्देन यद्वस्तु तत्प्रज्ञानमिहोच्यते । प्रज्ञानं ब्रह्म यस्माद्धि तस्माद्ब्रह्माऽस्म्यहं ततः ॥ यतो जीवोऽपि ब्रह्मैव ततस्तत्त्वमसीति वै । अन्यस्य वारणार्थाय ह्ययमात्मेत्यथर्वणि' ॥ इति ॥ १३ ॥ ननु स्वात्ममूर्त्तस्य परमेश्वरस्य कथं जगत्कारणत्वं तत्राह 'ऐऔच् ब्रह्मस्वरूपः सञ्जगत्स्वांतर्गतं ततः ॥ इच्छया विस्तरं कर्त्तुमाविरासीन्महामुनिः ॥ १४ ॥' ततः

ईक्षणानंतरं स्वांतर्गतं स्वस्मिन्सूक्ष्मरूपेण स्थितं जगद्विस्तारयितुमिच्छुः ऐआदिशक्तियुतः अकाराक्षरः पूर्वंगताकारेकारे दीर्घयोगस्यैव ऐकारत्वमेकत्वं च सम्यग्ज्ञानस्वरूपः परमेश्वरो यः पूर्वसूत्रगतः स एव अकारदीर्घौकारदीर्घस्यैव योगे औकारत्वं यः प्रज्ञानात्मा मायाशबलितः स औकारः य आऊ इति॥१४॥एवं शिवादिप्रकृत्यंतानां चतुर्दशतत्वानामुद्भवं वर्णयित्वा पंचभूताद्युद्भवमग्रिमसूत्रस्य वर्णैराह। 'भूतपंचकमेतस्माद्धयवरमहेश्वरात्॥ व्योमवाय्वम्बुवह्न्याख्यभूतान्यासीत्स एव हि॥१५॥ 'हयवररूपान्महेश्वरात् सएवपरमेश्वरएव॥१५॥ 'हकाराद्व्योमसंज्ञश्च यकाराद्वायुरुच्यते ॥ रकाराद्वह्निस्तोयं तु वकारादिति शैववाक् ॥ १६ ॥' 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापः' इतिश्रुतेरेतस्मात्परमेश्वराद्भूतपंचकमाकाशादिप्रपंचकारणमासीदिति॥१२॥नन्वस्मिन्सूत्रे भूतपंचकमासीदित्युक्तंतत्राकाशादि चतुष्टयमेवोक्तं न पृथ्वीति तत्राह। 'आधारभूतं भूतानामन्नादीनां च कारणम्॥ अन्नाद्रेतस्ततो जीवः कारणत्वाल्लणीरितम्॥ १७॥'भूतानामुद्भिज्जस्वेदजजरायुजांडजानां प्रधानकारणत्वादाधारभूतंपृथ्वीति लणितिशब्देनोच्यते ॥ १७॥ पुनस्तन्मात्रोत्पत्तिक्रममाह 'शब्दस्पर्शौ रूपरसगंधाश्चञमङणनम् ॥ व्योमादीनां गुणा एते जानीयात्सर्ववस्तुषु ॥१८॥'पञ्चवर्गेष्वंतिमवर्णा गुणास्ते च पांचभौतिकवस्तुमात्रे संतीति भावः॥ १८ ॥ द्वाभ्यां कर्मेंद्रियोत्पत्तिमाह। 'वाक्पाणी च झभञासीद्विराड्रूपचिदात्मनः ॥ सर्वजंतुषु विज्ञेयं स्थावरादौ न विद्यते ॥ १९॥ वर्गाणां तुर्यवर्णा ये कर्मेन्द्रियगणो हि ते ॥ घढधष् सर्वभूतानां पादपायुउपस्थकाः' ॥२०॥' संध्यभावश्छांदसः। अन्यत्स्पष्टम् ॥१९॥२०॥ ज्ञानेंद्रियसंभवमाह। 'श्रोत्रत्वङ्नयनघ्राणजिह्वाधींद्रियपंचकम् ॥ सर्वेषा-

मपि जंतूनामीरितं जबगडदश् ॥ २१ ॥' 'वर्गाणां मध्यमा वर्णा ज्ञानेंद्रियगणः स्मृतः' इति मंत्रशास्त्रात् एतेभ्य एव सर्वेषां ज्ञानेंद्रियगणोद्भव इति ज्ञेयमेवं पूर्वत्रापि ॥ २१॥ प्राणादिपंचकोद्भवमाह । 'प्राणादिपंचकं चैव मनो बुद्धिरहंकृतिः ॥ बभूव कारणत्वेन खफछठथचटतव् ॥ २२ ॥ वर्गद्वितीयवर्णोत्था: प्राणाद्याः पंच वायवः ॥ मध्यवर्गत्रयाज्जाता अन्तःकरणवृत्तयः ॥ २३ ॥' स्पष्टार्थद्वयमेतत् । अथ सर्वप्राणिकारणत्वेनाद्यन्तवर्गद्वयाक्षरग्रहणेन संपुटीभावं प्रकृतिपुरुषाभ्यां संभावयति । 'आद्यंतद्वयसंभूतौ पुरुषः प्रकृतिर्गुहा ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चैव सर्वेषामेव कारणम् ॥ तत्संभूतिस्तु विज्ञेया कपाभ्यामिति निश्चितम् ॥ २४ ॥' ककारपकारौ प्रकृतिपुरुषाविति ॥ २४ ॥ ततोवस्थात्रयमाह । 'सत्वं रजस्तम इति गुणानां त्रितयं पुरा । समाश्रित्य महादेवः शषसर् क्रीडति प्रभुः ॥ २५ ॥ सृष्टेः प्राक् शषसर्वर्णसंभूतान् सत्वरजस्तमोगुणानाश्रित्य परःशिवः क्रीडति सर्वत्रेत्यर्थः॥ २५ ॥ 'शकाराद्राजसं रूपं षकारात्तामसोद्भवः ॥ सकारात्सत्वसंभूतिरिति त्रिगुणसंभवः॥२६॥' स्पष्टम् । 'तत्वातीतः परः साक्षी सर्वानुग्रहविग्रहः ॥ अहमात्मापरो हल्स्यादिति शंभुस्तिरोदधे ॥ २८ ॥' सर्वतत्त्वजनकः स्वयं तत्वातीतः सर्वलोकहितार्थं प्रकटितदेहःसर्वसाक्षी परः परमेशो हल्स्यादिति ढक्कानिनादव्याजेन सर्वेषां मुनीनां तत्त्वमुपदिशंस्तिरोदधेंतर्द्धानमापेत्यर्थः । हकारः शिववर्णस्स्यादिति शैवागमात्॥इत्युपमन्युव्याख्यातनंदिकेशकाशिकादिसूत्रप्रकाशिका।अथैतज्ज्ञापकं चक्रमपि एतदग्रेलिखामः।अयमेवार्थः श्रीकृष्णचन्द्रेण निजभक्तशिरोमणय उद्धवाय 'स एष जीवो विवरप्रसूतिः' इत्यत्र भङ्ग्यंतरेणोक्तः। तथाहि।'स एष जीवो विवरप्रसूतिःप्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः॥ मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः ॥' इति । स एषः अपरोक्षः जीवयतीति जीवः ।

# अथ चक्रम् ।

| | |
|---|---|
| अ | अकारो ज्ञप्तिमात्रं निर्गुणब्रह्माक्षरः सः |
| इ | इकारश्चित्कला मायाशक्तिस्तामाश्रित्य कामबीजं भूत्वा |
| उ | उकारो व्यापकः सगुण ईश्वरः संपन्नः । अत्र द्वैतशंकायामाह |
| ऋ | ऋकारः परमेश्वरः |
| ऌ | ऌकारो मनोवृत्तिमाश्रित्य चराचरमजीजनद्वृत्तिवृत्तिमतोर्द्वैताभावेन चंद्रचंद्रिकयोरिवैक्यम् ।तथा च ऌवर्णः पृथगेव न द्वैतम् |
| ए | अकारेकारसंयोगादेकारः स च मायासहित ईश्वरः सचैक एव |
| ओ | अकारोकारनिष्पन्न ओकारः निर्गुणब्रह्म सगुणब्रह्म चानेन दृष्टांतेन जन्यजनकभावद्वैतशंकापास्ता वटबीजन्यायेनाद्वैतासमर्थनश्च |
| ऐ | स्वांतर्गतजगद्विस्तारयितुमिच्छुरादिशक्तियुत ईश्वर आकारदीर्घैकारयोगात्तत्सिद्धेः |
| औ | आऊ इत्याविर्भाव आविर्भूतजगद्विस्तारयितुमुद्युक्तः ततः परमेश्वरात् |

| | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ह | आकाशः | ल | पृथिवी | ण | रसः | ध | पादौ | य | त्वक् | ख | प्राणः | थ | उदानइति प्राणपंचकमासीत् | क | पुरुषः | स |
| य | वायुः | ञ | शब्दः | न | गंधःश्वसनं | ढ | पायु | ग | चक्षुः | फ | अपानः | च | मनः | प | प्रकृतिः | ह |
| व | जलम् | म | स्पर्शः | झ | वाक् | ध | उपस्थ | ङ | घ्राणं | छ | समानः | ट | बुद्धिः | श | रजः | |
| र | अग्निः | ङ | रूपम् | भ | पाणीअचिदात्मनोविराट्पस्य | ज | श्रोत्रम् च कर्मेंद्रियपंचकमासीत् | द | जिह्वेति ज्ञानेंद्रियपंचकर्मा | ठ | व्यानः | त | अहंकृतिः | ष | तमः | |

सत्यमेतैः पुरुषः सर्वत्ररमते तत्वातीतःसर्वसाक्षी पुरुषोनेन कथ्यते।अथ तत्वमाह।तथाचार्यतयोद्दस्य कीर्त्तनात्परम् मन उत्पन्नं तत्रैव लीयते इत्युक्तम् आर्येना।कारेणां।त्येनयोगेदमितोश्वरात्मकं सर्वं निरूपितं भवतीति सिद्धम् ।

परमेश्वरः । अपरोक्षत्वे हेतुः विवरेष्वाधारादिचक्रेषु प्रसूतिरिव प्रसूतिरभिव्यक्तिर्यस्य सः । तामेवाभिव्यक्तिमाह । घोषेणेति । घोषेण पराख्येण नादवता प्राणेन सह गुहामाधारचक्रं प्रविष्टः सन्मनोमयं सूक्ष्मं रूपं पश्यंत्याख्यं मध्यमाख्यं च मणिपूरकचक्रे विशुद्धिचक्रेचोपेत्य प्राप्य वक्त्रे मात्रा ह्रस्वादिः स्वर उदात्तादिर्वर्णोऽकारादिरित्येवं वैखर्य्याख्यः स्थविष्ठोतिस्थूलो नानावेदशाखात्मकोऽभवदिति ॥ तथा च श्रुतिः । 'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ॥ गुहा त्रीणिनिहिता नेङ्गयंति तुरीयं वाचो मनुष्या वदंति ' इति।एतदर्थस्तु वाक्परिमितानि चत्वारि पदानि स्थानानि परापश्यंतीमध्यमावैखरीति तानि च ये ब्राह्मणा मनीषिणोऽध्यात्मकुशलास्ते विदुः । तेषां मध्ये आदौ त्रीणि पदानि गुहायां शरीरे आधारनाभिहृदयेषु निहितानि नेङ्गयन्ति न जानन्ति तुरीयं चतुर्थं वैखर्य्याख्यं मनुष्या वदन्ति मनुष्याणां वदने वर्तमानोऽर्थबोधकः शब्दो भवतीत्यर्थः ।'मूलाधारः स्वाधिष्टानं मणिपूरकमेवच । अनाहतं विशुद्ध्याख्यमाज्ञाषट्चक्रमुच्यते ॥ मूलाधारे लिंगमूले नाभौ चहृदिकण्ठके । भ्रुवोर्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रे क्रमाच्चक्राणि चिन्तयेत्' इति योगचिन्तामण्युक्तेः । अत्रार्थेऽभियुक्तैरप्युक्तम् । ' या सा मित्रावरुणसदनादुच्चरन्तित्रिषष्टिवर्णानन्तः प्रकटकरणैः प्राणसङ्गात्प्रसूते । तां पश्यंतीं प्रथममुदितां मध्यमां बुद्धिसंस्थां वाचं वक्त्रे करणविशदां वैखरीञ्च प्रपद्ये ॥ ' इति । ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदेन स्वरा एकविंशतिः । ऌलोरप्लुतत्वात्संध्यक्षराणामह्रस्वत्वाच्च व्यंजनानि त्रयस्त्रिंशत् । अनुनासिकाः ञमङणनाः पञ्च । विसर्गानुस्वारौ ꣹ꣳपौचेति त्रिषष्टिः । मित्रावरुणसदनं मूलाधारः । किञ्चशब्दशास्त्रप्रवृत्तये मातृकैव श्रीशंकरदेवेनाक्षरसमाम्नायपदेनाभ्यधा-

यि। मातृकावर्णानां पौर्वापर्य्यं परित्यज्येतिध्येयम्। तदुक्तं। 'महादेवो मुनींद्रेभ्यो मातृकामेव संजगौ। पौर्वापर्य्यंपरित्यज्य प्रत्याहारप्रवृत्तये॥ सर्वथा सापि नो त्यक्ता चोऽकुरित्यादिदर्शनात्।' किञ्च'स्पर्शांतस्थोष्मसंज्ञादिक्रमत्यागेन संभवेत्' इतिसनातनक्रमस्तु श्रीशौनककृतवेदविभागप्रश्नोत्तरत्वेनश्रीसूतेनवेदाविर्भावार्थं प्रकटीकृतः। श्रीमद्भागवतद्वादशस्कंधे तथाहि। 'शौनक उवाच। पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः। वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः॥ सूत उवाच। समाहितात्मनो ब्रह्मन्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। हृदाकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते॥ यदुपासनया ब्रह्मन्योगिनो मलमात्मनः। द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यांत्यपुनर्भवम्॥ ततोभूत्त्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट्। यत्तल्लिङ्गं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः॥ शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक्। येन वाग्व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः। स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः। स सर्वमंत्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम्॥ तस्य ह्यासंस्त्रयो वर्णा अकाराद्या भृगूद्वह। धार्यन्ते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तयः॥ ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद्भगवानजः॥ अंतस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम्॥ तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः॥ सव्याहृतिकान्सोंकारांश्चातुर्होत्रविवक्षया।' इति॥ व्याख्यातं चैतच्छ्रीस्वामिचरणैः। ब्रह्मणो हृदि य आकाशस्तस्मान्नादोऽभूत् यः कर्णपुटपिधाने श्रोत्रनिरोधादस्मदादिष्वपि विभाव्यते वितर्क्यंते यस्यान्नाहतनामापि योगशास्त्रेकथ्यते॥ १॥ यस्य नादस्योपासनयाऽऽत्मनोंतःकरणस्य मलं धूत्वापोह्य किंभूतं मलं द्रव्यमाधिभूतं क्रियाऽध्यात्मं कारकमाधिदैवतमेवं त्रिधाख्या यस्य तथाभूतम्। तत्र नादोपासनतो यथा मोक्षः सोपि वर्णितस्तदुत्पत्तिपु-

रस्सरंयोगशास्त्रे तथाहि । ' गुदध्वजांतरे कंदमुत्सेधाद्व्यङ्गुलं विदुः । तस्माद्विगुणविस्तारवृत्तरूपेण शोभितम् ॥ विदुर्विःविंदुः ' मापस्थाने मपं कुर्याच्छंदोभंगं नकारयेत् ' इति कविसंप्रदाया-द्विदुशब्दोत्रविंदुपरो ज्ञेयः ॥ ' नाड्यस्तत्र समुद्भूता मुख्या-स्तिस्रः समर्थिताः । इडा वामे स्थिता नाडी पिंगला दक्षिणा मता । तयोर्मध्यगता नाडी सुषुम्ना वंशमास्थिता ॥ ' वंशं पृष्ठवं-शाख्यम् । ' पादांगुष्ठद्वयं याता शिफाभ्यां शिरसा पुनः । ब्रह्म-स्थानं समापन्ना सूर्यसोमाग्निरूपिणी ॥ ' शिफाभ्यां जटाभ्याम् । ' तस्या मध्यगता नाडी चित्राख्या योगिवल्लभा । ब्रह्मरंध्रं विदु-स्तस्यां पद्मसूत्रनिभं परम् ॥ आधारांश्च विदुस्तत्रमतभेदादने-कधा ॥ दिव्यमार्गमिदं प्राहुरमृतानंदकारणम् ॥ आधारकन्दमध्य-स्थं त्रिकोणमतिसुंदरम् । तत्र विद्युल्लताकारा कुंडली परदेव-ता । सुप्ताहिभोगसदृशाकृतिर्जीवसमाश्रिता । हंसः प्राणाश्रयो नित्यं प्राणो नाडीपथाश्रयः । आधारादुद्गतो वायुर्यथावत्सर्व-देहिनाम् ॥ देहं संव्याप्य नाडीभिः प्रयाणं कुरुते बहिः ॥ अंगु-ष्ठाभ्यामुभे श्रोत्रे तर्जनीभ्यां विलोचने । नासारंध्रे मध्यमाभ्याम-न्याभिर्वदनं दृढम् ॥ बद्ध्वात्मप्राणमनसामेकत्वं समनुस्मरन् । धारयेन्मारुतं सम्यग्योगोऽयं योगिवल्लभः ॥ नादः संजायते तस्य क्रमादभ्यसतः शनैः । मत्तभृंगांगनागीतसदृशः प्रथमो ध्वनिः ॥ वं-शिकास्यानिलापूर्णः वंशध्वनिसमोऽपरः ॥ घंटारवसमः पश्चा-द्ध्वनिर्मेघसमोऽपरः ॥ एवमभ्यसतां पुंसां संसारध्वांतनाशनम् ॥ ज्ञानमुत्पद्यते पूर्वं हंसलक्षणमव्ययम् ॥ पुंप्रकृत्यात्मकौ प्रोक्तौ विं-दुसर्गौ मनीषिभिः । ताभ्यां क्रमात्समुद्भूतौ विन्दुसर्गावसानकौ ॥ हंसौ तौ पुंप्रकृत्याख्यौ हंपुमान्प्रकृतिस्तु सः । अजपा कथिता ताभ्यां जीवोऽयमुपतिष्ठते ॥ पुरुषं स्वाश्रयं मत्वाप्रकृतिर्नित्य-

माश्रिता॥यदा तद्भावमाप्नोति तदा सोहमियं भवेत् ॥ सकारार्णं हकारार्णं लोपयित्वा ततः परम् । संधिं कुर्यात्पूर्वरूपं तदासौ प्रणवो भवेत् ॥ आत्मभेदास्थितो योगी भावयेत्प्रणवं सदा ॥ स जीवन्नेव मुक्तःस्याद्ध्रियते नात्र संशयः ॥ ' इति।त्रिवृत् त्रिमात्रः । कंठोष्ठादिभिरुच्चार्यमाणोंकारस्य त्वस्वरसमाम्नायांतर्भावात् सूक्ष्मतया तं विशिनष्टि । अव्यक्तो न प्रकटः प्रभव उत्पत्तिर्यस्य स तथा । तदेवाह । स्वराट् स्वत एव हृदि प्रकाशमानः तमेव कार्य्येण लक्षयति । यत्तदिति । क्लीबत्वं लिंगविशेषणत्वाल्लिङ्गं गमकम् । ' ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' इतिश्रुतेः । कोऽसौ परमात्मा तमाह । इमं स्फोटमव्यक्तमोंकारम् । ननु जीव एव तं शृणोतु नेत्याह । सुप्तश्रोत्रे कर्णपिधानादिनाऽवृतिके श्रोत्रे सति जीवस्तु करणाधीनज्ञानत्वान्न तदा श्रोता तदुपलब्धिस्तु तस्य परमात्मद्वारिकैवेति भावः । ईश्वरस्तु नैवं यतः शून्यदृक् शून्येऽपीन्द्रियवर्गे दृक् ज्ञानं यस्य स तथा ' त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधरः' इतिश्रुतेः । तथा हि । सुप्तो यदा शब्दं श्रुत्वा प्रबुध्यते न तदा जीवः श्रोता ॥ नेंद्रियत्वात् । अतो यस्तदानीं शब्दं श्रुत्वा जीवं प्रबोधयति स यथा परमात्मैव तद्वत् । कोऽसावोंकारस्तं विशिनष्टि सार्द्धेन । येनोंकारेण वाक् बृहती व्यज्यते प्रकटीक्रियते । यस्य च हृदयाकाशे आत्मनः परमात्मनः सकाशाद्व्यक्तिः प्रकाश्यम्॥४ ॥ किञ्च स्वधाम्नः स्वस्य धामाश्रयोर्थात्कारणं यद्ब्रह्म तस्य । किञ्च परमात्मांशभूतसमस्तदेवतावाचकोऽपीत्याशयेनाह । सः सर्वमंत्राणामुपनिषद्रहस्यं सूक्ष्मं रूपमित्यर्थः । तत्र हेतुः । वेदानां बीजं कारणम् ' प्रणवश्छन्दसामिव' इति महाकविः । जीवत्वेऽप्यविकारितामाह । सनातनं सदैकरूपं तस्य ब्रह्मरूपत्वात् ॥ ५॥ तत एव सर्वप्रपंचोत्पत्तिमाह । तस्य

तत्संबंधिनः । यैरकारोकारमकारैस्त्रिसंख्याकाभावाः पदार्था धार्यंते । तत्कारणत्वात् तानेवाह । गुणाः सत्वाद्याः नामानि ऋग्यजुस्सामानि अर्थाद्भूरादयो लोका वृत्तयो जाग्रदाद्याः । तथा हि नृसिंहतापिन्याम् 'ऋग्वेदो जाग्रदवस्था भूर्लोको ब्रह्मा विश्वो विराट् सृष्टिश्चाकारार्थः । यजुर्वेदः स्वप्नावस्था भुवर्लोको विष्णुस्तैजसो हिरण्यगर्भः स्थितिश्चेत्युकारार्थः । सामवेदः सुषुप्त्यवस्था स्वर्लोको महेश्वरः प्राज्ञोऽव्याकृतः प्रलयश्चेति मकारार्थः । पुष्पदन्तेनाप्युक्तम् । 'त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरानकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति 'इति ॥ ६ ॥ ततस्तेभ्य एव त्रिवर्णेभ्योऽक्षराणामादिक्षान्तानां समाम्नायं समूहं भगवान्सर्ववित् अजो ब्रह्मरूपः सन् । तमेवाह । अन्तस्था यरलवा उष्माणः शषसहाः । स्वरा अकारादयः षोडश । स्पर्शाः कादयः पञ्चविंशतिः । ह्रस्वा दीर्घाश्चादिना जिह्वामूलीयोपध्मानीयगजकुंभाकृतीनां ग्रहः । तदुक्तं प्राक्तनैः । 'स्वराः षोडश विज्ञेयाः स्पर्शास्तु पञ्चविंशतिः । अंतस्थाश्चतुःसंख्याका उष्माणश्चैव तन्मिताः ॥ जिह्वामूलीयकश्चैकोपध्मानीयकस्तथा ॥ गजकुंभाकृतिश्चैक इत्येवंवर्णसंहतिः ॥ एवं वर्णा द्विपञ्चाशन्मातृकायामुदाहृताः । क्षकारं त्वागमाचार्या बीजार्थमधिकं विदुः ॥ तच्चोपलक्षणं ज्ञेयं एकज्ञानामपि ध्रुवम् '॥ इति ॥ ननु वर्णेषु च्छंदोभेदेनादिस्सादिर्वेति शंकायामनादिरेव स इति वर्णसमाम्नायेन सहैवाविर्भूतत्वात्तदाह श्रीकृष्ण एकादशे उद्धवं प्रति 'शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेंद्रियमनोमयम् । अनंतपारं गंभीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ॥ १ ॥ मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणाऽनंतशक्तिना । भूतेषु घोषरूपेण बिसेपूर्णेव लक्ष्यते ॥ २ ॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात् । आकाशाद्घोषवान्प्राणो मनसा स्पर्शरूपिणा ॥ ३ ॥ छन्दोमयोऽमृतमयः सहस्रपदवीं प्रभुः । ओंकाराद्व्यं-

जितस्पर्शस्वरोष्मांतस्थभूषिताम् ॥ ४ ॥ विचित्रभाषाविततां छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः । अनन्तपारां बृहतीं सृजत्याक्षिपते स्वयम् ॥ ५ ॥ गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्च बृहती पंक्तिरेव च । त्रिष्टुब्जगत्यतिच्छंदो ह्यत्यष्ट्यतिजगद्विराट् ॥ ६ ॥ ' इति । पूर्वं वेदस्य त्रिकांडविषयस्य ब्रह्मपरत्वमापादितं 'वेदा ब्रह्मात्मविषयास्त्रिकांडविषया इमे' इत्यादिना तदाकर्ण्योद्धवेनाशंकितं भगवज्जैमिन्यादिभिस्तथा कथं न प्रतिपादितम् तत्र श्रीभगवतोत्तरितम् हेउद्धव शब्दब्रह्म स्वरूपतोऽर्थतश्च दुर्विज्ञेयमेव । तच्च सूक्ष्मं स्थूलं चेति द्विविधम् । तत्र सूक्ष्मं तावत्स्वरूपतोपि दुर्ज्ञेयमित्याह । प्राणेंद्रियमनोमयं प्रथमं प्राणमयं पराख्यं ततो मनोमयं पश्यंत्याख्यं तत इंद्रियगम्यं मध्यमाख्यं तस्य वाग्व्यंजकत्वेन वागिंद्रियप्रधानत्वात् । किञ्चानन्तपारं समष्टिप्राणादिमयस्य निर्विशेषस्य च तस्य कालतो देशतश्चापरिच्छेदात् । अर्थतोऽपि दुर्ज्ञेयत्वमाह । गंभीरं निगूढार्थं तत एव दुर्विगाह्यं मतिप्रवेशानर्हम् ॥ तथा च श्रुतिः । 'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः । गुहा त्रीणि निहता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदंति ॥' इति । व्याख्यातचरेयं श्रुतिः । तत्र मनीषिभिरेव ज्ञेयं सूक्ष्मं रूपं दर्शयति । मयेति । मयांतर्यामिणोपबृंहितमधिष्ठितम् । अंतस्थत्वेऽप्यपरिच्छेदमाह । भूम्नेति । अधिष्ठातृत्वेऽप्यविकारित्वमाह । ब्रह्मणेति । अविकृतस्यापि नियंतृत्वं घटयति । अनन्तशक्तिनेति । भूतेषु सर्वप्राणिषु घोषरूपेण नादरूपेण लक्ष्यते मनीषिभिः । अत्यन्तसूक्ष्मत्वेन दर्शने दृष्टांतः । बिसपूर्णा तन्तुरिवेति ॥ २ ॥ ततो वैखर्याख्याया बृहत्या वाच उत्पत्तिप्रकारं सदृष्टांतमाह । यथेति । हृदयात् सकाशान्मुखाद्वारात् उद्गमते बहिः प्रकटयति । दार्ष्टांतिके दर्शयति । आकाशादिति । प्राणस्तदुपाधिर्हिरण्य-

गर्भरूपः प्रभुर्भगवान् ॥ ३ ॥ तेन रूपेण छन्दोमयो वेदमूर्तिः ॥ स्वतस्त्वमृतमयः घोषवान् नादोपादानवान् मनसा निमित्तभूतेन । निमित्तितामेव दर्शयति । स्पर्शादीन्वर्णान् रूपयति संकल्पयतीति स्पर्शरूपी तेन स्पर्शग्रहणमुपलक्षणं हृदयाकाशाद्बृहतीं सृजतीति तृतीयेनान्वयः । बृहतीशब्दार्थव्याख्यानाय विशेषणानि सहस्रपदवीं बहुमार्गाम् । तदेवाह । ओंकारात् उरःकंठादिसंयोगेन व्यंजितैः स्पर्शादिभिर्भूषिताम् । ओंकारश्चात्र हृद्गतः सूक्ष्मोऽभिप्रेतो न त्वकारादिवर्णरूपस्तस्य व्यंग्यकोटिप्रविष्टत्वात् । स्पर्शादयो व्याख्यातचराः ॥ ४ ॥ विचित्राभिर्वैदिकलौकिकभाषाभिर्विततताम् । यथोत्तरं चत्वारि चत्वार्यक्षराण्युत्तराण्यधिकानि येषां तैरुपलक्षितामेवमनंतपारां सृजति स्वयमेवाक्षिपते उपसंहरति च ॥ ५ ॥ तेषु कतिचिच्छंदांसि नामतो निर्दिश्य दर्शयति । गायत्रीति।तत्र चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री।ततश्चतुरक्षरवृद्ध्योष्णिगादिछंदांसि । अत्यष्टिः अतिजगती अतिविराडित्यर्थः । अथ छंदःप्रसंगादेषां स्वरूपज्ञानार्थमेषां लक्षणसंज्ञादिकमपि विज्ञमोदाय लिखामः । तदर्थं गुरुसंज्ञामाह । 'संयुक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसंमिश्रम् । विज्ञेयमक्षरं गुरु पादांतस्थं विकल्पेन ॥' तत्रछंदांसितावद्द्विविधानि मात्राछंदांसि वर्णच्छंदांसि च । मात्राछंदांस्यार्यादीनि । तत्रार्यास्वरूपं 'यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥ १ ॥' अस्या एव भेदाः पथ्यादयोपि । तत्सिद्धिस्तु गणैरेव तेषां स्वरूपम् 'आदिमध्यान्त्यगुरवो भजसाः सर्वगुश्च मः । आदिमध्यान्तलघवो यरतास्सर्वलश्च नः ॥ वक्रो लघ्वो गुरुर्वज्ञेः सरलो हि लघुस्तथा ॥' अयं गणभेदो वर्णच्छंदसामेव । मात्राछंदसां गणस्तु 'ज्ञेयाः सर्वांतमध्यादिगुरवोत्र चतुष्कलाः ।

गणाश्चतुर्लघूपेताः पञ्चार्यादिषु संस्थिताः ॥ १ ॥ ' यथा सर्वगुरुः
ऽऽऽ१ अंत्यगुरुः ॥ऽ२ मध्यगुरुः ।ऽ।३ आदिगुरुःऽ॥ ४ चतुर्लघुः
॥॥ । यत्र गणत्रयमुल्लंघ्य यतिर्दलयोश्च सैव पथ्या स्यात्
॥ २ ॥ उल्लंघ्य गणत्रयमादिमंशकलयोर्द्वयोर्भवति पादः ॥
यस्यास्तां पिंगलनागो विपुलामिति समाख्याति ॥ ३ ॥ उभया-
र्द्धयोर्जकारौ द्वितीयतुर्यौ गमध्यगो यस्याः ॥ चपलेति नाम
तस्याः प्रकीर्तितं नागराजेन ॥ ४ ॥ आद्यं दलं समस्तं भजेत
लक्ष्म चपलागतं यस्याः ॥ शेषे पूर्वजलक्ष्मा मुखचपला सोदिता
मुनिना ॥ ५ ॥ प्राक्प्रतिपादितमर्द्धे प्रथमे प्रथमेतरे तु चपला-
याः ॥ लक्ष्माश्रयेत सोक्ता विशुद्धधीभिर्जघनचपला ॥ ६ ॥ आ-
र्याप्रथमदलोक्तं यदि कथमपि लक्षणं भवेदुभयोः ॥ दलयोः कृ-
तयतिशोभां तां गीतिं गीतवद्भुजंगेशः ॥ ७ ॥ आर्याद्विती-
यकेऽर्द्धे यद्गदितं लक्षणं तत्स्यात ॥ यद्युभयोरपि दलयोरुपगीतिं
तां मुनिर्ब्रूते ॥ ८ ॥ ' इत्यादीनि बहूनि मात्राछंदांसि संति तानि
च पिंगलादिभ्योऽवसेयानि । यतिर्विच्छेदसंज्ञक इति दलशकला-
वर्द्धपर्यायौ । लक्ष्म लक्षणम् । वर्णच्छंदसां च षड्विंशतिजातयः
संति तदुक्तं वृत्तरत्नाकरे । ' आरभ्यैकाक्षरात्पादादेकैकाक्षरव-
र्द्धितैः । पृथक्छंदो भवेत्पादैर्यावत्षड्विंशतिं गतैः ॥ तदूर्द्ध्वं चं-
डवृष्ट्यादिदंडकाः परिकीर्तिताः । शेषं गाथास्त्रिभिः षड्भिश्चरणै-
श्चोपलक्षिताः ॥ उक्तात्युक्ता तथा मध्या प्रतिष्ठान्या सुपूर्विका ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्च बृहती पंक्तिरेव च॥त्रिष्टुप्च जगती चैव तथाऽति-
जगती मता । शक्करी सातिपूर्वा स्यादष्ट्यत्यष्टी तथा स्मृते ॥
धृतिश्चातिधृतिश्चैव कृतिः प्रकृतिराकृतिः । विकृतिस्संकृतिश्चैव
तथातिकृतिरुत्कृतिः ॥ ' इति ॥ अथ क्रमादासुकातिचिच्छंदांसि
नामलक्षणतोप्याह । उक्तायां गः श्रीः अत्युक्तायां गौ स्त्री । म-

व्यायाम् मो नारी प्रतिष्ठायां म्गौ चेत्कन्या सुप्रतिष्ठायां म्गौरिति पंक्तिः । गायत्र्यांत्यौत्स्तस्तनुमध्या शशिवदनान्यो विद्युल्लेखा मोमः तत्सौ चेद्वसुमती । उष्णिहिम्सौगः स्यान्मदलेखा अनुष्टुभि भोगिति चित्रपदागः । मो मो गो गो विद्युन्माला।प्रमाणिका जरौ लगौ।बृहत्याम् रान्नसाविह हलमुखी।पंक्तौ१०म्सौ ज्गौ शुद्धविराडिदं मतम् । त्रिष्टुभि।।स्यादिंद्रवज्रा यदि तौ जगौगः । उपेंद्रवज्रा जतजास्ततो गौ । कनकमंजरी नभ्यरौ लगौ । चेदिंद्रवज्राचरणानि यस्यामुपेंद्रवज्राचरणानि च स्युः । तदोपजातिः कथिता कवीन्द्रैर्भेदा भवन्तीह चतुर्दशास्याः ॥ दोधकमिच्छति भत्रितयाद्गौ । स्वागता रनभगैर्गुरुणा म्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः नजयगगा यदि वातोर्म्मिहारी सनयागुरुयुगलं सौधांग्रिः । मोनौ गाविह भवति च मात्रा स्यादनुकूलाभतननगाश्चेत् । उक्ता सा मयदामसनलगाः रथपदमिह यदि नौ सोगौ उपचित्रमिदं ससलगौ॥जगत्याम् १२ चत्वारोमावेदैर्वेदैर्विद्याधारः भवति च तामरसं नजजंयः । द्रुतपदं नभजयैः कलितं स्यात् । भवतीहसजयैः परितोया उक्ता भुवनमालिका तसजसाः कीर्तितैवाचतूरेफिका स्रग्विणी भवति नजावथ मालती जरौ धीरैरभाणि ललिता तभौजरौ । नभजरैश्च कथितः प्रियंवदः सगणोभौ रगणो यदि राधिका स्यादिंद्रवंशा ततुगंयदा जरौ । जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ । द्रुतविलंबितमाह नभौ भरौ । ननभररचिताकथितोज्ज्वला प्रमिताक्षरा सजससंकथिता जसौजसयुतौ जलोद्धतगतिः चंद्रवर्त्मनि गदंति रनभसैः वीरणमाला भवति भतनसाः इह तोटकमम्बुधिसकारकृतम् जकारचतुष्टयिमौक्तिकदाम मोदकमत्रभकारचतुष्टयि अर्पितमदना भसनयसृष्टा॥अतिजगत्याम् चत्वारोभागाश्चेयत्र स्यात्सा सत्याली रसागैर्य-

१ पङ्क्तिःसप्तभिश्च यतिः मसंगाच्चतुर्भिर्यगणैर्गुरुणा च दर्पमालाच्छन्दस्यादित्यर्थः।

कारैर्गुरुर्दर्पमालास्यात् यदि सौ जरगाजगत्समानिकास्यात्।
तौ रौ जगौ यदा स्युस्तदा पृपद्धती। उक्ता कनककेतकी
तसजाजगौ चेत् भसजसगा मयूखसरणिः स्यात् । उक्ता
पंकजधारिणी मसजसा गः यदि सौ जसगाः कुबेरकुटिका । उक्ता
प्रमोदातिलका तभजा जगौ प्रज्ञामूलं मभनयगणगाश्चेत्स्युः यमौ
रौ विख्याता चञ्चरीकावलीगः। त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीह।
वेदैरंध्रैर्म्नौ यसगा मत्तमयूरः । सचतुष्टयगाविह तारकवृत्तम्।
सजसाः सगौच कथितः कलहंसः।सजसा जगौ च यदिमंजुभाषिणी।
मंजुमालिनीयदि रसौ सजौगुरुः।नगणयुगलमत्र रौगः प्रमोदः।कमठ-
माह भकारचतुष्टयगौः उक्ता यदा तभसजगाः प्रभावती अशोकनामां
तरंप्रभावत्याः च नयुगलरजगुचेदशोकपुष्पम् । अखंडमंडनं ज्रौ
रजौग्वगरसैःजलधि नगुरुयदि हरिवनिता।शक्वर्याम् चत्वारो मागौ
चेत्स्युःस स्यात्संकल्पासारः।उक्ता वसंततिलका तभजा जगौ गः।
द्विःसप्तच्छिदलोलाम्भौ गौ यदि चेत्स्युः भोजसनकारगगइंदुवदना
नयुगरसलगैः स्वरैरपराजिता। रौ तकारौ गुरू चेत्स्युर्यदा वभ्रूल-
क्ष्मीः। प्रतिभादर्शनमुक्तं स भतनगागः। सभसाजोगुरुयुगलंचवंश
मूलम्। नासाभरणं तोयोभतलागश्चयदा। चूडापीडं मभनयगण-
गागुर्वत्र तोनोनयगुयुगमिह पारावारः । सगणौ भगणौ गौ यदि
मन्मथनामा तोयोभगणौ गौं चेद्याति सा रतिरेखा । अतिशक्व-
र्य्याम् । क्रीडितकटका यदि भः सौ मौ रुद्रैर्वेदैः । मो भौ मौ
चेद्यादि चार्वटकं स्याद्दिग्भिर्वाणैः म्रौ मो यो चेद्धवेतां सप्ताष्टकैश्चं-
द्रलेखा। चित्रानामच्छदः प्रोक्तं चेन्त्रयो मा यकारौ । ननमयययु-
तेयं मालिनी भोगिलोकैः । इह पंचसकारकृता भ्रमरावलिका
भवति। नजौ भजौ रसहितौ प्रभद्रकम् । गुरुनिधनमनु १४ लघु-
रितिशशिकला। यत्र स्युर्मननरयगणाः कुमारलीला नागैरश्वैः।

वाणीभूषा ममतनमा यत्र दीपकवृत्तं भवति भतौ नस्तयकारौ लीलाचंद्रं नागैरश्वैर्यदि चेन्मौ तयसाः मदनमालिका भवति तो रनौ रौ यदा ॥ अष्ट्याम् १६ विद्युन्मालापादौ यत्र स्यात्तद्वृत्तं चंद्रापीडम् । नजभजरैर्यदा भवति वाणिनी गयुक्तैः जलधेन-गणसगणगु शिशुभरणं स्यात् । आरभटी युगभगणनजा यगणो गश्चेत् । कलधौतपदं सगणायदि पंचगुरुः स्यात् । उक्तं माला-वलयमिदं चेन्मभसभसागः भोगावलिरियमिह यदि तो नौ य-सगाश्चेत् । सगणद्वयभोयौ च गुरुः प्रतापवल्ली स्यात् । द्विगुण-तवसुलघुभिरचलधृतिरिह । अत्यष्ट्याम् १७ मंदाक्रांताम्बुधि-रसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् । नसमरसला गः पड्वेदैर्हयैर्हारि-णी मता । जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ॥ भाराक्रांता मभनरसला गुरुः श्रुतिषड्हयैः । इह यदि चेन्नजौ भजजला गुरु नर्दटकम् । रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी । दिग्मुनिवंशयत्रयतितं भरनभनलगैः यदि वाणार्कैः स तयान्भौ ग्लौ विधुरविरहिता मो रो भो नस्तगौ गो भवति यदि चेत्का-मरूपम् । चेन्नसजसया लगौ भवति बालविक्रीडितम् । ननरनर-गगा यदा भवति वीरविश्रामः । धृत्याम् १८ मत्तकोकिलवृत्तमेतद्-वेहि रः सजजं भरौ स्याद्भूतत्वैरश्वैः कुसुमितलतावेल्लितात्मो नयौ यो नजभजरैस्तु रेफसहितैः शिवैर्हयैर्नंदनम् । मात्सो जौ भरसं-यक्तौ करिवाणकैर्हरिणप्लुतम् । मः सो जः सतसा दिनेशऋतुभिः शार्दूलललितम् । हीरकहारधरं भवतीह च पड्भगणा यदि मो भोमः सो यः स्युश्चेद्यदि मंजीरा फणिपेन प्रोक्ता वसुपदमं-जरी भवति यत्र नजो भजो जरौ । अतिधृत्यां १९ रसर्त्व-श्वैर्य्योन्सौ रयुगगयुतौ मेघविस्फूर्जिता स्यात् । मो गो नो तो गो शरहयतुरगैः फुल्लदाममसिद्धम् । सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शा-

र्दूलविक्रीडितम् । भवेच्छायावृत्तं यमनसतयुग्मं चेद्यदा गस्तदा यत्र स्यान्मननससजगुरुकल्पलता पताकिनी । नयुगगुरुलघुर्निरंतरं यदा प्रपंचचामरम् । अश्वैरविभिर्यदा तो जतौ भनसगु किरणकीर्तिः । कृत्याम् २० ज्ञेया सप्ताश्वपङ्क्तिर्मरभनयभलाश्चेत्सुवदना । रसाश्वागैर्यो मो नयुगतयुगगा गस्तदा नाम शोभा । अंगाश्वागैर्मो मो नयुगतयुगमा गस्तदा भूरिशोभा । सभरा नो मयला गुरुश्च । कथितं मत्तेभविक्रीडितम् । सौरभशोभासारः स्याद्भमतनसनला गुरु यदि चेत् । षड्भगणाश्च गुरू यदि वीरविमानमिदं खलु वृत्तम् । प्रकृत्याम् २१ म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् । रो नरौ नरन्नरा भवंति खलु यशसा कनकमालिका । इह सप्तसकारकृता फणिपप्रथिता भवति प्रतिमा सप्तभकारविनिर्मितकायमिदं तडिदंवरमत्र हि यकारा भवेयुर्यदा सप्तसा स्यात्फणीशोदिता विद्युदाली । अप्राकृत्याम् २२ मौ गौ नाश्वत्वारो गो गो वसुभुवनयतिरिह भवति हंसी । वनवासिनी सजजं भरौ नसला यदा दशरविपतिश्च । चतुर्भिर्यकारैस्त्रिभिश्चापि रेफैर्वारैर्नीराजना गैकयुक्तैः । यदि संति चतुःसगणा नयभा गुरु भवति स्वर्णाभरणम् । यत्र भवेयुर्भतनतना मः सगणगुरू चेदर्भकमाला । विकृत्याम् २३ नजभजभा जभौ लघुगुरू बुधैस्तु गदितेयमद्रितनया । गौत्रगरीयो भवति यदा चेद्भगणस्तो नतनयनजा लगुरू सप्तभकारगला यदि संति तदा भवति-इ चकोरकनाम । सप्तभकारगुरुद्वयनिर्मितकायमवेहि च मत्तगजेंद्रम् । भः सभसजा भो गुरुयुग्ममिह विलासवासनामकवृत्तम्।मुनिमितनगणा लघुगुरूविरचिततनुरमरचमरी। कृत्याम् २४ भूतमुनीनैर्यतिरिह भतनाः स्मौ मनयाश्च यदि भवति तन्वी। भुजंगाख्यमेतद्भुजंगप्रयातस्य पादद्वयं वक्ति सर्पाधिराजः । अष्टभ-

कारविनिर्मितमेव हि मेदुरदंतमिमं परिभावय द्रुतविलंबितवृत्तपद-
द्वयं वदति शम्बरवृत्तमिदं फणी। अष्टरेफा भवेयुर्यदा तर्हि वृत्तं फ-
णीशोदितं नाम गंगोदकम् । वेल्लितवेलमिदं फणिगीतं यत्र च भत्र-
यमसनयुगलसाः । भद्वयसद्वयमिह नौ च समौ फणिपतिभणित-
मिदं धौरेयम् । रो जरौ मकारकौ जरौ मश्चेत्सा भोगींद्रेण वंशलो-
न्नता निर्दिष्टा । अतिकृत्याम् २४ भो नजयभननसा गुरुरेको भास्क-
रमिदमिति । यदि च भवेयुः ननससभतनसगा इह चेत्स्युर्भवती-
यं यदिरासिकरसाला । अष्टरेफा भवेयुर्गुरुश्चापि चेद्वृत्तमेतत्तदा
ह्वीणहैयंगवीनम् । चित्तचिंतामणिः स्यान्नवाष्टवसुभिरत्र रेफत्रयंनो
जतौ तौ च गुः।चेद्यदा रनचतुष्टयं गुरुरपि स्फुटं भवति भाविनीविला-
सितम् । उत्कृत्याम् ॥ २६ ॥  यत्राष्टौ मास्स्युश्चेद्गौ च स्यातां
जीमूतध्वानं नूनं नागाधीशो ब्रूते तद्वृत्तम् । चेद्भगणाष्टकमंत्यगुरुद्व-
यमत्र यदा भवति प्रियजीवितवृत्तम् । सगणाष्टकमंत्यलघुद्वयमे
तदवेहि वशंवदनामकमेव हि । नयुगसमनजरजा गौ चेच्चारुग-
तिरियं तदेति वक्ति सर्पराजः । भवति विरामवाटिका यदि चे-
न्नजरसना जरौ नलौ गुरू च तदा वृत्तं स्यादिह सूरसूचकमिदम् ।
सयजाः सगणत्रयं चेद्यकारौ लगौ बाणैस्त्रिस्वरैश्चेद्विरामो यदा मो
यत्रयं रौ च तौ गौ विश्वविश्वासवृत्तम् । इति समवृत्तैकदेशदर्श-
नम् ॥ अथात् समवृत्तविषमवृत्तान्यपि कतिचिदत्र दर्शयामः ।
'अंघ्रयो यस्य चत्वारस्तुल्यलक्षणलक्षिताः । तच्छन्दःशास्त्रतत्त्व-
ज्ञाः समं वृत्तं प्रचक्षते ॥ प्रथमांघ्रिसमो यस्य तृतीयश्चरणो भवेत् ।
द्वितीयस्तुर्यवद्वृत्तंतदर्द्धसममुच्यते ॥ यस्य पादचतुष्केपि लक्ष्म-
भिन्नं परस्परम् । तदाहुर्विषमं वृत्तं छन्दःशास्त्रविशारदाः ' इति ।
विषमे ससजं गुरू समे चेत्सभरा यश्च वसन्तमालिका स्यात् ॥ १ ॥
एषा विपरीतघटिता प्रमालिका सौरभसंचितश्च ॥ २ ॥ यदि

सौ सलगा विषमे दले भत्रितयं युजि गावुपचित्रा ॥ ३ ॥ विलोमे वहित्रा ॥ ४ ॥ विषमे प्रथमाक्षरहीनं दोधकमेवहि वेगवती स्यात् ॥ ५॥ विलोमे वर्गवती ॥ ६ ॥ अयुजोर्यदि सौ सगौ युजोः सभराल्गौ ननु सुंदरी मता ॥ ७॥ कोरकिता विषमे भगणा गौ भवति समे चेत्कुसुमविचित्रा ॥ ८ ॥ विलोमे पाटलिका ॥ ९ ॥ पादे विषमे तजौ रगौ चेदन्यस्मिन्मनजरगाः शुकावली स्यात् ॥ १० ॥ विलोमे किंशुकावली ॥ ११ ॥ आख्यानकी तौ जगुरूग-मोजे जतावनोजे जगुरू गुरुश्चेत् ॥ १२ ॥ जतौ जगौ गो विषमे समे स्यात्तौ ज्गौ ग एषा विपरीतपूर्वा ॥ १३ ॥ तोजोविषमे रगौ यदा चेत्सभराजश्च गुरू समे विलासवापी ॥ १४ ॥ स्यादयुग्मके रजौ रजौ समे च जरौ जरौ गुरुर्यदामरावतीयम् ॥ इत्यर्द्धसमवृत्तैकदेशः। प्रथमे सजौ यदि सलौ च नसजगुरुकाण्यनंतरम्। यद्यथ भनभगास्स्युरथो सजसा जगौ च भवतीयमुद्गता ॥१॥ नयुग सकारयुगलंच भवति यदि चेत्तृतीयके अहिपतिभणितमिदं ललितं यदि शेषमस्य सकलं यथोद्गता ॥ २ ॥ त्रयमुद्गतासदृशमेव पदमिह तृतीयमन्यथा जायते रनभगैर्ग्रथितं कथयंति सौरभमिदं मनीषिणः॥३॥नगसगणाश्चेत्प्रथमे जतौ भगौ च द्वितीयपदे।भो मसकारौ चापि ततः स्तौ जो रगगं वरार्थिनी तुर्ये॥४॥आदौ चेन्मनभला गुरुर्यदा नगणयकारौ जभौ ततौ गुरुयुग्मम्। तो नो रनगणगास्तृतीयचरणेनिर्दिष्टा मनजनया भवति च चतुर्थे॥५॥इति विषमवृत्तैक देशः ॥ पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः। षष्ठं गुरु यथावस्थमयं श्लोकः प्रकीर्त्तित इति । अस्य भेदाः पिंगलादितोवसेयाः॥ अथ दंडकाः। नयुगयुगलमत्र चेत्सप्त रेफास्तदा दण्डकश्चण्डवृष्टिप्रयातो भवेत् ॥ १ ॥ प्रचितकसमभिधः स्याद्यदा नद्वयं सप्त याः स्युस्तदा दंडकोऽसौ विशेषः ॥ २ ॥ चेदशोकपुष्पमं-

जरौ रजौ रजौ रजौ रजौ रसंयुतौ यदा तदा भवेत् ॥ ३ ॥ नवभिः सगणैः परिवक्ति फणावदधीश इदं नियतं कुसुमस्तवकम् ॥ ४ ॥ नंदसंख्यैश्च रेफैः फणाभृत्पतिप्रोदितो मत्तमातंगलीलाकरो दंडकः ॥ ५ ॥ यदि च निजेच्छया विरचितलघुगुरुर्यथायतिभवत्यनंगशेखरः ॥ ६ ॥ शेषप्रोक्तं स्वेष्टप्रोतं कुसुमितकायं मितकायं प्रकाममायं यंत्रितस्वकायं गणसमुदायं कृतयतिदायं द्विमतनतानां यजनानां रभसानां सभसानां भसभानां सभतानां यसभानां तयसानां दधदपि भननगगानाम् ॥ ७ ॥ अन्यथापि कवीच्छातो यथा विरचितैर्व्यस्तैः॥भवंति दंडका भव्या गुच्छकाद्यर्थनामकाः॥इति॥

अथ गद्यानि । स जयति जगतां विधाता समस्तं येन पालितं भुवनंतस्मै नमोऽस्तु सततम् ॥ एतन्मुक्तकनाम गद्यम् । अथ नंदनंदनजननाकर्णनजातानंदसंदोहशबलमानसाः सकलतद्देशवासिनः किल बभूवुः सर्वाः सरूपा अपि निरुपमरूपाश्च श्रुतिरूपा गोप्यः स्नेहाकूपारप्लवनव्यापारपरवशांतःकरणाः स्वर्णमणिगणभूपणदुकूलांजनप्रभृतिभूपितविग्रहा गृहात्परिगृहीतमांगल्यसाहित्याः प्रत्याहिततद्दर्शनाभिलाषा मंगलं प्रबन्धं गायंत्यस्सानंदं नंदसदनमभिसस्रुः । एतच्चूर्णकनामकम् । जयतु भुवननाथः प्रार्थ्यमानः सुरौघैरवनतांसलांसैः प्रकृतमनुविधेयतत्कर्मप्रयुक्तमानसैः स्वपरिरक्षणदक्षताभर्तुर्विचिन्त्य स्वार्थार्थवाहपारिपारफल्गुभवगन्ध कृपालुतैकनिधिरधिभवनमनिशम् । एतद्वृत्तगंधिनामकम् । अथ तालवनगमनमनुभूय सायमसौ भगवान्कृष्णः सकलवनविहारविशृंखलविजृंभितकुतूहालिना महाबलिना बलदेवेन सहासादितगोष्ठांगणद्वारस्तद्गुणवर्णानुरूपामात्मजां दातुमिव भाविजामातुः सुपमां मातुमंबरतलं विहायागतेन भगवता भासांनिधिनाऽहस्करेणेव मणिगणप्रचुरेण चलत्कांतिचामीकरनीराजनपात्रेणोपदीकर्तुं तेनैवानीतेन निजरत्नसमुदायेनेव दीपांकुरसमुच्चये मद्विगुणितत्ते

जोविशेषेण तेन तैजसद्वयेन ह्रद्गतदिवसविरहभरतापं सूचयंत्या प्रवृद्धप्रेमप्रपूरप्रपंचप्रसंगेन पयोधरद्वयादिव नेत्रपयोजद्वयादपि पयःपूरं परित्यजंत्याऽत्युत्पुलकाङ्क्ष्या मात्रा यशोदया कृतनीराजनो व्रजजनतामोददः स्वस्वस्थानविनिवेशितगोधनस्तज्जन्मसमयपयोदानुषंगेण प्राप्तं कालिमानं दुग्धेन परिहर्तुं समागतेन धृतशांतवेषेण शेषेणेव दोष्णा कृतधेनुसेवनो व्रजावनो बन्धुत्वेन कनकेंद्रदृषदासनावस्थिततपनबिम्बे स्वास्मिन्निवनिजोत्पत्तिकारणजातं शीतलिमानं विधातुं विहितप्रयासस्य सुंदरपयोभवयुग्मस्य शंकामुद्भावयन्नूरुयुगलमध्यवर्तितपनीयदोहनपात्र आरब्धदोहनस्त्रिलोकीमोहनः पाततलदोहधाराघातरवामिश्रितगोपीगृहीतवत्सलेहनचलद्ग्रीवाघण्टाभरणरणितसहवर्तिमहाककुत्कलितपृष्ठदेशदृढमहोक्षपरिवृढगर्जितनिरंतरितकाष्ठावकाशो व्रजयुवतिधृताशो विरजस्कीकृतांगो जननीसमर्पितसपायसरसस्वन्नैरवसायितसायंतनाशनकृत्यो व्रजे स्वल्पशशिकल्पतल्पप्रसूनपरिमलपरिमलितनिकुंजसदने विहारं विरचय्य सुखेन सह सावकाशं तस्थौ इत्यादि रचनाविशिष्टगद्यविशेषा उत्कलिकाप्रायनामकाःसन्तीत्यलम्।अथ वर्णमात्राप्रस्तारयोरादौ मात्राप्रस्तारमाह। आदौ विलेख्या गुरवः प्रस्तार्यास्ताः समा यदि।आदौ लघुरथान्ये च गुरवो विषमा यदि॥१॥ प्रथमगुरोरधरे लघु दत्त्वा शेषं समानमितरेण ॥ उद्वृत्तं गुरुलघुवा

द्विकलस्य त्रिकलस्य चतुष्कलस्य पंचकलस्याष्टौभेदाः ८

| द्विकलस्य | त्रिकलस्य | चतुष्कलस्य | पंचकलस्याष्टौभेदाः ८ |
|---|---|---|---|
| ऽ, ।। २ | ।ऽ, ऽ।, ।।। ३ | ऽऽ, ।।ऽ, ।ऽ।, ऽ।।, ।।।। ५ | ।ऽऽ, ऽ।ऽ, ।।।ऽ, ऽऽ।, ।।ऽ।, ।ऽ।।, ऽ।।।, ।।।।। |

षट्कलस्य त्रयोदशभेदाः

| | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ऽऽऽ | ।।ऽऽ | ।ऽ।ऽ | ऽ।।ऽ | ।।।।ऽ | ।ऽऽ। | ऽ।ऽ। | ।।।ऽ। | ऽऽ।। | ।।ऽ।। | ।ऽ।।। | ऽ।।।। | ।।।।।। |

प्रस्तारः सर्वलघुर्यावत्।तद्यथा।एककलस्य प्रस्तारो न भवति ततः। द्विकलस्य प्रस्तारः त्रिकलस्य चतुष्कलस्य पञ्चकलस्याष्ट- भेदाः पट्कलस्य त्रयोदश भेदा एवमग्रेपि । अथमात्रोद्दिष्टविधिः । दत्त्वा पूर्वयुगांकं गुरु शीर्षांकं विलुप्य शेषाङ्कं । अंकैरितोवशिष्टैः शिष्टैरुद्दिष्टं मात्रोद्दिष्टम् ॥१॥ तद्यथा। पट्कलप्रस्तारे एको गुरुर्द्वौ लघू एको गुरुः ऽ।।ऽ एवमाकारो भेदः कुत्रास्तीतिप्रश्ने कृते पूर्वं युगलांकान् लिखेत् १ २ ५ ८ द्विमात्रस्य गुरोरूर्द्ध्वं पूर्वं पश्चादधो लिखेत्।गुरुशीर्षांकं शेपांकं९शेपांके १३ विलुप्योर्वरितम्४तथा च $\frac{5}{2}\frac{11}{}\frac{5}{13}$ पट्कलप्रस्तारे चतुर्थस्थाने ये ऽ।।ऽ भेद इति वाच्यम् । एवं पञ्चकलप्रस्तारेपि ॥ऽ। अयं भेदः कथित इति पृष्टेंकान्विलिख्य ॥ऽ। गुरुशीर्षांके ३ अन्त्यंके ८लुप्ते शिष्टम् ५ पञ्चमो भेद इति वाच्यम्। तथा चतुष्कलप्रस्तारे ।ऽ। अयं भेदः क्व स्थाने इति पृष्टेंकान्सं- स्थाप्य गुरुशीर्षांके २ त्यांके ५ लुप्ते शिष्टं तृतीयोयं भेद इति वाच्यम् । अथ मात्रानष्टविधिः॥नष्टे कृत्वा कलाः सर्वाः पूर्वयुग्मां- कयोजिताः ॥ पृष्टांकहीनशेपांकं येन येनैव पूर्य्यते ॥ १ ॥ परां कलामुपादाय तत्र तत्र गुरुर्भवेत् । मात्राया नष्टमेतत्तु फणिराजेन भाषितम् ॥ २ ॥ यथा पट्कलप्रस्तारे द्वितीयस्थाने कीदृशो गण इति पट्कलाः स्थापनीयाः । तदुपरि पूर्वयुगलसदृशा अंका देयाः तदुपरि पूर्वयुगलसदृशा अंका देयाः १२३५८१३ शेपांके १३ पृष्टांक२ लोपे सत्यविशिष्टांकाः ११ भवन्ति तत्र ११ अव्यवहिताष्टलो- पेऽवशिष्ट३मष्टांकस्थानीयकलापरकलया गुरुत्वं याति शेपांकात्३ पञ्चाङ्कलोपस्याशक्यत्वात् त्र्यंको लुप्यतेऽवशिष्टम्०तृतीयामात्रा- परामुपादाय गुरुः शिष्टांकात्०शून्यात्किञ्चिल्लोपयितुं न शक्यते इति प्रथमं कलाद्वयं लघुरूपमेव।तथा च ।।ऽऽ द्वितीयस्थाने ईदृशो गण इति संपन्नम् । एवं त्रयोदशस्थाने कीदृशो गण इति पृष्टे शेपां-

ङ्कतः १३ पृष्टांक १३ लोपे शिष्टं० ततोऽपरांकलोपाभावात्सर्वे लघव एवे ।।।।।।त्यवसीयते।चतुर्दशादिप्रश्ने चांकलोपाभावादस-

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | | | | |
| १ | १ | | | |
| २ | १ | | | |
| १ | ३ | १ | | |
| ३ | ४ | १ | | |
| १ | ६ | ५ | १ | |
| ४ | १० | ६ | १ | |
| १ | १० | १५ | ७ | १ |
| ५ | २० | २१ | ८ | १ |

त्यवादित्वमाधिकप्रस्ताराभावादिति सर्वत्र शेषांकसमा गणा भवंति एवं षट्कले दशमो भेदः कीदृगिति प्रश्ने पृष्टे १० के शेषतः १३ लुप्ते शिष्टं ३ ततस्तृतीयांक एव लुप्यते तत्रैव गुरुता जायते ।।ऽ।। इदं जातम् । एवमन्यदपि ज्ञेयम्।।अथ मात्रामेरुः। ' द्वयं द्वयं समं कोष्टं कृत्वांत्यैस्त्वेकमर्पयेत् ।। एकद्वेकत्र्येकचतुःक्रमेण प्रथमेष्वपि ।। १ ।। शीर्षांकात्परांकाभ्यां शेषकोष्ठान्प्रपूरयेत् ।। मात्रामेरुरयं ज्ञेयः सर्वेषामपि दुर्गमः ।। २ ।। अस्मिन्मात्राप्रस्तारे एकगुरवो द्विगुरव एकलघवो द्विलघवः क इत्यादिप्रश्ने कति वा प्रस्तारसंख्ये इति प्रश्ने च मेरुणा देयमुत्तरं द्वेद्वे कोष्ठे समे विलिख्यांत्यकोष्ठेष्वेकमंकं लिखेत् । आदिकोष्ठेषु चैकान्तरमेकांकं लिखेत् । मध्ये शून्यकोष्ठे च पूरणीये । एषा प्रक्रिया पूरणीयकोष्ठं शिरःकोष्ठांकपरकोष्ठस्थांकावेकीकृत्य मध्यकोष्ठेऽको देयः । एवं सर्वत्र यावदिच्छं कोष्ठकान्विरच्य मात्रामेरुः कर्त्तव्य इति क्रमो गुरुमुखाज्ज्ञेयः । तथा च षट्कले सर्वत्र गुरुः एकगुरवः ५ द्विगुरवः षट् ६ सर्वलघुः ७ सप्तकले सर्वलघुः १ एकगुरवः ६ द्विगुरवः १० त्रिगुरवः ४ विषमकले सर्वगुरुभेदो नास्त्येव । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । प्रस्तारतो विश्वासः मेरुस्त्वयमेककलातो नवकलांतानां लिखितो ज्ञेयः।।अथ मात्रापताका।। उद्दिष्टसदृशा अंकाः स्थापनीयाः कलोपरि ।। सर्वांतिमांकात्पूर्वांकं वामावर्तेन लोपयेत् ।। १ ।। एकलोप एकगुरुं द्विलोपे द्विगुरुं

तथा त्रिलोपे त्रिगुरुं विद्यादिति पिंगलभाषितम् ॥ २ ॥ एकत्र लिखितं प्राज्ञः पुनरन्यत्र नो लिखेत् । तत्र पङ्क्लपताकोदाहरणम्। उद्दिष्टसदृशांकाः स्थाप्याः १ २ ३ ५ ८ १३ अंतिमांकात् १३ वामावर्त्तेना- ष्टपंचाद्येकैकांकलोपे शेषांका ५।८।१०।११।१२ इयमेकगुरुस्थान संख्या।एवं द्वयोर्द्वयोर्लोपे द्विगुरुस्थानं यथा पंचाष्टलोपस्त्रयोदशशू न्ये संभवति शून्यशेषत्वात् ।त्र्यष्टलोपे शेषं २द्व्यष्टलोपे३एकाष्टलो प४त्रिपंचलोपो न कार्यः तच्छेषस्य पंचांकरूपस्य प्रागागतत्वात् । द्विपंचलोपे६एकपंचलोपे ७ एकत्रिलोपे ९एतावन्ति२।३।४।६।७।९ द्विगुरुस्थानानि । एवं त्रिलोपे त्रिगुरुस्थानं यथा त्रिपंचाष्ट १६ लो पो न संभवति भागाभावात् । द्वित्रिपंच १० लोपो वृत्त एव पंच- लोपो वृत्त एव पंचद्व्येकलोपोपि वृत्त एव तथैकद्वित्रिलोपोऽपि वृत्त एव३।५।७ रूपाणां शेषांकानां प्रागागतत्वात् । एकत्र्यष्टलोपे शि- ष्टम् १ सर्वगुरुस्थानम् ॥ अथ वर्णप्रस्तारविधिः ॥ पादे सर्वगुरावा- द्याल्लघुं न्यस्य गुरोरधः॥यथोपरि तथा शेषं भूयः कुर्यादमुं विधिम् ॥१॥ऊने दद्याद्गुरूनेव यावत् सर्वलघुर्भवेत्॥प्रस्तारोऽयं समाख्यात- श्छन्दोविच्छित्तिवेदिभिः॥२॥यथोद्दिष्टम्।उद्दिष्टे वर्णोपरि दत्त्वा क्रमे णांकम्।एकं लघुवर्णांके दत्त्वोद्दिष्टं विजानीयात् ॥ १ ॥ अथ नष्टम्। नष्टे तु कल्पयेद्भागं समभागे लघुर्भवेत् ॥ दत्त्वैकं विषमे भागः कार्यस्तत्र गुरुर्भवेत् ॥ १ ॥ अथ वर्णमेरुः । कोष्ठमक्षरसंख्यातम न्ताद्योरेकचिह्नितम्।शीर्षकोष्ठद्वयांकेन शून्यं कोष्ठं प्रपूरयेत्॥अथव- र्णपताका॥अंकमुद्दिष्टवद्दत्त्वा शेषे पूर्वान्त्रयं लिखेत्।एकैकेकगुरु ज्ञेयं द्व्यंद्वाभ्यां त्रिभिस्त्रयम् । एषा वर्णपताका कीर्तिपताकाऽहिराजस्य ॥१॥ चतुरक्षरच्छन्दसः कति भेदा भवंतीति प्रश्ने प्रस्तारः । ननु चतुरक्षरप्रस्तारे ऽऽ।ऽ कतमोऽयं भेद इति पृष्टे उद्दिष्टेनोत्तरं १ २ ४ ८ ऽऽ।ऽ लघुस्यांकः ४ सैकः ५ तथा च पञ्चमोऽयं भेदः ।

| षट्कलपताकेयम् | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | ३ | १ | | | | | |
| | २ | २ | ३ | ४ | ६ | ७ | ९ |
| | १ | ५ | ८ | १० | ११ | १२ | |

अष्टकलपताका विश्वासायतत्प्रस्तारोऽयम्

| | |
|---|---|
| SSSS | चतुर |
| ISSS | क्षरप्र |
| SISS | स्तारः |
| IISS | |
| SSIS | |
| ISIS | |
| SIIS | |
| IIIS | |
| SSSI | |
| ISSI | |
| SISI | |
| IISI | |
| SSII | |
| ISII | |
| SIII | |
| IIII | |
| १६ | |

## एकाक्षरवर्णमेरुः

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | १ | | | | | | | |
| १ | २ | १ | | | | | | |
| १ | ३ | ३ | १ | | | | | |
| १ | ४ | ६ | ४ | १ | | | | |
| १ | ५ | १० | १० | ५ | १ | | | |
| १ | ६ | १५ | २० | १५ | ६ | १ | | |
| १ | ७ | २१ | ३५ | ३५ | २१ | ७ | १ | |
| १ | ८ | २८ | ५६ | ७० | ५६ | २८ | ८ | १ |

SSSS१
IISSS२
ISISS३
SIISS४
IIIISS५
ISSIS६
SISIS७
IIISIS८
SSIIS९
IISIIS१०
ISIIIS११
SIIIIS१२
IIIIIIS१३
ISSSI१४
SISSI१५
IIISSI१६
SSISI१७
IISISI१८
ISIISI१९
SIIISI२०
IIIIISI२१
SSSII२२
IISSII२३
ISISII२४
SIISII२५
IIIISII२६
ISSIII२७
SISIII२८
IIISIII२९
SSIIII३०
IISIIII३१
ISIIIII३२
SIIIIII३३
IIIIIIII३४

| अष्टकलपताका. | | | |
|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ |
| १३ | ५ | २ | |
| २१ | ८ | ३ | |
| २६ | १० | ४ | |
| २९ | ११ | ६ | |
| ३२ | २ | ७ | |
| ३१ | १६ | १४ | |
| ३३ | १८ | १५ | |
| | १९ | १५ | |
| | २० | १७ | |
| | २३ | २२ | |
| | २४ | | |
| | २५ | | |
| | २७ | | |
| | २८ | | |
| | ३० | | |

ननु चतुरक्षरप्रस्तारे षष्ठो भेदः कीदृगिति प्रश्ने नष्टेनोत्तरम्। षण्णां विभागे ३ लब्धो लघुः त्रयाणां सैकानां ४ विभागे २ लब्धो गुरुः पुनर्द्वयोर्विभागे १ लब्धो लघुः पुनरेकमाधाय विभागे १ लब्धो

गुरुः ॥ तथा च ।ऽ।ऽ अयं षष्ठो भेद इति वाच्यम् । नन्वेकाक्षरादिषड्विंशत्यक्षरपर्यन्तं स्वस्वप्रस्तारे कति सर्वगुरवः कति चैकद्व्यादिगुरवः कति सर्वलघवः का वा प्रस्तारसंख्येति प्रश्ने मेरुणोत्तरं देयम्।तथा हि चतुरक्षरप्रस्तारे सर्वगुरुमेरुः १ एकगुरवः४द्विगुरवः ६ त्रिगुरवः ४ सर्वलघुरेकः एवं सर्वत्र ज्ञेयम् । सर्वसंकलने प्रस्तारसंख्या १६ लभ्यते । ननु चतुरक्षरप्रस्तारे षोडशभेदभिन्ने १ सर्वगुरुः चत्वारः ४ एकगुरवः षट् ६ द्विगुरवश्चत्वारश्च ४ त्रिगुरव एकः १ सर्वलघुरिति मेरौ लब्धे ते कतमकतमस्थाने भवंतीति प्रश्ने पताकयोत्तरम् । तथा हि । उद्दिष्टवदंकाः स्थाप्याः १।२।४।८।१६ अंति-

चतुर्वर्णपताका ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ४ | ८ | १६ |
| | ३ | ६ | १२ | |
| | ५ | ७ | १४ | |
| | ९ | १० | १५ | |
| | | ११ | | |
| | | १२ | | |

मांकात् १६ पूर्वांकानामेकद्व्यादिलोपेऽवशिष्टं स्थानं लभ्यते यथांत्यांकात् १६ वामावर्तेन ८।४।२।१। एकैकांकलोपे शिष्टम् । १२ । १४। १४। इयमेकगुरुस्थानपंक्तिः पुनर्द्विद्व्यंकलोपे द्विगुरुस्थानं यथाष्टचतुर्लोपे शिष्टम् ४ । अष्टद्विलोपे ६ अष्टैकलोपे ७ चतुर्द्विलोपे १० चतुरेकलोपे ११ द्व्येकलोपे १३ जाता द्विगुरुस्थानपंक्तिः ४।६।७।१०।११।१३ एवंत्रिव्यंकलोपे त्रिगुरुस्थानं यथाष्टचतुर्द्विलोपे २ अष्टचतुरेकलोपे ३ अष्टद्व्येकलोपे ५ चतुर्द्व्येकलोपे ९ जाता त्रिगुरुस्थानपंक्तिः २।३।५।९ आद्योंकः १ सर्वगुरुस्थानमंत्योंकः १६ सर्वलघुस्थानमिति संप्रदायः।केचित्पताकामन्यथा रचयंति। तद्यथा । उद्दिष्टसदृशानंकान्कृत्वा पूर्वैः परान् ॥ परान् यावत्प्रस्तारसंख्यानं पताकां रचयेद्बुधः ॥ १ ॥ एको द्वावथ चत्वारस्ततोऽष्टाविति वर्द्धनम् ॥ पूर्वं परेण संयोज्य तदधो विलिखेत्क्रमात् ॥ २० ॥ अंतिमांकावधि नैव लंघयेदत्र कुत्रचित् । पूर्वं समागतं चांकं पुनरन्यत्र

पंचवर्णपताका ।

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ४ | ८ | १६ | ३२ |
| | ३ | ६ | १२ | २४ | |
| | ५ | ७ | १४ | २८ | |
| | ९ | १० | १५ | ३० | |
| | १७ | ११ | २० | ३१ | |
| | | १३ | २२ | | |
| | | १८ | २३ | | |
| | | १९ | २६ | | |
| | | २१ | २७ | | |
| | | २५ | २९ | | |

नो लिखेत् ॥ ३ ॥ अत्र १।२।४।८ उद्दिष्टसदृशांकाः स्थापिताःएषु प्रथमादेकांकपूर्वांकासंभवाद्द्वितीयांकमारभ्यपंक्तिः पूर्य्यते । एकद्वियोगे ३ एकचतुर्योगे ५ एकाष्टयोगे ९ ततः पंक्तिपरित्यागो मेरौ त्रिगुरूणां चतुःसंख्यादर्शनात् । ततो द्विचतुर्योगे ६ त्रिचतुर्योगे ७ पंचचतुर्योगे ९ पूर्वोगतत्वात्त्यज्यते । पुनर्व्यष्ट योगे १० त्र्यष्टयोगे ११ पंचाष्टयोगे १३ ततः पंक्तात्यागः ततोधस्तास्ताच्चतुरष्टयोगे १२ षडष्टयोगे १४ सप्ताष्टयोगे १५ दशाष्टयोगेतु १८ प्रस्ताराधिकत्वान्न संचार्य्यंते । एवं पताकापूर्त्तिः ॥ अथ वर्णमर्कटीविधिः ॥ वृत्तभेदकलावर्णलघुधीसुखसिद्धये ॥ मर्कटी कथिता प्राज्ञैस्तत्प्रकारो निरूप्यते ॥ १ ॥ पट्पंक्तिर्विलिखेत्पूर्वमू-

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | वृत्तम् | अष्टवर्णमर्कटीयम् |
| २ | ४ | ८ | १६ | ३२ | ६४ | १२८ | २५६ | भेदाः | प्रस्तारभेदाः २५६ |
| ३ | १२ | ३६ | ९६ | २४० | ५७६ | १३४४ | ३०१२ | कलाः | प्रस्तारसर्वमात्राः ३०१२ |
| २ | ८ | २४ | ६४ | १६० | ३८४ | ८९६ | २०४८ | वर्णाः | प्रस्तारवर्णाः २०४८ |
| १ | ४ | १२ | ३२ | ८० | ११२ | ४४८ | १०२४ | लघवः | प्रस्तारलघवः २०२४ |
| १ | ४ | १२ | ३२ | ८० | १११ | ४४८ | १०२४ | गुरवः | प्रस्तारगुरवः २०२४ |

र्द्ध्वाधोधःक्रमाद्बुधः । तिर्यक्पंक्तीर्विरचयेत्तासु स्वेष्टानुसारतः ॥२॥ प्रथमालपाँल्लिखेदंकानेकद्व्यादिक्रमात्सुधीः ॥ द्वितीयस्यां द्व्यादिकांकान् द्विगुणानुत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥ प्रथमालीगतानंकान् द्वितीयालीगतांककैः ॥ गुणयित्वा क्रमात्पंक्तौ तुरीयायां लिखेत्कविः॥३॥ अर्द्धीकृत्य तुरीयांकाँल्लिखेत्पंचमषष्ठयोः तृतीयायां लिखेदंकान्मि-

श्रान्पंचमतुर्य्ययोः ॥ ५ ॥ अंत्यकोष्ठगतांकेभ्यो वृत्तादीनां विनिर्णयः ॥ कर्त्तव्यः प्रत्ययश्चास्य प्रस्तारादुपलभ्यते ॥६॥ अथ वर्णसूचीविधिः ॥ आदिगुर्वंतगुर्वादिलघ्वंतलघुबुद्धये ॥ आद्यंतगुरुकाद्यंतलघुबोधाय सूचिका ॥ १ ॥ कोष्ठेषु वर्णसंख्येषु ब्याद्यंकान् द्विगुणान्न्यसेत् ॥ मर्कट्याया द्वितीयाली सैव सूची निगद्यते ॥ २ ॥ उपान्त्यकोष्ठगा ज्ञेया संख्यादिगुर्वादिकात् ॥ तत्पूर्वकोष्ठगाद्यंतगुरुसंख्या तथा लघौ ॥ ३ ॥ अयमर्थः । अष्टाक्षरप्रस्तारे भेदाः २५६ तेष्वादिगुरवः १२८ अंतगुरवोपि १२८ अंतलघवः १२८ आदिलघवोपि १२८ आद्यन्तगुरवः ६४ आद्यंतलघवोपि १२८ सर्वत्रेयमेव रीतिः । अष्टाक्षरसूचीप्रदर्शनम् । वृत्तरत्नाकरे

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ४ | ८ | १६ | ३२ | ६४ | १२८ | २५६ |

तु षट् प्रत्यया वर्णिताः । प्रस्तारो नष्ट उद्दिष्ट एकद्व्यादिलगक्रिया॥संख्यानमध्वयोगश्च षडेते प्रत्यया मता इति । एषु प्रस्तारादयस्त्रयो दर्शितचरा एव । एकद्व्यादिगुरुलघुभेदादयोपि मेर्वादिना दर्शिता अपि पुनरेकद्व्यादिगलप्रत्ययेनाप्याह । वर्णान्वृत्तभवान्सैकानौत्तराधर्य्यतःस्थितान् । एकादिक्रमतश्चैतानुपर्युपरि विन्यसेत् ॥ उपान्त्यतो निवर्त्तेत त्यजन्नेकैकमूर्द्धतः । उपर्य्याद्याद्गुरोरेवमेकद्व्यादिगलक्रिया ॥१०॥ अत्रोर्द्ध्वांके सर्वगुरोः संख्या द्वितीयांके एकगुरोस्तृतीयांके द्विगुरोश्चतुर्थांके त्रिगुरोः पञ्चमांके

चतुरक्षरप्रस्तारस्यैकद्व्यादि लगक्रियेयम् ॥

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | | | | |
| १ | ४ | | | |
| १ | ३ | ६ | | |
| १ | २ | ३ | ४ | |
| १ | १ | १ | १ | १ |

सर्वलघोरित्येवं सर्ववृत्तेषु बोध्यः । चतुरक्षरप्रस्तारे एकगुरवश्चत्वारः ४ द्विगुरवः षट् ६ त्रिगुरवश्चत्वारः ४ चतुर्गुरुश्च भेद एक

इति लभ्यते। एवं लघोरपि चत्वार एकलघवो द्विलघवः ६ त्रिलघवः ४ सर्वलघुरेक इत्येकद्व्यादिलगक्रिया ॥ ॥ अथ संख्यानम् । लगक्रियांकानाम् १।४।६।४।१ इत्येवंरूपाणां मिश्रणे षोडशसंख्या लभ्यते।तथा च चतुरक्षरप्रस्तारस्य कियन्तो भेदा इति पृष्टे षोडशेति वदेत्। यद्वा ॥ ऽऽ उद्दिष्टांकसमूहे १५ सैकेपि षोडशत्वमेव लभ्यते ॥ अथाध्वानमाह ॥ ननु चतुरक्षरप्रस्तारे कियति भूतले प्रस्तार्य्यते इति पृष्टे प्रस्तारसंख्या १६ द्विगुणिता ३२ एकोना ३१ जाता । तथा चैकत्रिंशदंगुलिमितभूभागे स लिख्यत इति वक्तव्यम् ॥ १ ॥ अथ गणस्वरूपदेवताफलमित्रादिभावं चक्रेणाह । पुनर्मित्रमित्रादिफलं च । अन्यदप्यत्र बहुवक्तव्यमत उपरम्यते । किञ्च छन्दसामाविर्भावः। 'तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् । तस्मिन्स्वयं वेदमयो विधाता स्वयंभुवं यं प्रवदंति सोभूत्'इतिभूतिमैत्रेयोक्तस्साक्षाद्विष्णुरूपस्वयंभुवोपि सर्ववेदोपवेदेतिहासपुराणोपपुराणवार्त्तादंडनीत्यान्वीक्षिक्यादिभिः सह श्रुतः। तथाहि।' ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान्वेदादीन्मुखतोऽसृजत । शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं

चतुष्कलस्यषण्मात्रा मर्वदीर्यं प्रस्तारादस्य

प्रत्ययो लभ्यते इतिध्येयम् ?

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | वृत्तम् |
| १ | २ | ३ | ५ | ८ | १३ | भेदाः |
| १ | ४ | ९ | २० | ४० | ७८ | कलाः |
| १ | ३ | ७ | १५ | ३० | ५८ | वर्णाः |
| १ | २ | ५ | १० | २० | ३८ | लघवः |
| ० | १ | २ | ५ | १० | २० | गुरवः |

एतच्चेक मित्रमित्रादिविशेषफलमाह ।

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मित्र मित्रे | मित्र भृत्यौ | मित्र समौ | मित्र शत्रू | भृत्य मित्रे | भृत्य भृत्यौ | भृत्य समौ | भृत्य शत्रू |
| सिद्धि. | जय. | अल क्षणम् | बहु पीडा | कार्य सिद्धि | सर्व नाशः | हानिः | पराज य. |
| सम मित्रे | सम भृत्यौ | सम समौ | सम शत्रू | शत्रू मित्रे | शत्रु भृत्यौ | शत्रू समौ | शत्रू शत्रू |
| साम्य म् | विपद् | नैष्क ल्य | शून्यम् | शून्यम् | नारी नाशः | हानि. | प्रभु नाशः |

अथ गणस्वरूपदेवताफलमित्रादिभावचक्रमाह ।

| सर्वगुरु | सर्वलघु | आदिगुरु | आदिलघु | अंत्यगुरु | अंत्यलघु | मध्यगुरु | मध्यलघु | लक्षणम् |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मगणः | नगण | भगणः | यगण. | सगण | तगणः | जगण | रगण. | नामानि |
| SSS | III | SII | ISS | IIS | SSI | ISI | SIS | स्वरूपम् |
| भूमि | स्वर्ग | शशी | जलम् | वायु | तमः | रवि, | आग्न | देवता |
| श्री | आयु | यश | वृद्धि | भ्रमणम् | धनक्षय | रोग | मृति | फलम् |
| मित्रम् | मित्रम् | भृत्य | भृत्य | शत्रु | सम | सम | शत्रु | मित्रामित्रे |

व्यधात्क्रमात् ॥ आयुर्वेदं धनुर्वेदं गांधर्वं वेदमात्मनः । स्थापत्यश्चासृजद्वेदं क्रमात्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥ इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः । सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥ इति । आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दंडनीतिस्तथैव च । एवं व्याहृतयश्चासन्प्रणवो ह्यस्य हृत्खतः॥ तस्योष्णिगासीह्लोमभ्यो गायत्री च त्वचो विभोः। त्रिष्टुम्मांसात्स्नुतोऽनुष्टुब्जगत्यस्थ्नः प्रजापतेः ॥ मज्जायाः पंक्तिरुत्पन्ना बृहती प्राणतोऽभवत्।स्पर्शस्तस्याऽभवज्जीवः स्वरो देह उदाहृतः॥ ऊष्माणमिंद्रियाण्याहुरंतस्था बलमात्मनः । स्वराः सप्त विहारेण भवंति स्म प्रजापतेः ॥ शब्दब्रह्मात्मनस्तातेति तृतीयस्कंधे । इह ब्रह्मणः सूक्ष्मरूपेण सर्वविद्यानामुद्भवो दर्शितो विशेषतो मातृकाव्याख्योत्तरं किञ्चित्स्वरूपदर्शनपुरस्सरं व्याख्यास्याम इति ॥ किञ्च मातृका हि चतुर्धा सबिन्दुका सविसर्गका सोभया केवला च। तदुक्तं तंत्रसारे। 'चतुर्द्धा मातृका प्रोक्ता केवला बिन्दुसंयुता। सविसर्गा सोभया च रहस्यं शृणु कथ्यते ॥ विद्याकरी केवला च सोभया वृद्धिकारिणी।सविसर्गा पुत्रदा च सबिन्दुर्वित्तदायिनी' इति। केवला तु साक्षाद्ब्रह्मरूपैव लिंगसंख्यारहितत्वादव्ययरूपा च'।सदृशं त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु । वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्' इत्याथर्वणीश्रुतिप्रतिपादिताव्ययलक्षणयोगात् । सविसर्गा सबिंदुका सोभया च मंत्रबीजरूपा ज्ञेया। 'विसर्गेण बिंदुना

चोभयाभ्यां या हि संगता। मातृका बीजरूपा सा मंत्रज्ञैः समुदाहृता' इतियामलोक्तेः।कानि बीजानि किं कर्मकराणि चेति पार्वत्या पृष्टः शंभुरुवाच।'कदाचिन्मेरुशिरसि देवर्षीणां समाजके।मंत्रबीजप्रसंगेन देवाः पृष्टा मुनीश्वरैः ॥ बीजत्वं कथमर्णानां प्रोच्यते मंत्रवित्तमैः। रमाबीजं धराबीजं मायाबीजं तथा परम् ॥ व्यवहारः कथमयं वक्तव्यं दयया च नः। यतो जातं तु यद्बीजं तन्नाम्नैव तदुच्यते। बीजाद्यथांकुरोत्पत्तिः सेचनेन प्रजायते । वर्णबीजादपि तथा देवः साक्षाज्जपाद्भवेत् ॥ इति साम्येन बीजत्वमर्णानामपि विद्यते। कल्पादौ वा यतो वर्णादाविर्भूतस्ततोऽमरः ॥ सवर्णो बीजतामाप तन्नाम्नैव मुनीश्वराः ॥ ' रमाया बीजं कारणं रमाबीजं, रमैव बीजं कारणं यस्य तद्वा रमाबीजम् ।' हेतुर्ना कारणं बीजम्' इत्यमरः। इत्येवं सर्वत्र ज्ञेयम्'तानि बीजानि कतिचिद्वक्ष्यामो वो हिताय वै। यथा त्रिपुरसुंदर्या दक्षिणामूर्त्तये पुरा ॥ उक्तानि प्रीतया भक्त्या तेनोक्तानि समासतः । स्वशिष्येभ्यश्च कृपया बीजानि प्राक्तनानि वै'॥ तथा हि। 'पद्मा लक्ष्मीर्हरिणाक्षी सरोरुहनिवासिनी । कमला रुक्मिणी चैव नारायणप्रियाऽपि च॥लक्ष्मीबीजानि सप्तैव कृत्रिमाण्यपराणि तु । श्रीम् ॥ १॥ परा भूतिस्तथा लज्जा मायापि सकला - कृशा । समस्तापि तथा क्षामा कृत्रिमाण्यपराणि तु । ह्रीम् ॥ २॥ कामः पञ्चेषुरेवं च मदनो मन्मथस्तथा । मारः प्रद्युम्नकंदर्पावनृतान्यपराणि तु॥क्लीम् ॥ ३ ॥ वाग्भवं मूर्द्धबीजं च चारणं चंडकेश्वरः। चंद्रोपि चर्मवसनं वासनापि तथैवच ॥ चार्वंग्यापि च चर्माणमसत्यान्यपराणि तु ॥ ऐम् ॥ ४॥ शक्तिः शर्माऽपि विज्ञेयं शरच्छंके तथैव च। शक्तिबीजानि चत्वारि कृत्रिमाण्यपराणि तु॥ सः ॥ ५॥ प्रणवं च तथा तारं त्र्यक्षंतोमापि त्र्यंबकः। त्रासतारव एतानि बीजानि प्रणवस्य च ॥ ओम् ॥ ६ ॥ नमो विश्वं तथा स्तंभमो-

ष्मकं चाश्मरी तथा। अन्यानि कृत्रिमाण्येव सुरासुरनमस्कृते॥ नमः ॥ ७ ॥ स्कन्दं व्योपं च डिंवं च संयोज्य हरमित्यतः। ह्रां बीजोद्धारमेतद्धि ततोऽन्यदनृतं वदेत्॥ह्राम् ॥ ८ ॥ कान्ता च कमलाक्षी च प्रियापि परमापिच। लंभापि ललना लाजा असत्यान्यपराणि तु ॥ स्त्रीम् ॥ ९ ॥ आपो वनं तथा नीरं ठद्वयं च पयस्तथा। जलबीजानि पंचैव ह्यसत्यान्यपराणि तु ॥ स्वाहा ॥ १० ॥ फट् पुरं तुरंग चान्यदसत्यं तु सुरेश्वरि॥फट् ॥११॥ मंत्रो मनुर्हरश्चैव हनुर्वालं विदुर्बुधाः। बीजान्येतानि मंत्रस्य कृत्रिमाण्यपराणि तु॥मंत्रबीजे द्वे मंत्रः फट् च ॥ १२ ॥ काली कुंती रसज्ञापि जिह्वापि रसना तथा। क्रींबीजानि तथैतानि कृत्रिमाण्यपराणि तु ॥ क्रीम्॥१३॥वागुरा वायुपूज्यापि वांतदास्यत्रिबीजकम्।प्रींबीजानि तु प्रोक्तानि कृत्रिमाण्यपराणि वै। प्रीम् ॥ १४ ॥ चारुकं चैव चार्वंगी चारुतोच्छूनबीजकम् । चतुष्टयं तु छ्रींबीजमसत्यान्यपराणि च ॥ चार्वंगीबीजे द्वे छ्रीं ऐं च ॥ १५ ॥ पयोजं पंकजं पद्ममंबुजं नीरजं तथा॥ठकारे पंचबीजानि ह्यसत्यान्यपराणि च॥ठः॥ १६ ॥ शून्यं खमंबरं व्योम आंबीजं च चतुष्टयम्। हकारश्चैव विज्ञेयमुक्तं तद्रुद्रयामले ॥ हंम् आम् द्वे ॥ १७ ॥ कल्याणं चैव शर्मापि शं शुभं च चतुष्टयम्। अपरं त्वनृतं ज्ञेयममृतेश्वरनंदिनि ॥ शर्मबीजे द्वे सौः शञ्च ॥ १८ ॥ अग्नी रेफश्च वह्निश्च हुतभुग्घव्यवाहनः। रंबीजोद्धारणं चैव कृत्रिमं चापरं मतम् ॥ रम् ॥ १९ ॥ सिन्धुरं तटजं घोणा हस्तञ्च द्विरदं तथा। ह्रांबीजानि च चत्वारि कृत्रिमाण्यपराणि तु ॥ ह्राम् ॥२०॥ भद्रका भास्वती भीमा भैंबीजत्रयमुत्तमम्॥भैम् ॥२१॥ वाह्लीकं रामठं चैव हिंगुबीजं मुनीश्वराः। ग्लौंबीजोद्धार एवैष कृत्रिमस्त्वपरो मतः ॥ ग्लौम् ॥२२॥ तमोबीजं तथा ध्वांतं मोहस्तिमिरमेव च। लंबीजोद्धार एवैष कृत्रिम

स्त्वपरो मतः ॥ लम् ॥ २३ ॥ चंद्रः शीतांशुरिन्दुश्च शर्वरीपतिरेव च । ताराधिपः सुधारश्मिः कृत्रिमाण्यपराणि तु ॥ चंद्रबीजे द्रे ऐं द्रां च ॥ २४ ॥ ऊर्मिर्वीचिस्तरंगश्च वंबीजोद्धार इष्यते । वम् ॥ २५ ॥ स्तनबीजं कुचं चैवमुरोजो ह्यन्मेव च । जंबीजानि च चत्वारि कृत्रिमाण्यपराणि तु ॥ जम्॥२६॥ शिवबीजं शंभुबीजं शर्वः शंकर एव च । गंबीजानि च चत्वारि कृत्रिमाण्यपराणि तु ॥ गम् ॥ २६ ॥ इच्छाबीजं स्पृहा कांक्षा लिप्साबीजं चतुर्थकम् । झंबीजान्येव ज्ञेयानि कृ० ॥ झम् ॥ २७ ॥ नर्तकीबीजमत्युग्रं वेश्यापि गणिकापि च । पण्यस्त्री पंच बीजानि खमिति तत्स्फुटं त्विह ॥ खम् ॥ २८ ॥ छविबीजं कांतिबीजं शोभापि सुषमा तथा । हांबीजान्येव चत्वारि कृ०॥हाम् ॥ २९ ॥ शुक्रबीजं तथा काव्यो भार्गवः कविबीजकम् । दैत्यामात्यो महेशानि सुरासुरनमस्कृते ॥ त्रोंबीजपंचकं चैव कृत्रि० ॥ शुक्रबीजे द्रे स्रों ल्ह्च ॥ ३० ॥ अभ्रबीजं च जीमूतमंबुदं जलदं घनम् । वींबीजानि च पंचैव कृ० ॥ वीम् ॥ ३१ ॥ अब्धिबीजं तथा सिंधुः सांबरं सागरस्तथा । रुंबीजानि च पंचैव कृ० ॥ रुम् ॥ रंकाररुंकारयोर्भेदेन रमग्निबीजं रुमब्धिबीजं च ॥३२॥ कल्पबीजं च संवर्त्तं प्रलयं क्षयबीजकम् । क्षामिकं क्षुरकं क्षौद्रं तथा कल्पांतबीजकम् ॥ क्षुम् ॥ ३३ ॥ शतघ्नी श्यालिका श्याला शाद्वला शुष्कला तथा । ग्रींबीजानि च पंचैव कृ० ॥ ग्रीम् ॥ ३४ ॥ अंबरं वस्त्रबीजं च शून्यं शक्तिरिति द्वयम् । हरितं हरिणीबीजं हरिद्राबीजमेव च ॥ ह्रौंबीजानि च षड् देवि कृ० ॥ अंबरबीजे आम् ह्लौः च ॥ ३५ ॥ स्कंदः कुमारबीजं च शरजन्मा षडाननः । शांभवः शीलिगीबीजं तथा षण्मुखबीजकम् ॥ टंबीजानि च सप्तैव कृ० ॥ टम् ॥३६॥ नाट्यबीजं च नटनं तांडवं नृत्तबीजकम् । चंबीजानि च

चत्वारि कू० ॥ चम् ॥ ३७ ॥ वेधोबीजं विधिर्ब्रह्मा स्वयंभूबीजमेव च । कंबीजानि च चत्वारि कू० ॥ कम् ॥ ३८ ॥ गर्जितं स्वनबीजं च स्तनितं रसितं तथा । ठंबीजानि च चत्वारि कू० ॥ ठम् ॥ ३९ ॥ वृष्टिबीजं च करकं वर्षोपलस्तु वार्षिकः । क्रूंबीजानि च चत्वारि कू० ॥ क्रूम् ॥ ४० ॥ मृद्बीजं चैव ह्लींबीजं मृत्सा मृत्स्ना च मृत्तिका॥ह्लीम् ॥ ४१ ॥ प्रस्थबीजं सानुबीजं शिखरं पुष्करं तथा । म्लौंबीजोद्धार एषैवैतदन्यः कृत्रिमः स्फुटः॥ म्लौम् ॥४२॥ इति दक्षिणामूर्त्तिविरचितबीजकोशसारः ॥ अथास्योदाहरणान्यपि तल्लिखितान्येव कानिचिल्लिखामः ॥ तत्रादौ त्रिपुरामंत्रोद्धारः। क्षीरोदसंभवा भूतिः कामं वाग्भवमेव च । शक्तिः प्रणवलज्जेऽपि लक्ष्मीः शक्त्यादिकं ततः ॥ विपरीततया प्रोक्ता विद्याश्रीः षोडशाक्षरी । त्रिकूटा सकलभद्रे विधेयं षोडशाक्षरी ॥ इत्युड्डामरे ॥ रुद्रयामलेऽपि । हरिणाक्षी तथा माया कामं चैवाथ वासना । शरत्र्यक्षं तथा क्षामा लक्ष्मीः शक्त्यादिकं ततः ॥ विपरीततया प्रोक्ता विद्याश्रीः षोडशाक्षरी ॥ वामकेश्वरेऽपि । लक्ष्मीः परा मदनवाग्भवशक्तियुक्ता तारं च भूतिकमला कथितापि विद्या । शक्त्यादिकं तु विपरीततया च प्रोक्तं श्रीषोडशाक्षरविधिः शुभमस्तु पूर्णः ॥ इति ॥ कूटत्रयमत्रापि न ग्राह्यं तंत्रांतरसंमतेरन्यथा षोडशत्वं न स्यात् । कूटत्रयं[1] वाग्भवकूटकामराजकूटशक्तिकूटभेदात् । ककारएकारईकारलकारमहामाया इति वाग्भवकूटम्। हकारसकारककारहकारलकारमहामायाः कामराजकूटम् । सकारककारलकारमहामायाः शक्तिकूटमिति भेदत्रयम् ॥ तत्स्वरूपम् ॥ कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं श्रीं-ह्रींक्लींऐंसौः ओंह्रींश्रींसौः ऐंक्लींह्रींश्रीम् ॥ अथ लक्ष्मीमंत्रो-

१ कूटं समूहस्तस्यैकत्वादेकत्वमेव पञ्चानां षण्णां चतुर्णां च वर्णानां गण्यतेऽन्यथा षोडशत्वव्याघातापत्तेः ॥

द्धारः ॥ तदुक्तं रुद्रयामले । हरिणाक्षी परा त्र्यक्षं लक्ष्मीबीजत्रयं त्विदम्।विपरीततया प्रोक्तं सत्वरं फलदायकम्॥क्षामांशिंकापि नीरं च तदंते द्विजसत्तम ॥ अथैतत्स्वरूपम् ॥ ओंह्रींश्रींलक्ष्मिमहालक्ष्मिसर्वकामप्रदेसर्वसौभाग्यदायिनि अभिमतंप्रयच्छसर्वेसर्वगते सुरूपे सर्वदुर्जयविमोचिनिह्रींसःस्वाहा ॥ अथ सरस्वतीमंत्रोद्धारः शारदापटले । तारं लज्जा वाग्भवञ्च परा प्रणव एव च । बीजं पञ्चशिरो ज्ञेयमंते ज्ञेयं नम इति ॥ अथ स्वरूपम् ॥ ओंह्रींऐंह्रींओं वाग्देव्यै नमः॥ अथ तारामंत्रोद्धारो भैरवसर्वस्वे ॥ तारं व्योपं तथा कांता माया वाग्भवमेव च । कूर्चं चैव महेशानि ह्यन्ते फट्ठद्वयं तथा ॥ अथ स्वरूपम् ॥ ओंह्लांस्त्रींह्रींऐंहूंउग्रतारेफट्स्वाहा ॥ ततो भुवनेश्वरीमंत्रोद्धारः कुब्जिकासर्वस्वे । प्रणवश्च तथा माया कमला मन्मथस्तथा । अंते विश्वं नाम मध्ये प्रोक्तं तुभ्यं महेश्वरि ॥प्रोक्तोयं भुवनेश्वर्या मनुस्तुर्याक्षराभिधः ॥ अथ स्वरूपम् ॥ ओंह्रींश्रींक्लींभुवनेश्वर्यै नमः ॥ अथ मातंग्याः कुलसिद्धसंताने । तोमा काली तथा लक्ष्मीर्वाग्गुराद्वयमेव च । चारुकं चयबीजानि ह्यादौ प्रोक्तानि शंभुना॥अन्त्ये जिह्वा तथा पद्मं लज्जां नीरजमेव च । वासना पङ्कजं चैव वनं प्रोक्तं तु शूलिना॥ अस्य स्वरूपम् ॥ ओंक्रोंश्रींप्रींप्रींह्रींउच्छिष्टचांडालिनि देवि महापिशाचिनि मातंगि देवि क्रोंठः ह्रींठः ह्रोंठः स्वाहा॥अथ शारिकामंत्रोद्धारस्त्रिपुराशिरोमणौ ॥ तारं माया श्रिया कूर्चं सिंधुरं शून्यमेव च । कल्याणं शारिकादेव्या बीजं सप्ताक्षरं स्मृतम् । अन्त्ये स्तंभं च विज्ञेयं शारिकामंत्रमुत्तमम् ॥ अस्य व्यक्तिः॥ओंह्रींश्रींहूंह्रां ओंशांशारिकायैनमः॥अथ राज्ञीमंत्रोद्धारः । तारं लज्जा श्रियमग्निः कामः शक्तिः षडक्षरः । बीजं च पट्टशिरो ज्ञेयं ततः पल्लवमुद्धरेत् ॥ भगवत्यै तथा राज्ञ्यै ह्यंते माया च ठद्वयम् । एभिः सह मनुः प्रोक्तो राज्ञः पंचदशाक्षरः ॥ स्वरूप-

माह॥ओंह्रींश्रींरां क्लींसौः भगवत्यै राइयै ह्रींस्वाहेति श्यामातंत्रे ॥ भे-
डामंत्रस्तु कुलचूडामणौ॥प्रणवश्च विभूतिश्च हकारान्ता तथैव च॥वि-
यच्छत्त्यग्निबीजानि संयोज्य वाग्भवं तथा॥मदनं च तथा शंकाबीजं
सप्ताक्षरं वदेत् । ठद्वयेन समायुक्तः प्रोक्तो विंशाक्षरो मनुः ॥ स्वरू-
पम् ॥ ओंह्रींश्रींह्रस्रैंऐंक्लींसौः भेडाभगवति हंसरूपिणि स्वाहा ॥ अथ
ज्वालामुखीमंत्रोद्धारः शारदाटीकायाम् । तारं लज्जां श्रियं चैवमन्ते
कूर्चं पुरं पयःबीजं च अक्षरं देव्या ज्वालामुख्याः सुरेश्वरि ॥ स्वरू-
पम् ॥ ओंह्रींज्वालामुखिममशत्रून्भक्षय २ हूंफट्स्वाहा । एते दश
महाविद्यामंत्रा एषां फलानि ॥ मुक्तिं ददाति त्रिपुरा लक्ष्मी-
र्लक्ष्मीं ददाति च । विद्यां ददाति वाग्देवी प्रत्येकं जन्म निश्चला ॥
तारा तारयति क्लेशाद्राज्यं तु भुवनेश्वरी । मातंगी राक्षसी सा तु भीतिं
हराति नित्यशः ॥ शारिका शं ददात्येव संततिं लोकपूजिताम् ॥
राज्ञी राज्ये राजवश्यं भेडा भयविनाशिनी ॥ धनं ज्वालामुखी
देवी भक्तेभ्यश्च प्रयच्छति । एता देव्य इष्टदात्र्यो जपहोमार्चना-
दिभिः॥अथ त्रिपुरासखीनां मंत्रोद्धारः । तत्रादौ भद्रकाल्याःकाली-
त्रयं कूर्चयुग्मं लज्जायुग्मं च भाद्रिका ॥ भद्रकालिपदं ब्रूयाद्बीजानि प्र-
तिलोमतः ॥ ठद्वयेन समायुक्तो भद्रकालीमहामनुः॥इति श्यामा-
तंत्रे । अस्य व्यक्तिः । क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रींभैं भद्रकालिभैंह्रींह्रींहूंहूं
क्रींक्रींक्रींस्वाहा॥अथ छिन्नामंत्रोद्धारश्छिन्नाशिरोमणौ । त्र्यंबकः
सकलः पद्मा चारुकं च सुरेश्वरी । अन्त उच्छूनबीजं च फड्द्वयेन
समायुतम्॥प्रकाशमाह । ओंह्रींश्रींह्रूंछिन्नमस्तकेफट् स्वाहा॥अथ
तुरीमंत्रोद्धारस्तुरीतंत्रे ।प्रणवस्तारका ज्योतिस्तारा ह्रांते नम इति।
तुर्य्यामूलमिदं प्रोक्तं स्वतंत्रे शंभुना स्फुटम्॥स्वरूपम्।ओंत्रेंत्रांत्रों
महातुर्य्यैनमः ॥ द्विभेदात्मके त्वागमलहर्य्याम् । लक्ष्मीं लज्जां
तथा मायां मात्रां द्वादशकामथ । वज्रवैरोचनीये द्वे माये फट्स्वा-

ह्या युते ॥ स्वरूपम् । श्रींह्रींह्रींऐंवज्रवैरोचनीयेह्रींह्रींफट्स्वाहा॥ अथ दक्षिणाकालीमंत्रोद्धारः श्यामारहस्ये । कुंतीत्रयं तीर्थयुग्मं क्षामयुग्मं ततोभिधाम् । दक्षिणाकालिकेत्येवमंते कालीत्रयं पुनः॥ कूर्चयुग्मं परायुग्मं पयश्चैव सुरेश्वरि । दक्षिणाकालिकायाश्च ह्नुद्वाविंशकार्णकः ॥ स्वरूपम् । क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रींदक्षिणकालिकेक्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रींस्वाहा॥ अथ श्यामामंत्रः श्यामातंत्रे । हरिणाक्षीं तथा जिह्वां कालीजिह्वाचतुष्टयम्।ततः सुधारसे श्यामे कृष्णशापं विमोचय ॥ अमृतं स्रावय स्वाहा श्यामामंत्र उदाहृतः ॥ उदाहरणम् ॥ श्रींह्रींक्रांक्रींक्रूंक्रैंक्रौंक्रःसुधारसेश्यामेकृष्णशापंविमोचयामृतंस्रावय स्वाहा॥ अथ कालरात्र्या उद्धारस्तत्कल्पे । प्रणवो वासना माया मन्मथः कमला तथा । बीजं पञ्चशिरो ज्ञेयं ततः पल्लवमुद्धरेत् ॥ ततो मध्येऽभिधां त्यक्त्वा ह्रांते सर्ववशं कुरु । नीरं देहियुगं चैव मध्ये त्यक्त्वाभिधां ततः ॥ गणेश्वर्य्यैं तथा चांते विश्वं च समुदाहृतम् ॥ अस्य व्यक्तिः । ओंऐंह्रींक्लींश्रींकालेश्वरि सर्वजनमनोहारिणिसर्वमुखस्तंभनिसर्वराजवशंकरिसर्वदुष्टनिर्दलिनिसर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिणिबंदीशृंखलास्त्रोटयर सर्वशत्रून्भंजयर द्वेष्यान्निर्दलयर सर्वान्स्तंभयर मोहनास्त्रेणद्वेषिणमुच्चाटय २ सर्वं वशंकुरुस्वाहा देहि २ सर्वकालरात्रिकामिनिगणेश्वर्य्यैनमः ॥ अथान्नपूर्णामंत्रोद्धारः कामेश्वरीतंत्रे । तारं परापि कमला मीनकेतन एव च॥विश्वं ततो भगवति माहेश्वरि ततः पुनः ॥ अन्नपूर्णे ठद्वयं च मनुर्विंशाक्षरः स्मृतः ॥ व्यक्तिरस्य । ओंह्रींश्रींक्लींनमोभगवतिमाहेश्वरि अन्नपूर्णेस्वाहा॥अथ कुलवागीश्वरीमंत्रोद्धारो मुंडमालायाम्। प्रणवं मदनं चैव स्कंदं नारायणप्रियाम् । तटं तथेच्छाबीजं च ततः पल्लवमुद्धरेत् ॥ झषहस्ते ततः पश्चात्कुलवागीश्वरि तथा । अंते च वासनाबीजं पद्मं कांक्षापि नीरजम्॥नर्तकीबीजमंभोजं पय-

श्चैव सुरेश्वरि । कुलवागीश्वरीदेव्याश्चतुर्विंशाक्षरो मनुः ॥ अथास्य व्यक्तिः । ओंक्लींह्रींश्रींहूंझपहस्तेकुलवागीश्वरिऐंठः खंठः खींठःस्वाहा ॥ अथ पंचबालकमंत्राः । हेरंबशरजन्मानौ कार्त्तवीर्यार्जुनस्तथा।हनुमान् भैरवश्चैव कथिताः पंच बालकाः ॥ इति भैरवीतंत्रे॥ वामकेश्वरे तु । हेरंबशरजन्मानौ महामृत्युंजयस्तथा । कार्त्तवीर्यार्जुनश्चैव हनुमद्भैरवौ तथा॥कुमाराः षट्च संप्रोक्ताः । इति । रुद्रयामले तु । गणेशो वटुकश्चैव स्कंदो मृत्युञ्जयस्तथा । कार्त्तवीर्यार्जुनश्चैव सुग्रीवो हनुमांस्तथा ॥ कुमाराः सप्त विख्याता इत्युक्तमिति ॥ तत्रादौ गणेशमंत्रोद्धारो रुद्रयामले । प्रणवं कमलं लज्जां कंदर्पं मठबीजकम् । शंकरं षट्छिरोमंत्रं ततः पल्लवमुद्धरेत् ॥गणपते ततः पश्चाद्वरवरदमेवच । सर्वं जनं ततः पश्चान्मे वशमानयेति च ॥ अन्त्येऽपि ठद्वयं ज्ञेयमष्टविंशाक्षरो मनुः ॥ स्वरूपम् ॥ ओंश्रींह्रींक्लींग्लौंगंगणपतेवरवरदसर्वजनंमेवशमानयस्वाहा ॥ अथ कुमारस्य कुलचूडामणौ । प्रणवं छविबीजश्च मंत्रश्च द्विशिरः स्मृतम् ॥ मध्ये कुमाराय नमः अन्ते नीरमुदाहृतम् ॥ उदाहरणम् । ओंह्रांकुमारायनमः स्वाहा ॥ अथ कार्त्तवीर्यार्जुनस्य डामरतंत्रे । प्रणवं वायुपूज्यां च चारुकं मन्मथस्तथा । शुक्रबीजं तथा शून्यं कमलां रसनां तथा ॥ चंद्रं डिंबं च कूलं च तुरगं च सुरेश्वरि । मध्ये तन्नाम विज्ञेयं कार्त्तवीर्यार्जुनाय च ॥ अन्ते पयो मनुः प्रोक्त एकविंशाक्षरः शिवे ॥ व्यक्तिरस्य । ओंफ्रींब्लूंक्लींभ्रोंआंश्रींक्रौंऐंह्रांहुं फट्कार्त्तवीर्यार्जुनायस्वाहा ॥ अथ हनुमतः कुलचूडामणौ । प्रणवं मूर्द्धबीजं च विभूतिस्तदनंतरम् । हनूमते ततः पश्चाद्रामदूताय वै नमः ॥ लंकाविध्वंसनायैवमंजनीगर्भसं ततः । भूताय शाकिनी च डाकिनी तदनंतरम् ॥ विध्वंसनाय किलिद्वौ बुबुकारेण वै पुनः । विभीषणाय हनुमदेवाय तदनंतरम् ॥ त्र्यर्क्ष माया हरि-

णाक्षी व्योपः स्कंदं तथैव च।पुरमापस्तथांते च सप्तपञ्चाक्षरो मनुः॥ उदाहरणम् । ओंऐंह्रींहनुमते रामदूताय लंकाविध्वंसनायांजनीगर्भसंभूताय शाकिनीडाकिनीविध्वंसनाय किलिकिलिबुबुकारेण विभीषणाय हनुमद्देवाय ओंह्रींश्रींह्रौंह्रांफट्स्वाहा ॥ अथ भैरवस्य रुद्रयामले । प्रणवं मन्मथं चैवमभ्रबीजसमन्वितम् । अब्धिबीजं कल्पबीजं शतघ्नीबीजसंयुतम् ॥ मायां मध्येऽपि बटुकभैरवायाश्मरी तथा । अन्ते यो भैरवस्यायं मनुरष्टादशाक्षरः॥उदाहृतिः । ओंक्लीं वींरुंधुंभ्रींह्रींबटुकभैरवायनमःस्वाहा ॥ अथ महामृत्युंजयस्यागमलहर्य्याम् । त्र्यक्षं हव्वं शक्तिशोभेऽपि शंकां मा तस्माद्वै पालयद्वै तथैव । तस्माच्छक्तिः खं शरद्भ्यन्त्रासौ मंत्रोद्धारं देवमृत्युंजयस्य॥ ओंजूंसः हंसः मांपालयपालय सोहंसः जूं ओम् ॥ अथ सुग्रीवस्यागमशिरोमणौ । तारं माया वाग्भवं मन्मथं च शक्तिर्मध्ये नाम त्यक्त्वा तथांते। कालीपञ्चौ कूर्चपञ्चौ समस्तापञ्चौ नीरं क्षेप सुग्रीवमंत्रः ॥ स्वरूपमाह । ओंह्रांऐंक्लींसः सुग्रीवदेवताय क्रींठः हूंठः स्वाहा ॥ अथ नवग्रहमंत्राः । आदित्येंदुजशुक्राश्च गुर्विंदू परमेश्वरि । एते पञ्च महेशानि पञ्चेपोर्वाणदेवताः॥भौमार्किराहवश्चैव त्रय एते मुनीश्वराः । देवस्य खंडपरशोर्लोचनत्रयदेवताः ॥ केतुश्च परमेशानि भूमेर्देवः प्रकीर्तितः । एते नवग्रहाः प्रोक्ताः शंभुना रुद्रयामले ॥ तत्रादौ पञ्चस्वादित्यस्य विश्वनाथसारोद्धारे । प्रणवं चांबरं लक्ष्मीव्योमबीजं तथैव च । बीजं तुर्येशिरो ज्ञेयं मनुर्द्व्यष्टाक्षरः स्मृतः ॥ ओंह्रौःश्रींआंग्रहाधिराजायादित्याय स्वाहा ॥ अथ बुधस्य स्वतंत्रे।प्रणवं च तथा स्कंदं रसज्ञा च षडाननः।मध्येऽपि ग्रहनाथाय बुधाय च ततः परम्॥नीरश्च सोमपुत्रस्य मनुश्चतुर्दशाक्षरः॥स्वरूपम्।ओंह्रांक्रोंटं ग्रहनाथायबुधायस्वाहा ॥ अथ शुक्रस्यागमशिरोमणौ॥प्रणवं मूर्द्धबीजं च स्तनबीजसमन्वितम्।शिवबीजं

ततो मध्ये ग्रहेश्वराय वै पुनः ॥ शुक्रायांतेश्मरी चैव वालश्चतुर्दशाक्षरः ॥ उदाहृतिः । ॐऐंजंगंग्रहेश्वरायशुक्रायनमः ॥ अथ बृहस्पतेस्त्रिपुरातिलके । त्र्यक्षं मायापि सौभाग्या सुरासुरनमस्कृते । तरंगवेश्ये संयोज्य चार्वांगी हिंगुबीजकम् ॥ ऊर्द्धं च पट् शिरोबीजं ततः पल्लवमुद्धरेत् ॥ ततो ग्रहाधिपतये बृहस्पतय एव च ॥ ततो वारिवहश्चैव पद्मं लक्ष्मीं तु नीरजम् । वासना पंकजं चैवमंते प्रोक्तं मनः शिवे ॥ अथोदाहरणम् । ॐह्रीं श्रींक्लींऐं ग्लौंग्रहाधिपतये बृहस्पतयेवींठः श्रींठः ऐंठः स्वाहा ॥ अथ चंद्रस्य कालीपटले । त्र्यक्षं च हरिणाक्षी च कुंतीबीजसमन्वितम् ।हरेतिशब्दं संयोज्य शून्यानुस्वारसंयुतम् ॥ नाद्यबीजं ततो मध्ये चंद्रायांतेश्मरी स्मृता ॥ स्वरूपम् । ॐश्रींक्रींह्रांह्लौंचं चंद्राय नमः॥अथ त्रिग्रहमंत्रोद्धारस्तत्रादौ भौमस्य । चारणं हरिणीबीजं रुक्मिणी शर्वरीपतिःविधोबीजं ततोमध्ये ग्रहाधिपति वै ततः॥ भौमायांते पयः प्रोक्तो मनुः पञ्चदशाक्षरः ॥ शारदाटीकायाम् ॥ अथोद्धार ॥ ऐंह्लौःश्रींद्रांकंग्रहाधिपतिभौमायस्वाहा ॥ अथ शनैश्चरस्यागमकल्पद्रुमे ॥ तारं लज्जां श्रियं चैव बीजं त्रिशिर ऊर्द्धृतः । ग्रहचक्रवर्तिनेऽपि शनैश्चराय वै ततः । मदनं वासना शक्तिरंते नीरमुदाहृतम् । शनैश्चरस्य देवेशि मनुर्विंशाक्षरः स्मृतः॥स्वरूपम् । ॐह्रींश्रींग्रहचक्रवर्तिनेशनैश्चरायक्लींऐंसः स्वाहा ॥अथ राहोरागमकल्पद्रुमे । प्रणवं रसनायुग्मं तटयुग्मं च गर्जितम् । ततष्टंकधारिणे च राहवे हव्यवाहनः ॥ लज्जा लक्ष्मीस्तथा भीमा ह्यंते वनमुदाहृतम्। राहोर्विंशाक्षरो वालो यथाभीष्टफलप्रदः ॥ स्वरूपम् । ॐक्रींक्रीं हुंहुंटंटंकधारिणेराहवेरंह्रींश्रींभैंस्वाहा ॥ अथ केतोस्तंत्रमुक्तावल्यां । प्रणवं साधको वृष्टिस्ततोऽपि क्रूररूपिणे । केतवेऽपि ततः पश्चाचंद्रशंकापयस्तथा ॥ केतोरयं महामंत्रो देवि पंचदशाक्षरः ॥

ॐह्रींक्लींक्रूंररूपिणेकेतवेऐंसौः स्वाहा ॥ अथ पार्वत्या पृष्टो रुद्रो मातृकाक्रमतो बीजान्याह । शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मंत्रकोशं सुविस्तरम् । मुनीनां सूचितो यश्च दक्षिणामूर्तिना पुरा॥ईश्वर उवाच ॥ आत्मबीजमकारं च स्वान्तहृद्बीजमेव च । मानसं च मनोबीजं पैतामहमिति स्मृतम्॥अपरमनृतं ज्ञेयमकारस्य सुरेश्वरि ॥अ॥१॥ शून्यं खमंबरं व्योम वैष्णवं चेति भाषितम् । आकारस्यानृतमन्यदुक्तं भैरवतंत्रके ॥ आ ॥ २ ॥ इंद्रबीजं तथा जिष्णुर्मरुत्वान्मघवा हरिः । शैवं चेकारवर्णस्य कृत्रिमं त्वपरं वदेत् ॥ इ ॥ ३ ॥ बुद्धिबीजं तथा मेधा धीबीजं च मतिस्तथा । ऐंद्रं तथैव विज्ञेयमीकारस्यानृतं परम् ॥ ई ॥ ४॥ रुतिबीजं तथा नंदा वामनं वा तु बीजकम् । सौर्यमुकारबीजानि कृत्रिमाण्यपराणि तु॥उ॥ ५ ॥कचबीजं तथा केशं मूर्द्धजं च शिरोरुहम् । ऐंदवं त्वनृतं चान्यदूकारस्य सुरेश्वरि॥ऊ॥६॥पाप्मबीजं तथा पापं किल्बिषं कल्मषं तथा॥किंकरी बीजमेतच्च मंगलं त्वनृतं परम् ॥ ऋकारस्य रहस्येऽस्मिन्काल्याः प्रोक्तं सुरेश्वरि॥ऋ ॥७॥ कृपाबीजं दयाबीजं करुणा कार्पिकं तथा॥ ॠकारस्यानृतं चान्यद्भाषितं विश्वयामले॥ॠ॥८॥विश्वबीजद्वयं ज्ञेयं ऌकारं च नम इति॥व्यक्तबीजं जगद्बीजं गौर्वं प्रोक्तं मया शिवे॥ऌकारस्यानृतं वान्यत्तदुक्तं रुद्रयामले ॥ ऌ ॥ ९ ॥ गंगाबीजं स्वर्द्धुनी च नाकवापी च स्वर्णदी । शक्रमन्यदसत्यं च ॡकारस्य मयोदितम् ॥ ॡ ॥ १० ॥ एकादशी मातृका च लताबीजं तथैव च । वल्लीबीजं च वाराकी तदन्यदनृतं मतम् ॥ अपरञ्च मया ख्यातमेकारस्य सुरेश्वरि । कुलचूडामणौ ग्रंथे रचिते मांत्रिकोत्तमैः ॥ ए ॥ ११ ॥ वाग्भवमूर्द्धबीजं च चारणं चंडिकेश्वरः । चंद्रोऽपि चर्मवसनं वासनाऽपि तथैव च ॥ चार्वंग्यपि च चर्माणं मात्रां द्वादशकामथ । रोहं ख्यातं मया देवि ऐकारस्यानृतं परम् ॥ ऐं॥१२॥

प्रणवं च तथा तारं त्र्यक्षं तोमापि त्र्यंबिका। त्रासस्तारव ईशानि केतवं च मया स्मृतम्॥ ओं॥ १३॥ मोक्षबीजं तथा मुक्तिज्ञानं निर्वाणबीजकम्। आगस्त्यं च मया ख्यातं ग्रंथे भैरवतंत्रके॥ औं॥ १४॥ अंबीजं वृक्षबीजं च पादपं च धरारुहम्। भूरुहश्च मयाख्यातमनृतं त्वपरं वदेत्॥अम्॥१५॥नागबीजं भूधरश्च भाग्यबीजं च भानवम्। श्रौवं ख्यातं मया देवि अःशब्दस्यानृतं परम्॥ अः॥ १६॥ ककारं च शिरोबीजं मूर्द्धबीजं च वारुणम्। वेधोबीजं विधिर्ब्रह्मा स्वयंभूबीजमेव च॥ ककारस्य मयाख्यातमनृतं चापरं वदेत्॥ कम्॥ १७॥ नभोबीजं पुष्करं च द्योबीजं चक्रनाखकम्। वैष्टरश्रवसं चैव प्रोक्तं त्रिपुरया स्वयम्॥ खम्॥ १८॥ शिवबीजं शंभुबीजं शर्वश्च शंकरस्तथा। गकारस्यानृतं चान्यत्रापितं हि मया प्रिये॥ गम्॥ १९॥ जिनबीजं षडभिज्ञं च मारजिद्बीजमेव च। मायात्मजोऽर्कबंधुश्च गौतमं त्वनृतं परम्॥ घकारस्य मयाख्यातं ग्रंथे वै रुद्रयामले॥ घम्॥ २०॥ षडाननः शरजन्मा स्कंदः कुमारबीजकम्। शांभवः शालिगोबीजं त्वनृतं चापरं मतम्॥ ङम्॥ २१॥ नाट्यबीजं च नटनं तांडवं नृत्तबीजकम्। चकारस्य मयाख्यातं ग्रंथे भैरवतंत्रके॥ चम्॥ २२॥ शनिबीजमर्कजं च पंगुबीजं तथैव च। कालं च सौरबीजं च सूतिसुंदरबीजकम्॥ छम्बीजं च मया प्रोक्तं ग्रंथे कामेश्वरे शिवे। छम्॥२३॥ शनिबीजे द्वे छ ए॥ स्तनबीजं कुचं चैवमुरोजो ह्न्मेव च॥ जकारस्य मयाख्यातमतोन्यदनृतं स्मृतम्॥ जम्॥ २४॥ इच्छाबीजं स्पृहा कांक्षा लिप्सा बीजचतुष्टयम्। झकारस्य मयाख्यातमसत्यमपरं स्मृतम्॥ झम्॥ २५॥ यमबीजं कालबीजं कृतान्तं समवर्तिकम्॥ कीनाशं मृत्युबीजं च ञकारस्य मयोदितम्॥ ञम्॥ २६ गर्जितं स्वनबीजं च स्तानितं रसितं तथा॥ टकारस्य मया-

ख्यातं स्वतंत्रे देववंदिते ॥ टम् ॥२७॥ पयोजं पंकजं पद्मं नीरजं चाम्बुजं तथा ॥ ठबीजानीह पंचैव कृत्रिमाण्यपराणि वै ॥ ठम् ॥ २८ ॥ सिंहिका सरसीबीजं रेणुकाबीजमेव च । अंजनीबीजकं ख्यातं डकारस्य मया शिवे ॥ डम् ॥ २९ ॥ वायुबीजं चानिलं च मरुद्बीजं समीरणम्। समीरश्चाशुगं ज्ञेयं वातं श्वसनबीजकम्॥ढकारस्य मयाख्यातमसत्यं यदतः परम् ॥ ढम् ॥ ३० ॥ भैरवतंत्रे यमपि वायुबीजमुक्तम् ॥ आशुगबीजे द्वे णं ढं च ॥ मार्गणं बाणबीजं च पत्रिणं चाशुगं तथा । णकारस्यानृतं चान्यत्प्रोक्तं भैरवतंत्रके ॥ णम् ॥ ३१ ॥ रात्रिबीजं तमोबीजं तामसीबीजमेव च । क्षपा च क्षणदाबीजमसत्यं यदतः परम् ॥ कुब्जासर्वस्वके ग्रंथे तकारस्य स्मृतं शिवे ॥ तम् ॥ ३२ ॥ बिलबीजं च विवरं सुषिरं नागलोककम् । थकारस्य मयाख्यातं तंत्रे वै कुब्जिकार्णवे॥ थम् ॥ ३३ ॥ चक्रिबीजं व्यालबीजं सर्पः काकोदरोरगौ । भोगिबीजं भुजंगं च भुजंगममिति स्मृतम् ॥ दकारस्याष्टबीजानि ह्यनृतान्यपराणि तु ॥ दम् ॥ ३४ ॥ पुष्पबीजं प्रसूनं च प्रसूतिः सुप्रजास्तथा ॥ धकारस्यानृतं चान्यत्त्रिपुरातिलके स्मृतम् ॥ धम् ॥३५॥क्षारबीजं च लवणं सैंधवं सूकरं तथा॥वाराहश्च नकारस्य शिरो[1]मणौ मयोदितम्॥नम्॥३६॥मत्स्यबीजं मीनबीजं शफरीबीजमेव च । झषबीजं मयाख्यातं यस्य च्छिन्नाशिरोमणौ ॥पम् ॥३७॥ कूर्मबीजञ्च कमठं कर्कटोऽपि कुलीरकम्।कच्छपं च फकारस्य शारदापटलोदितम्॥फम्॥३८॥ऊर्मिर्वीचिस्तरंगश्च वकारस्य त्रयं मतम् । बीजमन्यदतोऽसत्यं मया प्रोक्तं सुरेश्वरि ॥ बम् ॥ ३९ ॥ भद्रिका भास्वती भीमा भकारस्यानृतं परम्।तंत्रेहि मुंडमालाख्ये मया प्रोक्तं महेश्वरि ॥ भम् ॥४०॥ डुलीबीजं शिलीबीजं मंडूकं दर्दुरं तथा ।

---

१ त्रिपुराशिरोमणौ ।

भेकीबीजं मकारस्य मयाख्यातं सुरेश्वरि ॥ मम् ॥४१॥ वायुबीजं तथा वाग्मि वाचालं वश्यबीजकम् । वीरबीजं तथा वापी यकारस्य मयोदितम्॥यम्॥४२॥अग्नी रेफश्च वह्निश्च हुतभुग्घव्यवाहनः॥रकारस्य मयाख्यातं श्यामातंत्रे सुरेश्वरि ॥ रम् ॥ ४३ ॥ तमोबीजं तथा ध्वांतं मोहं तिमिरमेव च । लकारस्य मया प्रोक्तं स्वतंत्रे मुनिनिर्मिते ॥ लम् ॥ ४४ ॥ भूबीजं धरणीबीजं वकारं ब्रह्मणोदितम् । अभ्रबीजं च जीमूतमंबुभृदंबुदंघनम् ॥ वकारस्य मया प्रोक्तं तंत्रे हि वामकेश्वरे ॥ वम् ॥ ४५ ॥ कल्याणं चैव शर्मापि शंशुभं च चतुष्टयम् । शकारस्य मयाख्यातं तंत्रे भैरवसंज्ञके॥शम्॥४६॥ शंपाबीजं तडिद्बीजं विद्युच्छतह्रदा तथा । ह्रादिनीबीजकं षस्य मया प्रोक्तं स्वयामले ॥ षम् ॥ ४७ ॥ शक्तिः शर्मापि विज्ञेयं शश्च्छंके तथैव च । सकारस्य मयाख्यातं ग्रंथे छिन्नशिरोमणौ ॥ सम् ॥ ४८ ॥ छविबीजं कांतिबीजं शोभापि सुषमा तथा । आकाशश्च हकारस्य सिद्धसारस्वतोदितम् ॥ हम् ॥ ४९ ॥ देवबीजं निर्जरं च त्रिदिशं त्रिदिवेशकम् । सुरबीजं च गीर्वाणं लेखममरबीजकम् ॥ क्षकारस्य मया प्रोक्तं कुलचूडामणौ प्रिये । वर्णानां देवदेवेशि कोशः प्रोक्तो मयाशुभे ॥ नानामंत्रयुतो देवि सर्वांगमसुनिश्चितः । दक्षिणामूर्त्तिमुनिना वर्णितोयं पुरातन इति ॥ अथ च सर्वा नानामंत्ररूपाऽपि मातृकैकमंत्ररूपत्वेनापि पठ्यते मंत्रशास्त्रे साचांतर्मातृकाबहिर्मातृकारूपेण द्विधा ॥ तथा हि । अस्यांतर्मातृकासरस्वतीमंत्रस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छंदोंतर्मातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयोऽव्यक्तं कीलकमंतर्मातृकान्यासे विनियोगः । ब्रह्मऋषये नमः शिरसि । गायत्रीछंदसे नमः कंठे । अंतर्मातृकादेवतायै नमो हृदये । हल्बीजेभ्यो नमो गुह्ये । स्वरशक्तिभ्यो नमः पादयोः । अव्यक्तकीलकाय

नमः सर्वांगे ॥ अथकरन्यासः। ओंअंकंखंगंघंङं आंअंगुष्ठाभ्यां नमः। ओंइंचंछंजंझंञं ईतर्जनीभ्यां नमः। ओंउंटंठंडंढंणं ऊंमध्यमाभ्यांनमः। ओंएंतंथंदंधंनं ऐंअनामिकाभ्यां नमः। ओंओंपंफंबंभंमं औंकनिष्ठिकाभ्यां नमः। ओंअंयंरंलंवंशंषंसंहंळंक्षं अःकरतलकरपृष्ठाभ्यां नमः॥ एवं हृदि शिरसि शिखायां कवचयोर्नेत्रयोरस्त्रे च न्यसेत्।नमः स्वाहा वषट् हुंवौषट्फट् इति क्रमेण न्यासांते वाच्यम् ॥ अथ ध्यानम्। हुंकारे धनुरब्जपंकजमुखे श्रीवक्रवक्षस्थले इडापिंगलमध्यपूर्णनयने ब्रह्मांडपिंडोदरे ॥ इंदूबाणधनुर्द्धरां बहुविधां पुष्पायुधां मोहिनीं तारापूर्णमुखीं भजे शिवकरीमंतर्महामातृके ॥ इति ध्यात्वा मानसोपचारैरर्चयेत् । ते च लंपृथिव्यात्मकं गंधं कल्पयामि । कनिष्ठिकाभ्यां मुद्रां प्रदर्श्य, हमाकाशात्मकं पुष्पं तर्जन्यंगुष्ठाभ्यां, यंवाय्वात्मकं धूपं तर्जन्यंगुष्ठाभ्यां, रंवह्न्यात्मकं दीपं मध्यमांगुष्ठाभ्यां, वममृतात्मकं नैवेद्यं ग्रासमुद्रया, शंशक्त्यात्मकं तांबूलं योनिमुद्रया सांगायै सायुधायै सवाहनायै समुद्रसहितायै छत्रं चामरं पादुके दर्पणं च भगवत्या अन्तर्मातृकादेवतायै नमः प्रीयतां सा । आधारे लिंगनाभौ प्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदलयुते द्वादशार्द्धे चतुष्के॥नासांते बालमध्ये डफकटसहिते कंठदेशे स्वराणां हंसं तत्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि ॥ १ ॥ आधारे वं नमः शंषंसंलिंगे, बंभंमं यंरंलं नाभौ, डंढंणं तंथंदंधंनं पंफंहृदये,कंखंगंघंङं चंछंजंझंञं टंठंकंठदेशे,अंआंइंईंउंऊंऋंॠंऌंॡं एंऐंओंऔंअंअः नमः अंगुष्ठानामिकाभ्यां योगेन भ्रूमध्ये हंनमः क्षंनमः इत्यन्तर्मातृकान्यासः ॥ अथ बहिर्मातृका॥तद्यथा । आद्यो मौलिरथापरो मुखमिई नेत्रे च कर्णावुऊ नासावंशपुटे ऋॠ तदनुजौ वर्णौ कपोलद्वयम् । दन्ताश्चोर्द्ध्वमधस्तथोष्ठयुगलं संध्यक्ष

राणि क्रमाज्जिह्वामूलमुदग्रविन्दुरपिच ग्रीवां विसर्गीश्वरः ॥ १ ॥
कादिर्दक्षिणतो भुजस्तदितरो वर्गस्तु वामो भुजष्टादिस्तादिरनु-
क्रमेण चरणौ कुक्षिद्वयं ते पफौ॥वंशः पृष्ठभवोऽथ नाभिहृदये बा-
दित्रयं धातवो याद्याः सप्त समीरणश्च सपरः क्षः क्रोध इत्यंबिके ॥२॥
क्रोधो ब्रह्मरंध्रम् ॥ अस्य श्रीबहिर्मातृकासरस्वतीमंत्रस्य ब्रह्मऋ-
षिर्गायत्री छंदो बहिर्मातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः
शक्तयो व्यक्तं कीलकं बहिर्मातृकान्यासे विनियोगः । ब्रह्मऋषये
नमः शिरसि । गायत्रीछंदसे नमो मुखे । बहिर्मातृकासरस्वतीदेव-
तायै नमो हृदये । हल्बीजेभ्यो नमो गुह्ये । स्वरशक्तिभ्यो नमः
पादयोः । अव्यक्तकीलकाय नमः सर्वांगे ॥ करादिहृदयादिन्यासः
पूर्ववत् ॥ अथ ध्यानम् ॥ संपूर्णेन्दुप्रभातां सकललिपिमयीं लोक-
वक्त्रां त्रिनेत्रां शुक्लालंकारभूषां शशिमुकुटजटाजूटयुक्तां प्रसन्नाम् ॥
पुस्तस्रक्पूर्णकुंभान्वरमपि दधतीं शुक्लपादां वराब्यां वाग्देवीं पञ्च-
वक्त्रां कुचभरनमितां चिंतयेत्साधकेन्द्रः ॥ १ ॥ ध्यात्वा मानसो-
पचारैः संपूज्य अंनमो ललाटेनामिकाभ्याम् । आंनमो मुखे ।
इंनमो दक्षिणनेत्रे अनामिकातर्जनीभ्याम् । ईंनमो वामनेत्रे ।
उंनमो दक्षिणकर्णे । ऊंनमो वामकर्णे । ऋंनमो दक्षनासापुटे
ॠंनमो वामनासापुटे कनिष्ठांगुष्ठाभ्यां । ऌंनमो दक्षगंडे ।
ॡंनमो वामगंडे मध्यमाभ्याम्।एंनम ऊर्द्ध्वोष्ठे मध्यमाभ्याम् । ऐंनमोऽ-
धरे।ओंनम ऊर्द्ध्वदन्तपंक्तौ अनामिकाभ्याम्। औंनमः अधोदन्तपंक्तौ
अनामिकाभ्याम्।अंनमो जिह्वायाम् अःनमः कंठे। कं नमो दक्षबाहु-
मूले खंनमो दक्षकूर्परे गंनमो दक्षमणिबंधे घंनमो दक्षांगुलिमूले
ङंनमो दक्षांगुल्यग्रे चंनमो वामबाहुमूले छंनमो वामकूर्परे जंनमो
वाममणिबंधे झंनमो वामांगुलिमूले ञंनमो वामांगुल्यग्रे टंनमो
दक्षोरुमूले ठंनमो दक्षजानुनि डंनमो दक्षगुल्फे ढंनमो दक्षांगुलि

मूले णंनमो दक्षांगुल्यग्रे तंनमो वामोरुमूले थं० वामजानुनि दं० वामगुल्फे धं० वामांगुलिमूले नं० वामांगुल्यग्रे पं० दक्षकुक्षौ फं० वामकुक्षौ बं० पृष्ठे भं० नाभौ मं० उदरे यं० हृदये रं० कंठे लं० दक्षबाहुमूले वं० वामबाहुमूले शं० हृदयादिदक्षकराग्रांतं षं० हृदयादिवामकराग्रांतं सं० हृदयमारभ्य दक्षपादपर्यंतं हं० हृदयमारभ्य वामपादपर्यंतं ळं० पादादिशिरःपर्य्यंतं, क्षं० शिरःप्रभृति पादान्तम् ॥ इतिबहिर्मातृकान्यासः ॥ अथ विलोममातृका च ॥ क्षंळंहंसंषंशंवंलंरंयंमंभंबंफंपंनंधंदंथंतंणंढंडंठंटंञंझंजंछंचंङंघंगंखंकं अःअंऔंओंऐंएंॡंऌंॠंऋंऊंउंईंइंआंअं॥इतिविलोममातृकाः ॥ अनुलोमाय। आदौ विलोमाया अंते चैकैकमालाजपात्साधुमशक्योऽपि मंत्रो झटिति सिध्यतीत्युक्तं मंत्रशास्त्रे।किञ्च भुवनेश्वरीस्तवे तु क्षादग्रे ळकारोन गृहीतस्तत्रास्या बीजांतरसंकलनजपात् सारस्वतसिद्धिरच्युक्ता।आदौ वाग्भवमिंदुबिंदुमधुरं भांते च कामात्मकं योगांते कपयोस्तृतीयमिति ते बीजत्रयं ध्यायता । सार्द्धं मातृकया विलोम विषमं संधाय बंधच्छिदा वाचां सर्गतया महेश्वरि मया मात्राशतं जप्यते ॥ १ ॥ अस्यार्थः ॥ हे महेश्वरि मयांतर्गतया वाचा मात्राशतं जप्यते । किंभूतेन इत्यमुना प्रकारेण तत्तव बीजत्रयं विलोमविषमं यथा स्यात्तथा मातृकया सह संधायानुबध्य ध्यायता । इतीति किम् आदौ अकारादौ इंदुबिंदुमधुरम् इंदुश्चंद्रकला बिंदुरनुस्वारस्ताभ्यां मधुरं मनोहरं वाग्भवं वाग्बीजमैमित्यर्थः । च पुनः भांते भकारांते कामात्मकं क्लींकारं तदनु कपयोर्योगांते क्षकारांते तृतीयं शक्तिबीजं सौः इति । तद्यथा । ऐंअं आंइंईंउंऊंऋंॠंऌंॡंएंऐंओंऔंअंअः कंखंगंघंङंचंछंजंझंञंक्लींटंठंडं ढंणंतंथंदंधंनंपंफंबंभंमंयंरंलंवंशंषंसंहंक्षंसौः॥प्रातिलोमतो यथा॥सौःक्षं हंसंषंशंवंलंरंयंमंभंबंफंपंनंधंदंथंतंणंढंडंठंटंक्लींञंझंजंछंचंङंघंगंखंकं-

अःअंऔंओंऐंएंलृंलृंॠंऋंऊंउंईइंआंअंएं इति ॥ पुनः किंभूतेन मया बंधस्संसारस्तं छिनत्तीति बंधच्छित्तेन तथा ॥ किञ्च । तत्सारस्वतसार्वभौमपदवी सद्यो मम द्योततां यत्राज्ञाविहितैर्महाकविशतैः स्फीतां गिरञ्चुम्बताम् ॥ चैत्रोन्मीलितकेलिकोकिलकुहूकारावतारांचितश्लाघासिञ्चितपञ्चमश्रुतिसमाहारोपिभारोपमः॥२॥ अस्यार्थः।तत्तस्माज्जपात्सद्यस्तत्कालंमम सरस्वतीं विदंतीति सारस्वताः विद्वांसस्तेषुसार्वभौमपदवी चक्रवर्तित्वं द्योततां प्रकाशताम् । यत्र यस्यां सारस्वतसार्वभौमपदव्यां गिरं चुंबतां वाणीं शृण्वतां पुरुषाणां चैत्रोपलक्षिते वसंते उन्मीलितकेलयः प्रकाशितक्रीडा ये कोकिलाः पिकास्तेषां ये कुहूकारावताराः कुहूकुहू इति ध्वनयस्तैरंचिता प्राप्ता या श्लाघा स्तुतिस्तया सिंचितो वार्द्धतो यः पंचमस्तस्यैतन्नामकस्वरस्य श्रुतिसमाहारः श्रवणसमूहः सोपि भारूपो दुःसहो भवति । किंभूतां गिरं महाकवीनां शतैः स्फीतां प्रौढीकृताम् । किंभूतैर्महाकविशतैः महाप्रबंधे आर्यादिच्छंदसि यत्र गुरुर्विलोक्यते तत्र गुरुरेव यत्र लघुर्विलोक्यते तत्र लघुरेवेति याऽऽज्ञा तया विहिताः प्रेरितास्तैः एतेन कोकिलादिस्वरतोऽप्यधिकं लोकरंजकत्वं महाकविश्लाघ्यकवित्वञ्च मे सद्यो देहीति भावः । किं बहुना मंत्रशास्त्रे मातृकाप्रभावो बहुधा वर्णितोस्ति विस्तराभियेह न प्रपंच्यते ॥ अथ च या लिंगसंख्याविनिर्मुक्ता मातृका प्रतीयते. तस्याः किंचन योजनामात्रं लिंगसंख्यावत्त्वेनापि क्रियते । तथाहि

## अआइईउऊऋॠलृलॄएऐओऔअंअः ।

अशब्दवाच्या ब्रह्मसोमादयस्तथा आशब्दवाच्या अनिलानलवसंतादयस्तथा इशब्दवाच्याः कामवरुणादयो वृक्षादयश्च ईशब्दवाच्या ईश्वरशत्रुमित्रादयश्च उशब्दवाच्याः शंकरसेत्वादयो नारदादयश्च ऊशब्दार्थास्त्वष्टृवाय्वादयस्तथा ऋशब्दार्था वा-

सुकिश्यालनिर्ऋत्यादयश्च ऋकारार्थाः हस्त्यादयश्च लृवाच्या मत्स्यवीतरागादयो लॄवाच्या देहांगबालादय एकारार्थाः कुमारोद्धवादयश्च ऐवाच्या धरणीनाथकुलालवानरादयश्च तथा ओकारार्थाः ध्रुवागस्त्यादयस्तथा औवाच्या नरनारीस्थूलसूक्ष्मादयश्च तथा अंवाच्याः सुखदुःखादयश्च एते सर्वे अएव वासुदेवस्वरूपा एव' सर्ववाक्यं सावधारणम्'इतिन्यायादत्रैवकारोज्ञेयः ।" पुरुष एवेदंसर्वम् " इतिश्रुते,'सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इति श्रुतेश्च" सकलमिदमहं च वासुदेवः " इति वृद्धानुशासनाच्च ।' वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्योर्थोऽस्ति तत्त्वतः' इति श्रीभागवतद्वितीयस्कंधोक्तेश्च'अकारो वासुदेवः'इत्येकाक्षरात् ॥

अथाकारादिषोडशस्वराणां ब्रह्मादिवाचकत्वे सौभरिमुनिवर्यप्रणीतश्लोका लिख्यंते । तथाहि । अः कृष्णः शंकरो ब्रह्मा शक्रःसोमोऽनिलोनलः ॥ सूर्यः प्राणो जनः कालो वसन्तः प्रणतः सुखी ॥ १ ॥ आः स्वयभूरिभो वाजी खेदः शंकरवासवौ ॥ पारिजातः समः प्राज्ञो नवासश्चणकः सुतः॥२॥ इः कामः स्थाणुरिंद्रोऽर्को वरुणः पादपो द्विपः॥शुचिः श्रीमानञ्जबालौ विरिञ्चिः कृत्तिकासुतः ॥ ३ ॥ ईरीश्वरो भवेच्छत्रुः पुरुषः करुणोरुणः ॥ अप्रजाः सुप्रजाः शंभुर्मुकुरो नकुलोऽकुलः ॥ ४ ॥ उर्गौरीपतिरुःकालः सेतुर्नाथः परायणः॥नारदोऽर्कोऽनिलः पाशी मार्कण्डेयोऽथरावणः ॥५॥ ऊः परेतोऽज ऊस्त्वष्टा विवस्वानग्निसारथिः॥वह्निर्निशाकरः पूर्णो दरिद्रो सरमाधिपः ॥ ६ ॥ ऋर्निर्ऋतिर्नलो नाथः खग एवाथ वासुकिः ॥ श्यालः पितृष्वसुः पुत्रोऽदितिर्दितिरुमा रमा ॥ ७ ॥ अत्र ऋइत्यार्षत्वात्सोराकाराभावः । ॠर्निषेधो भवः पूषा करुणोऽमराडजः ॥ करी तरुर्नरः पाप्मा विद्वानथ रमापतिः ॥ ८ ॥ लृर्मत्स्योऽरुणवर्णः स्यात्क्लीबः पापी पराजितः ॥ वीतरागोऽप्यपाखंडी कमठं मरणं च लृ ॥ ९ ॥ इदमपि पूर्ववत् । लॄर्महात्मा

सुरो वालो भूपः स्तोमः कंथानकः ॥ मूर्खः शिश्नो गुदः कक्षा केशः पापरतोऽमरः ॥१०॥ एः कुमारोऽसुरो ऽरातिर्ज्ञातीयो हित उद्धवः ॥ आत्मा शेपो विवस्वांश्च कृतार्थो मध्वरी शरः ॥ ११ ॥ ऐः क्रूरो धरणीनाथः पूरो मारोऽमरोऽसुरः ॥कुलालोनाधरः प्राज्ञोऽस्वेदः पुत्रोऽथ वानरः ॥१२॥ ओर्वेधा ज्ञो ध्रुवोऽगस्त्यो गरुडो गौः क्षयोऽसुरः॥ आखुः काणोऽथ मार्जारः साधुः संगः पराशरः ॥ १३ ॥ औः श्वा युवा नरो नारी भावः सूक्ष्मः प्रजापतिः ॥ स्थूलो जारः कलावांश्च सुखी दुर्गा रतिः कविः ॥ १४ ॥ अं सुखं कश्मलं दुःखं पूर्णं दुःखांतरं वरम् ॥ अः प्रागुक्तो जिनाद्येषु विष्णुर्नित्यो नयः सुतः ॥१६॥ इति सौभरिणा स्वकृतमातृकानाममालायामुक्तम् ॥

कख गङघङञच छजझञञट ठडढण तथ दध न पफवभमयरलवशषस सह क्ष.

अथ कादिक्षांतवर्णानां योजना॥कख गू अघङ्ञ च छजझञ् अट ठडढ्‌ अण तथ दध न पफवभमे अरला उ अशप सह क्ष इति छेदः । गू इतिक्लीवं द्वितीयैकवचनं छजझञ्च तथा ठडढ्च । हे अघं पापमङति प्राप्नोतीति अघङ् यद्वाऽवमङितुं शीलमस्येत्यघङ् हे पापशील नर अङ् अञ् अण् अन् अम् अय् अढ फव एतेऽन्येऽप्येतादृशा गत्यर्था अत्र बोध्याः एषां धातुपाठ उपलब्धिरस्ति कस्यचिदनुपलब्धिस्त्वानंत्यादेव । तदुक्तमनुभूतिना सारस्वते ' धातूनामप्यनन्तत्वान्नानार्थत्वाच्च सर्वथा । अभिधातुमशक्यत्वादलमाख्यातचिंतया ' ॥ इति ' अतो ह्यर्थवशात्कल्प्यो धातुः सन्नेव मन्यते ' इत्यभियुक्तोक्तेश्च कल्पितोप्यर्थवशाद्धातुस्सत्य एव मंतव्योऽन्यथाऽनंतत्वव्याहतेः । तथा चात्राङ्गतावतः क्विप् शकंध्वादित्वात्पररूपञ्च । पायति शोपयति सुखमायुर्वेति यः कालः । पै शोपणेऽतो डस्तस्य फवनं फवो गतिः । फव गतौ ततो मदादित्वादप्रत्ययः । यद्वा फिभ्रमण इति धातोस्स्वरांतत्वादप्रत्ययः । पफवस्तस्माद्भं

भयं मीनाति हिनस्तीति पफवभमः । अत्र मीनातेर्डप्रत्ययः ।'भो भद्रे च भयेऽपि च' इति कोशात् । स च हरिः'मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायँल्लोकान्सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत् । त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाऽद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति' ॥ इति श्रीदेवकीदेव्युक्तेः तस्मिन्पफवभमे श्रीहरौ । उ वितर्कौ अं सुखं रातीत्यरो भक्तियोगः 'न मे भक्तः प्रणश्यति' इति श्रीमुखोक्तेः । तं लाति ददातीति अरला हरिकथा तया तथा । आतो लोपः । गोपावत् । 'कैवल्यसंमतपथस्त्वथ भक्तियोगः को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात्' इति द्वितीयस्कंधोक्तेः । ग्र प्रीतिमट प्राप्नुहि । 'गः प्रीतौ' इति सौभर्युक्तेः । अत्र ङकारेऽकारः प्रश्लेष्यः । स च 'अमानोनाः प्रतिषेधे' इत्युक्तत्वान्निषेधार्थको ज्ञेयः। अत्र कोऽर्थः मा कख गर्वं कुरु कखे हसने हसनं हासो गर्वश्च धनपरिजनादिगर्वं त्यजेत्यर्थः। चोऽत्र पुनरर्थे। च पुनस्तथ यथार्थभाषणं कुरु तथे यथार्थभाषणे धातुरेदित् । च पुनः छश्च जश्च झश्चैषां समाहारश्छजझं तच्च भूर्जाग्निरूपमिति छजझम् क्लीबत्वं चात्र। तथा च 'छः छले जोऽपवादे च झो झकटे जोऽग्निरूपे च' इति कोशादेकदेशोच्चारणन्यायाच्च एतेषामग्निरूपत्वादेतानि च न दध मा कदापि कुर्वीति भावः । दध धारणे परस्मैपद्यप्यस्ति धातुपाठे । छलादेराचरणान्नरकाग्निदाहस्यावश्यंभावित्वात् । ठो मध्वारिरिति कोशाद्विष्णुर्डोऽर्घ्यः पूज्यो येषां तान्ढत्ते प्राप्नोतीति ठडढ् सत्संगिकुलं तच्चाण प्राप्नुहि एतदपि क्लीबम् । सत्संगी भवेति भावः। न विद्यते शं येषां तेऽशाः पापिनस्तैः पो रणो युद्धं यस्य सोऽशपस्तत्संबुद्धौ तथा । पापिसंगरहितो भवेति भावः । क्षयति नश्यतीति क्षस्तत्संबुद्धौ हे विनाशशील यद्वा हे क्षांत त्वं पफवभमे सह तृप्तो भव। सह तृप्तौ दिवादिर्गणकार्यस्यानित्यत्वात् । नश्यंस्तत एव ते सर्वमभिलषितं सेत्स्यतीति भावः । 'पो रणे' इति

सौभर्युक्तेः क्षः क्षान्त इति च।एतेन परमेश्वरभक्तिगर्वत्यागकुसंगत्यागच्छलादित्यागसत्संगस्वीकारक्षमावत्त्वेऽस्याकारादिक्षांतवर्णसमूहस्य तात्पर्यं ध्वनितमेतदेव सर्ववेदपुराणेतिहासधर्मशास्त्रादीनाञ्च तात्पर्यमस्यैव व्याख्यारूपत्वात् सर्वशास्त्रस्येति।एषां वर्णानां यन्नंदिकेश्वरेण व्याख्यानं भंग्यंतरेण कृतं तदेव निरवद्यमास्ति।एतत्तु केवलं विदुषां मोदायैव कृतमिति ॥ अथ चानेन क्रमेणैवैते वर्णाः परमात्मन उद्भूताः 'आदिक्षान्ता इमे वर्णाः संभूताः परमात्मनः॥द्वारीकृत्य प्रणवकं त्रिमात्रं सर्वकारणम् ॥ अकारात्स्वरसंभूतिस्स्पर्शसम्भृरुकारतः॥अंतस्थोष्मक्षकाराणां मकारात्संभवोऽभवत् ॥ स्वराः षोडश विज्ञेयाः स्पर्शास्तु पञ्चविंशतिः॥अंतस्थाश्च तथोष्माणो वेदवेदमिताः स्मृताः॥क्षकारो वर्णसंयोग उपलक्षणमीरितः॥ह्रस्वदीर्घावुभौ भेदावनाद्यौ हि प्रकीर्तितौ ॥ प्लुत उत्पत्तिकालीनो नपार्श्वात्योऽश्नुतेस्तदेति वर्णसंहितोक्तेः ॥एतत्क्रमानंगीकारे हि'स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशम्' इति मुनींद्रोक्तसंख्याऽनिष्पत्तिदोषः स्यात्।किञ्च'अकारात्पञ्चमो वर्णस्तमाहुः पंचकग्रहम् ॥ उकारस्तत्र विख्यातो नान्यो भवितुमर्हति ॥' इति भर्तृकारिकाव्य।कोपोऽपि स्यात्।किञ्च 'पञ्चाशत्तमकाद्वर्णात्पूर्वोऽर्णो मात्रया युतः ॥ पञ्चम्या वर्मबीजं स्यान्मात्रापंचदशीशिराः॥'इति बीजार्णवोक्तवर्णमात्रासंख्याप्येतत्क्रमतो वर्णोत्पत्तावेव संपत्स्यतेऽन्यथा न कथमपीति ॥ अस्यार्थस्तु । पञ्चाशत्तम एव पञ्चाशत्तमकस्तस्माद्वर्णात् क्षकारात् पूर्वोऽर्णः प्रथमो वर्णो हकारः स पञ्चम्या अकारात्पञ्चम्या मात्रयोकाररूपया युतोवर्मबीजमेतत्संज्ञबीजं भवेत्।किंभूतोऽर्णः मात्रा चासौ पंचदशी चेति मात्रापंचदशी मात्रापंचदशी शिरसि यस्य समात्रापंचदशीशिराः।वत्तुक्तस्यासार्वत्रिकत्वात्पुंवद्भावाभावस्तथैव समासांताभावश्च।पंचदशी मात्रा चाकारमारभ्य गणनया अमित्यनुस्वाररूपा समायाति । तथा

च हुमिति वर्मबीजं प्रसिद्धमत एवांगन्यासे कवचाय हुमिति पठ्यते। एवमन्यत्रापि बहुधोक्तं विस्तरभियैवेह न प्रपञ्च्यते । भक्तपुलाक-न्याय एवात्र सूचितः। अत एव श्रीलजीवगोस्वामिचरणैरपि वैष्ण-वव्याकरणे हरिनामामृताख्ये नारायणादुद्भूतोऽयं वर्णक्रम इत्यु-क्त्वा अकारमारभ्य क्षान्ताः पञ्चाशद्वर्णा लिखिताः । किञ्च सृष्टि-क्रमतः संहारक्रमो हि प्रतिलोमो भवति स च सप्तमस्कंधे श्रीभा-गवते श्रीनारदेन दर्शितः।' वाचं वर्णसमावाये तमोंकारे स्वरे न्यसे-त् । ओंकारं बिंदौ नादे तं तं तु प्राणे महत्यमुम् ' इति । किंच केरलशास्त्रेप्ययमेव वर्णोत्पत्तिक्रमो गृहीतः । तथा हि ।' काद्याष्टाद्या नव नव पाद्याः पञ्च प्रकीर्तिताः । यादयोऽष्टौ नभौ पूर्णे केवलाश्च स्वरा अपि॥' इति । इहापि ककारमारभ्य झकारान्तास्तथा टकार-मारभ्य धकारांता नव नव ग्राह्याः । यकारमारभ्य हकारांता अष्टौ ग्राह्याः । नकारभकारयोः स्थाने पूर्णशब्देन बिंदुर्ग्राह्यस्तथा वर्णांत-रामिलितस्वरस्थानेऽपि बिंदुरेव ग्राह्य इति । ककारादिक्रमानंगी-कृतावियमपि संख्या विप्लुता स्यादित्यलं प्रपंचेन । प्रकृतमनुसरा-मः । ककारादय ऋकारादि मात्राचतुष्कं विहाय परिशिष्टद्वादशा-कारादिमात्रासंय्योगेन द्वादशधा भवंति तांश्च मुनिवर्य्यसौभरिप्र-णीतार्थयुतानधुना वर्णयामः ॥ तथा हि।

क का कि की कु कू के कै को कौ कं कः ॥ १ ॥

को ब्रह्मा का महादुर्गा, किः सुग्रीवो रमापतिः ॥ आखंडलोऽथ सूर्य्योऽग्निर्व्याधः कैपुंक इत्यथपि ॥ १ ॥ कीर्गजस्तुरगो व्यालो जारो जीवः पिपीलिका । धरा रमा च द्विड्रुद्धः पुरुषः पाटलश्च गौः ॥ २ ॥ कुः पृथ्वी कुः कुचः कूलं कूः कृत्या भूरपि ग्रहिः ॥ केः प्राणोऽर्को मदः सारः क्लीबः कैः प्रणतः शुचिः ॥ ३ ॥ कोः कुक्कुरो जनः श्यावः पानशोकौ च कौर्नृपः ॥ कं शिरः कं

सुखं तोयं पयो दुःखं विषं भयम् ॥ ४ ॥ कः प्रयुक्तोऽपि हिंसायां गमने सांत इष्यते॥इह कःशब्दो रामकृष्णवत्।का च रमागंगावत्। किर्हरिरविवत् । कीर्वातप्रमीलक्ष्मीनदीवच्च । कुर्भानुमनुवत् । कूर्वधूवत् । केशब्दस्यतु केः कयौ कय इत्यादि स्वरादौ, हलादौ च केभ्यामित्यादि रूपं च ज्ञेयम्।संबुद्धौ तु हे के इति । एदोतश्चापि धेलोंपविधानात् । कैस्तु कैः कायौ कायः कैभ्यां कैषु हे कैः। कोशब्दस्य तु कौः कावौ कावः काम् कावौ काः कोभ्यामग्रे गोशब्दवत् । कौस्तु ग्लौवत्साध्यः।कम् के कानीत्यादि।केचित्तु अनुस्वारं मरूपं मत्वा कम् कमौ कंभ्यां कंसु हे कमित्थं रूपाणि मन्यन्ते, कश्शशब्दमपि विसर्गान्तत्वेन सांतं मन्यन्ते च।तथा च कः कसौ कोभ्यां कस्सु हे क इत्येवं रूपाणि ज्ञेयानि।इत्थमेव खादिक्षान्तानां रूपाणि ज्ञेयानि। कादिपंक्तेरर्थस्तु। को ब्रह्मा तस्य का मही उत्पत्तिस्थानं कमलं तस्य किः कर्षको कीनाश इव नाशको हिमर्तुस्तस्य कीर्दिंडू वह्निस्तस्य कुरुत्पत्तिस्थानं वायुः।'वायोरग्निः' इति श्रुतेः।तस्मात्कूरुद्भवो यस्य भीमसेनस्य हनुमतो वा तस्य केर्बलं तेन कैः प्रणतः कातरपुरुषस्तस्य कोः शोकस्तस्य कौर्वृषः वर्षयिता वीरस्तस्य कं सुखं येन स जयस्तस्य को गमनं यत्र स विष्णुः। ककाकिकीकुकूकेकैकोकौकंकः।नोऽवत्विति शेषः।यद्वा को ब्रह्मा का दुर्गा किरग्निः कीर्जीवो गुरुः कुर्भूः कूः प्रहिः शेषः केऽर्कः कैः शुचिः संतुष्टविप्रः ' संतोषी ब्राह्मणः शुचिः ' इति चाणक्यात् । कोः श्यावस्तद्युक्त्वात्सूर्यः ' आकृष्णेन रजसा ' इतिश्रुतेः कौर्वृषो धर्मः कं तोयं तच्च गांगमेव तस्य गमनं यस्मिन्यस्माद्वा स विष्णुश्शंकरो वा एष समूहो नोऽव्त्विति पूर्ववत् । एवमन्यवर्णपंक्तेरप्यर्थकल्पना ज्ञेयेति कोशब्दात्कोरित्यस्य भेदज्ञापनायौत्वमकृतमार्षत्वाद्वेति सर्वत्र ध्येयम् ॥ अथ खाद्यर्थमाह ।

## खखाखिखीखुखूखेखैखोखौखंखः ॥ २ ॥

खः सूर्यो विवरोवश्च खो मा क्ष्मा कमला च गीः ॥५॥ खिः कामः खीर्गुदो धाता खुर्वह्निः खूर्बृहस्पतिः ॥ खेः प्राणः खैर्भवो भ्राता पुत्रः खोःखञ्ज इष्यते ॥ ६ ॥ खौः सुरेशोऽग्निरीशोऽर्कः खं व्योम च खमिंद्रियम् ॥ खः प्रागुक्तोऽपि खनने खंडनेऽतीतकालके ॥ ७ ॥ अथ गपङ्क्तिः।

## गगागिगीगुगूगेगैगोगौगंगः ॥ ३ ॥

गो गणेशे तथा प्रीतौ भवः श्रीपतिरुत्तमः ॥ गा क्ष्मा गा च रमा गिर्धीः श्रीमानप्यंबुधिः पुमान् ॥ ८ ॥ गीर्वाणी गीः सुरा पत्नी सुधा गुः प्राण आसवः ॥ गुः कांतिर्मदनो भीरुर्गूश्च सेतुः सखा रविः ॥९॥ गुरुः पुरीपं गूः श्वादो गेः पापी जनवंचकः॥गैः पलाशोऽथ शोकोऽग्निः सूर्यो गोर्द्विपदः करी ॥ १० ॥ गौर्वज्रं गौः प्रभा भूमिर्वाणी तोयं त्रिविष्टपम् ॥ धेनुर्वत्सो वृषो दिग्गौर्नेत्रं लज्जा गुरू रमा ॥ ११ ॥ इंद्रियं श्रीरुमा गं च वादित्रं शरणं वरम् ॥ गः प्रागुक्तोऽपि गहने गमने गर्जने तथा ॥ १२ ॥ अथ घकारपङ्क्तिः।

## घंघाघिघीघुघूघेघैघोघौघंघः ॥ ४ ॥

घः सूनुर्घो घटो मेघो वह्निः पूषा नृपो गजः। घा रम्या च शची दुर्गा भूमिर्घिर्घृतघर्मकौ ॥ १३ ॥ घीः कुमारोऽमराचार्योघुर्मूढो करुणःफणी ॥ घूर्भूमिर्घूस्सुराधीशो गुदः संकर्षणोऽमलः ॥ १४ ॥ घेः शंखः कुक्कुरः कालो घैः सूर्य्यः सरमासुतः ॥ घोर्घोपो घौः सुरावासः पाप्मा घं पापघंटयोः ॥१५॥ घः प्रागुक्तोपि घटने घस्मरे घनगर्जने। अथ ङकारपङ्क्तिः।

## ङङाङिङीङुङूङेङैङोङौङंङः ॥ ५ ॥

ङः प्राणस्तुरगोऽनासो बालको ङा धरा रमा ॥ १६ ॥ ङि-

बीभत्सुर्मृगः सूक्ष्मो ङीर्भूपः कृकलाशयः ॥ ङुःसूकरोऽथ ङूर्व्याघ्रो ङेः सूतो ङैः पराशरः ॥ १७ ॥ ङोश्च सिंहोऽथ ङौः शूर्पोऽरुणोवह्निमुखो रविः ॥ ङं घंटा वरुणस्तोयं शब्दानुकरणं तथा ॥ १८ ॥ ङः प्रागुक्तोऽपि हरणे हनने च निषेधने ॥

## चचाचिचीचुचूचेचैचोचौचंचः ॥ ६ ॥

अथ चकारपंक्त्यर्थमाह । चश्चौरे वासवे चंद्रे चंदने चलनेऽपि च ॥ १९ ॥ चा कद्रूरदितिः कन्या चिः पूषा माप एवच ॥ चीर्नेऽपिदंन्तिपत्नी स्याचुः कीलालं पविः शरः ॥२०॥ भीरुश्चूर्मार्गणोपि स्यात्पक्षी भूमिजराह्रविः ॥ चेः कृष्णोऽर्कस्तुरापाट्च चैः सोमो विनतासुतः ॥२१॥ चोः पाखंडी च चौर्धेनुरनङ्गानाभिरुद्भवः॥ चं चरित्रं सुखं दुःखं कश्मलं कमलं पयः ॥ चः प्रागुक्तोऽपि चपलश्चटकश्चतुराननः ॥ २२ ॥

## छछाछिछीछुछूछेछैछोछौछंछः ॥ ७ ॥

अथ छादेः।छस्सोमश्छलिकश्छत्रश्छा रुद्रश्छिःकुलालकः॥छीर्विष्णुश्छुः शुकश्छूर्भूश्छेः पाशी छैः सुरालयः॥२३॥ छोः पूर्णोऽलंकृतो वायुश्छौः समीरस्तरुर्नगः॥ छमंचिर्भूतलं स्वः स्यात्कूलं कूटं सुखं कुलम् ॥२४॥ छः प्रागुक्तोऽपि च्छदनश्छटाकारश्छविर्युतः ॥

## जजाजिजीजुजूजेजैजोजौजंजः ॥ ८ ॥

अथ जादेः।जो जनो जनको राजा जा योनिर्जिः सदाशिवः॥२५॥ जीर्जिष्णुः करुणो यूका जुर्विष्णुर्जूः कुलालकः॥जेः शुनी जोऽथ जैः पूषा वह्निर्जोः कमलासनः॥२६॥जौर्जारजो युवा जं च जातं रजतमेव च ॥ जःप्रागुक्तोऽपि जल्पाको जपनिष्ठो जयेच्छुकः ॥ २७ ॥

## झझाझिझीझुझूझेझैझोझौझंझः ॥ ९ ॥

अथ झादेः।झो हस्तो झकटो झल्लो झा योनिर्झिः कला कपिः॥ झीः करी झुर्भृगुर्भूश्च ध्रुवः संघोऽमरोरगौ ॥ २८ ॥ झेश्चमंकुन्दवः सोमो रोमरामोऽथ झैर्गुरुः ॥ झोः कर्णो झौः स्मृतो नाको झं मैथुनमिति स्मृतम् ॥ २९ ॥ झः प्रागुक्तोऽपि शीघ्रार्थे झंझावाते च दुर्दिने ॥

## ञञाञिञीञुञूञेञैञोञौञंञः ॥ १० ॥

अथञादेः।ञस्तु नासिकया भाषी वह्निरूपो भयानकः ॥ ३० ॥ स्वरभेदकरोगश्च ञा जरा राशिरेव च ॥ ञिः सम्राड्ज्ञानवृद्धोऽग्निर्ञीःपाखंडी सुराप्रियः ॥३१॥ ञुः सुनेत्रो ञूः सुवासा ञेः कार्तस्वरसन्निभः॥ञैः कृष्णा ञोः पलाशः स्याञ्ञौर्गौः पाखंडवाक् करी ॥ ३२ ॥ पूर्वो ध्रुवा च ञं सर्पिः परं ब्रह्म निगद्यते। ञः प्रागुक्तोऽपि सुभगो बालको मृदुभाषकः ॥ ३३ ॥

## टटाटिटीटुटूटेटैटोटौटंटः ॥ ११ ॥

अथ टकारपंक्तेः। टष्टंकष्टंकणं प्लीहा मूत्रकृच्छ्रोऽथ पिप्पलः। टा शूर्पणिः करेणुर्भूः सरमा टीर्धराधरः ॥ ३४ ॥ टुः कंकणोऽथ चूडः स्याट्टूर्ननांदा स्वसा च भीः ॥ टेः काणष्टैर्द्विडन्धः स्याट्टैः प्रेतो नभसी हयः ॥ ३५ ॥ टोः परेतो गुरुः शिष्यष्टौर्विनीतो दवो धूपः ॥ टं नेत्रं श्रवणं पात्रं भ्रमणं मरणं तथा ॥३६ ॥ टः प्रागुक्तोपि दुःशब्दो घंटाशब्दश्च भण्यते ॥

## ठठाठिठीठुठूठेठैठोठौठंठः ॥ १२ ॥

अथ ठादेः। ठो ध्वंसो नंदनश्चैव ज्ञानी मध्वरिरेवच ॥ ३७ ॥ वाचालः शून्य आसास्था शून्या मासिकेत्यपि ॥ ठिः कुमारोऽमरारातिर्ष्ठीकुटुंब्यथ पुत्रवान् ॥ ३८ ॥ ठुःकदंबो यमस्त्वष्टा ठूः प्रजा धृतिरेव च॥ठेःसमासोऽपि ठैर्व्यासष्ठोः समष्ठौश्च गौतमः॥३९॥

ठं ज्ञानं विवरं शून्यममृतं शारदं पयः ॥ ठः प्रागुक्तोऽपि गोप्यो गिरग्निशस्त्रध्वनिस्तथा ॥ ४० ॥

## डडाडिडीडुडूडेडैडोडौडंडः ॥ १३ ॥

अथ डादेः। डः पूज्यो बहुमूल्योऽर्थो डा क्ष्मा च सरमा रमा॥ डिर्गौरी डीः शिवा धात्री डुश्चंद्रो डूः कलापवान्॥४१॥ डेर्दमो डैर्नृपः कर्णो डोः पापी पुरुपादकः ॥ डौर्धेनुश्च करो जारो डं च नेत्रं पयस्तथा ॥४२॥ डः प्रागुक्तोऽपि डयने भये चैव भयानके ॥

## ढढाढिढीढुढूढेढैढोढौढंढः ॥ १४ ॥

अथ ढादेः । ढो ढक्का रासभश्चैव श्वादमार्जारकुक्कुराः ॥ ४३ ॥ ढा नाभिर्ढिर्गुदो मेढ्रो ढीर्धूमो वह्निरुत्कटः ॥ ढुः कूर्मः सूकरो व्यालो ढूः कुचे ढेः कुरंगजः ॥ ४४ ॥ ढैर्मारो ढोः सुखी वर्पो ढौर्भूमिर्ढं पयोधरम् ॥ ढः प्रागुक्तोऽपि गमनी रमणी रमणोत्सुकः ॥ ४५ ॥

## णणाणिणीणुणूणेणैणोणौणंणः ॥ १५ ॥

अथ णादेः । णो मत्स्यो बहुविस्तारो णो निषेधावधिर्विधिः ॥ णो नक्रो णा सदाव्याधिर्णा नाभिर्णिर्वृकोदरः ॥ ४६ ॥ णीः स्वर्गो णुः करेणुर्भूर्णूः कालिन्दी जराजरा ॥ णेर्मार्जारो विडंगश्च णैः शृगाली हरीतकी ॥४७ ॥ णोः सर्षपोऽथ णौर्माया णं दर्शनमितीरितम् ॥ णः प्रागुक्तोऽपि संशोषी नमस्कारोनमस्कृतः ॥ ४८ ॥

## ततातितीतुतूतेतैतोतौतंतः ॥ १६ ॥

अथ तादेः । तः सुवेशोऽथ ता मारी तिर्मेपः कापिलोरुणः ॥ तीर्ज्ञानी तस्करस्तैलं तृष्णा च तुरुमेश्वरः ॥ ४९ ॥ तूर्म्लेच्छस्तेः करी नक्रस्तैः कृष्णाभीरथ प्रभूः ॥ तोः सूर्यो विघ्नकृत्स्वामी तौः स्वर्गो भूस्तथागरः ॥ ५० ॥ आचार्यो यजमानश्च तं तूर्णं जलमेव च ॥ तः प्रागुक्तोपि तश्चौरस्तनुदेहस्तमालकः ॥ ५१ ॥

## थथाथिथीथुथूथेथैथोथौथंथः ॥ १७ ॥

अथ थादेः । थः स्थायी ठक्कुरः सूर्यो गणेशो विनतासुतः ॥ था धरित्री प्रभा गंगा थिर्गोदा यमुना तथा ॥ ५२ ॥ थीः समुद्रो व्रणो रेवा थुःसाक्षी थूः पराशरः॥ थेर्व्यासस्थैः शुकः प्रोक्तस्थोर्धर्मो गाधिपुत्रकः ॥५३॥ थौः शंखस्थं विषं कर्म बहुलं सूक्ष्ममेवच ॥ थः प्रागुक्तोऽपि स्तंभः स्यात्स्थाणुदेवस्तदाश्रयः ॥ ५४ ॥

## ददादिदीदुदूदेदैदोदौदंदः ॥ १८ ॥

अथ दादेः । दः पाता खंडिता दाता दा दात्री धरिणी शुभा ॥ दिर्दीनो दीः सुधानाथो दुर्दरिद्री करो वरः ॥ ५५॥ दूर्दुःखी देः स्मृता जाया दैर्मत्स्यो वामनप्रभः ॥ दोर्हस्तश्चरणः शिश्नो दौः स्वर्गः प्राण आत्मजः ॥ ५६ ॥ दं दानं शरणं कर्म भव्यं न्यून मकिल्बिषम्॥दः प्रागुक्तोऽपि दध्याब्धो दमी दानी दयापरः ॥५७॥

## धधाधिधीधुधूधेधैधोधौधंधः ॥ १९ ॥

अथ धादेः । धो धर्मी धनवान्धन्यो धाता विष्णुर्विनायकः॥ धा धरित्री रमा गौरी धिर्धर्मो धीर्वृकोऽसुरः ॥ ५८ ॥ धुः सूनुर्धूः करो भारो धेर्वृक्षो धैश्च रावणः ॥ धोः पापी वृषणः पूषा धौर्धर्मः पृथिवी गिरा ॥ ५९ ॥ धं धनं धूननं दानं धारणं करणं सुरम् ॥ धः प्रागुक्तोऽथ धम्मिल्ले वंधो धन्वंतरिर्मृगः ॥६०॥

## ननानिनीनुनूनेनैनोनौनंनः ॥ २० ॥

अथ नादेः । नो नाट्यज्ञो नलो नम्रो भावो नस्यो नरांतकः ॥ नरनारीसमूहेऽपि ना पुमान् गरिमा तथा ॥ ६१ ॥ निर्दुर्गतिश्च नी रागो नुर्हस्तो नूः कलत्रवान् ॥ नेः समो नैः कुरंगो गिरास्तिर्मातार्थ शोभनः ॥ ६२ ॥ नोर्निषेधः सलो भूमिर्नौस्तरिः

पुरुषोमरः ॥ नं नेत्रमंजनं श्रोत्रं करणं कारणं सुखम् ॥६३ ॥ नः प्रागुक्तोऽथ नो नीचो नरवेषधरोऽपरः ॥

## पपापिपीपुपूपेपैपोपौपंपः ॥ २१ ॥

अथ पादेः । पः पापी पालको गंता पूपा वृषण आत्मजः॥६४॥ पाऽपर्णा पिः पवित्रोऽग्निःपी स्मृतार्थे पिपीलिका ॥ पुः पुत्रः पूः पुरं देहः पेः पेशी पैश्च गालवः ॥६५॥ पोः पौत्रः पौः पुमान्भूमिः पं प्रमाणमृणं पयः ॥ पः प्रागुक्तोऽपि पो विष्णुर्नृपो माता पिता गुरुः ॥ ६६ ॥

## फफाफिफीफुफूफेफैफोफौफंफः॥ २२ ॥

अथ फादेः । फः फणी फलदो वृक्षो फल्गुः फो माघ ईरितः ॥ फा फालिका च फा जालं फा फूत्कारवती विषा ॥ ६७ ॥ फिः शब्दो विबुधे प्रोक्तः फीर्वायुःकरणोऽनलः॥फुः कार्त्तिकोऽथ फूः सर्पो वासवः शरणागतः ॥ ६८ ॥ फेः फाल्गुनोऽथ फैः शंखः फोः कालः फौः फणीश्वरः॥गर्गो द्रोणो रणःप्राणः फं फल्गु चारु वा स्मृतम्॥६९॥ फः प्रागुक्तो भाष्यकर्त्ता–

## ववाविवीवुवूवेवैवोवौवंवः॥ २३ ॥

अथ वादेः । वो विंनो वा च नर्मदा ॥ विःपूर्णो वीर्विंदुः पादो वुर्भयं शरणं हरिः ॥ ७० ॥ वूः क्लेशः कपिला धेनुर्वेः साक्षी वैः कणो रणः॥ वोः प्राणो वौःसरिद्गंगा यमुना वं वलं स्मृतम् ॥ ७१॥ वः प्रागुक्तोऽपि वलवान्नार्दिर्दैत्येश्वरो वटः ॥

## भभाभिभीभुभूभेभैभोभौभंभः ॥ २४ ॥

अथ भादेः।भो भयानक इत्यभो भटः सोमो भयातुरः॥७२॥भा दीप्तिः प्रतिभा वाणी कान्तिश्शाला सशुक्रजा ॥ भिःपक्षी भीश्च

भीतिस्स्याद्भुर्भुजंगोऽथ भूर्मही ॥ ७३ ॥ जाताजातश्च भेः कांतिर्भै-र्ब्रह्मा वरुणो यमः ॥ भैः प्रहारोऽथ भीरुः स्याद्भोः कंसो भौ रमापतिः ॥ ७४ ॥ भं नक्षत्रं भयं ब्रह्म भरणं धरणं यमः ॥ भः प्रागुक्तो भराक्रांतो भवभीतो भवानुगः ॥ ७५ ॥

## ममामिमीमुमूमेमैमोमौमंमः ॥ २५ ॥

अथ मादेः । मो महेशोऽथ मः स्तोमः सोमो रामो रणो गजः ॥ मा जालंध्री व्यथा लक्ष्मीर्माता मा मास ईरितः ॥ ७६ ॥ मिः कर्णो मीर्मेदामाहुर्मुर्माता मूर्महाबलः ॥ मेः सारंगोऽथ मैः पूषा सारथिः प्रणतोवरः ॥ ७७ ॥ मोः पत्नी मौः सुराबासो मंगलं म-लिनं पलम् ॥ मः प्रागुक्तोऽपि मतिमान्मणिवेधकरः पुमान् ॥ ७८ ॥

## ययायियीयुयूयेयैयोयौयंयः ॥ २६ ॥

अथ यादेः । यो यज्ञश्चैव यस्तोयं सुदेवीसूनुरीश्वरः ॥ या योनि-र्यिश्च संग्रामो यीर्गजः सारविद्रुमः ॥ ७९ ॥ युः सर्पोयूः स्मृता यूका येः सार्थो यैश्च वासवः ॥ योर्यादो यौः कणः स्वर्गो यं यतः करणं मधु ॥ ८० ॥ यः प्रागुक्तोऽपि यमराड् यमी यमलजः पुमान् ॥

## ररारिरीरुरूरेरैरोरौरंरः ॥ २७ ॥

अथ रादेः ॥ रो रमेशोऽथ रः कामो वह्निः सूर्योऽथ तोयधिः ॥ ८१ ॥ रा लक्ष्मी राः समृद्धिः स्याद्रिः कर्पूरो महेश्वरः ॥ रीः कामी नृगपत्नी री रुर्मृगो रूः प्रजापतिः ॥ ८२ ॥ रेः खेदो नीचसंबुद्धी रैः कृष्णो वर्ण उच्यते । रोः शेषो रौर्भवः स्वर्गो रं रत्नं रोधनं धनम् ॥ ८३ ॥ रः प्रागुक्तोऽपि रक्ताङ्गो रजनीपतिरेव च ॥

## ललालिलीलुलूलेलैलोलौलंलः ॥ २८ ॥

अथ लादेः ॥ लश्चोरो लवणाधीशो लवको लक्ष्मणस्तथा ॥ ८४ ॥

ला शोभा ला च ललना दात्री रात्री वसुंधरा ॥ लिः सर्पो ली धरा लुर्भूर्लू रुद्रो गरुडोऽरुणः ॥ ८५ ॥ लेर्लैरष्टो लैः कुशो रामो लोर्मे स्त्यो लौःप्रजापतिः ॥ लं लक्षणं सुखं नाम रक्षः श्रोत्रं वचो विषम् ॥ ८६ ॥ लः प्रागुक्तोऽपि लगुडो ललामाल्यश्च लोलुपः॥

## ववाविवीवुवूवेवैवोवौवंवः ॥ २९ ॥

अथ वादेः । वो ग्रामो वातकी वालो वारुणीपानतत्परः॥८७॥ वनसेव्यथ वः पंगुर्वा सखी त्रिदशप्रसूः ॥ विः पक्षी गरुडः सूर्य्यो जलधिः सोम उच्यते ॥ ८८ ॥ वीर्विष्णुर्वुःपदातिः स्याद्वूः संयोगज उच्यते ॥ वेः पारिजातो वैः सारो वोः कालो वौः सुखावहः ॥ ८९ ॥ वं सुरं वसनं रक्तं वपुर्वचनमासुरम् ॥ वः प्रागुक्तोऽपि वधिरो वणिक्पुंजो वनालयः ॥ ९० ॥

## शशाशिशीशुशूशेशैशोशौशंशः ॥ ३० ॥

अथशादेः । शःशरण्यश्शवः शंभुः शा गौरी कमलालया॥शिः पक्षी शीश्च सौभाग्यं शिशुः शुः शीकरो बलः॥९१॥ शूः शूद्रः शेः शिरीषोऽगः शैः स्मृतो धुंधुहा नृपः ॥ शोर्दोषः शौः शिशुः शंखः शं सुखं शरणं वपुः ॥ ९४ ॥ शः प्रागुक्तोऽपि शमकः शमी शांत-जनालयः ॥

## पपापिपीपुपूपेपैपोपौपंपः ॥३१॥

अथ पादेः । पो वालः पादहीनो ना वह्निः सूर्यो रणः कणः ॥ ९३ ॥ परिखा पा खरी पा वा पिः शंखो वर्तुलः स्मृतः ॥ पीः पुत्रः पुः खुरः प्रोक्तः पूः सोमो म्लेच्छ एव च॥ ९४ ॥ पेः सार्थः पैः स्वरः पारः पोर्देहो मलिनो जनः ॥ पौः खड्गा धरणी बुद्धिः पं सस्यं मधु धारणम् ॥ ९५ ॥ पः प्रागुक्तोऽपि स्वापोऽथ गतिशीलो गवीश्वरः ॥

## ससासिसीसुसूसेसैसोसौसंसः ॥ ३२ ॥

अथ सादेः । सस्सर्वजनपाता च सर्वज्ञः सुलभो रविः ॥ ॥ ९६ ॥ सा साक्षिणी च साटी च सा सीता सिस्सखामरः ॥ सीः सुखी सुः कुठारोऽर्कः सूर्धरा गर्भिणी तरी ॥ ९७ ॥ सेः करः सैः शुकः श्वादः सोः सोमः सौः सहोदरः ॥ सं सुखं चरणोपांतं मुख्यं श्रेष्ठं समेतरम् ॥ ९८ ॥ सः प्रागुक्तोऽपि संतानी सर्वमान्यः सहोदरः ॥

## हहाहिहीहुहूहेहैहोहौहंहः ॥ ३३ ॥

अथ हादेः । हो हरिर्हरिणो हर्पो हिरण्याक्षोऽथ तस्करः ॥९९॥ हा गंधर्वश्च हिः सर्पो हीर्नरो हर्षवान्मृगः ॥ हुः स्मृतो नहुषो राजा हूर्विप्रो हेः प्रसादकृत् ॥ २ ॥ हैर्हंसो होश्च संबुद्धो हौर्विरञ्चिः षडाननः ॥ हं चौर्यं हरणं पूर्णं भासुरं भरणं भरम् ॥ १ ॥ हः प्रागुक्तोऽथ पंचास्यो हनुमानंगदस्तथा ॥ ळं तु ज्ञेयं परं ब्रह्म वाङ्मनोगोचरं सुखम् ॥ २ ॥

## क्षक्षाक्षिक्षीक्षुक्षूक्षेक्षैक्षोक्षौक्षंक्षः ॥ ३४ ॥

अथ क्षादेः । क्षःक्षांतः क्षा मही सीता क्षिर्ज्योतिः क्षीर्हुताशनः ॥ क्षुः क्षुद्रो वासवो वार्कः क्षूः पापिष्ठः प्रणाशनः॥३॥क्षेः कर्पुकोथ क्षैर्मूर्खो जारः क्षोः क्षुरको व्रणः ॥ क्षौः खंजो धरणीधर्ता क्षं क्षेत्रं क्षं पयो मधु ॥ ४ ॥ क्षः प्रागुक्तोऽपि क्षत्रेशः क्षमी क्षयहरो हरिः ॥ ५ ॥

मालेयं मातृकावर्णैः कृता सौभरिणा पुरा ॥ विस्तृतांगिरसा भूमौ विद्वच्चेतःप्रसादनी ॥ अनेकार्थप्रदा पुंसां काव्योत्साहवतां सदा ॥ ८ ॥

अत्र लस्य द्विःकथनं मतांतरेणैव ज्ञेयम्। यद्यपि क्षकारस्य द्व्यक्षरादिप्रकरणे कथनमुचितं तथापि क्षकारेतरद्व्यक्षराणां मातृकानन्तर्भावबोधनायेहैव न्याय्यमिति ध्येयं मनीषिभिरिति। किञ्चैषां कादिशब्दानां क्रियायोगेन प्रत्येकं कारकत्वमप्यत्रानुसंध्येयम्। तथाहि। कस्तिष्ठति कौ हरिं पश्यतः। का गच्छंति वृंदावनम्॥ कं पश्य कौवा कान्वा हेरामेति श्रीबलदेवं प्रति श्रीकृष्णोक्तिः। केन काभ्यां कैर्वा धनुर्भिन्नम्। काय काभ्यां केभ्यो वा कन्या देया। कात्काभ्यां केभ्यो वा धनं नेयम्। कस्य कयोः कानां वेदं सरः। के कयोः केषु वा सद्बुद्धिः कार्येति॥१॥ एवं का गच्छाति के तिष्ठतः का नमंतीति टाबन्तवद्रूपं सर्वं नेयम्। तथा किंरायाति श्रीरामं नेतुमेतद्रूपाणि हरिवद्ध्येयानि कीर्गच्छति। क्यौ स्थितौ। क्यः सुंदराः। कीं पश्य। बहुत्वे कीन्पश्य। क्या सहाश्वो गच्छति। क्ये कीभ्यां कीभ्यो वा माला देहीति। क्यः कीभ्यां वा सृणिं गृहाण। क्यः क्योः कीनां वा स्थानमिदम्। की क्योः कीषु वा महामात्रास्तिष्ठति। कुवेराहेणोद्भ्रे। कूशोभने स्तः। क्वो व्रजस्था रम्यास्संतीति भानुवद्रूपम्॥ क्रूःश्वक्रेण वारिता क्रौ क्रो वा। चतुर्थ्यां क्रे पंचम्यां क्राः पष्ठ्यां क्राः क्रोः क्रूनां वा फलं हरिभक्ते सुधा क्रामिति क्रो तत्र न भयं हरिसेविनामिति। एवं केरुदयते कयौ कयो वा पश्य कया केभ्यां केभिस्तमांसि हतानि। कये केभ्यो चाऽर्घो देयः। कयः काभ्यां केभ्यो वा तिमिरनाशो दृष्टः। कयः कयोः कयां वा तेजो दुःसहम्। कयि केषु रोगप्रतावित्रंभो विदुषाम्। एवं कैः शुचिर्विप्रास्तिष्ठति कायौ कायो वा कायं कायौ कायो वाऽऽनमत। काया केभ्यां केभिरिदं पावितम्। काये धनं देहि। कायः शास्त्रं पठेत्। कायः कायोः कायां वाऽवहेलनं न कार्यम्। कायि केषु वा सत्यमस्ति। एवं कोः शोको विदुषा न कार्यः। कवे

१ सुग्रीवः। २ गजः। ३ भूः। ४ कृत्यांवरीपस्य। ५ रावेः।

कवो वा कवं कवौ कवो वा त्यज। कवा कोभ्यां कोभिर्वा न किञ्चि-त्साहाय्यं कर्तुं शक्यते विनांगकाठिर्यम्। कवे कोभ्यो वा स्वस्वांतं मादेहि। कवो धैर्य्यं मात्यज। कवः कवोः कवां वा स्वभाव एव धीमंदी-करणम्। कवि कोपु वा विवेकी न तिष्ठति। कौ नृप आयाति का-वौ कावो वा कावं पश्य कावा कौभ्यां कौभिर्वा मही धार्य्यते। कावि कौपु नाराहेणं कार्यम्। एवं कंजलं पिबति कमौ कमि वा द्वितीयायां पश्यतीति योज्यम्। कमा कंभ्यां कंभिरूष्मा ह्रियते। कमे पुष्पं देहि गच्छ। कमः कमोः कमां वोष्णतापाकरणमेव स्वभावः। कमि कंसु वा निजांगमलंमाक्षिप। अकारांतत्वपक्ष-स्तु कुलशब्दवन्नेयः। एवं का हिंसकः कंसः भागिनेयान्मारयामास कसौ कसो वा। द्वित्वबहुत्वप्रयोगः कल्पांतरीयतदभिप्रायको बो-ध्यः। कसं कृष्णो जघान कसौ कसो वेति पूर्ववज्ज्ञेयम्। कसा कोभ्यां कोभिर्वा कारायां देवकी नीयते। कसे कोभ्यो वा नारदो बोधितवान्। कसो मा बिभीहि मातारिति जन्मकालीनश्रीकृष्णो-क्तिर्देवकीं प्रति। कसः कसोः कसां वा केशान्कृष्ण आदत्त। कसि कस्सु धर्मो नास्तीति रीतिःखादिक्षान्तेषु वर्णेषु बोध्येति। अथ द्व्य-क्षरादिसंयोगवतामप्येषां सौभर्युक्तिमनुलक्षीकृत्यैव व्याख्यानं कुर्म-स्तत्रादौ पुंस्त्वादिचिह्निताँष्ठकाराद्याद्व्यवर्णान्ककारादीन्द्वादशक्रम विनिर्मुक्तानाह। क्तः कणः क्ता धरा क्तिर्धीः क्तुः पुत्रः क्तूर्हुताशनः॥ क्तौः कलापी स्मृतः क्तं तु वृत्तं साधुसमीरितम्॥ १॥ क्तः सिक्तो वरुणोपि क्तः क्ता दुर्गा मातृका गिरा॥ क्तिः सूर्यः क्तीः स्मृतो वह्निः क्तुः सूनुः सोम एव च ॥ २ ॥ क्तौर्लक्ष्मीः क्तं वरं ज्योतिः क्तः सिंहो हरिणो गजः॥ क्तोः सखी सरमा दुर्गा क्तिः कृष्णो वरुणो वरः॥ ३ ॥ क्तीः शिवः क्तुः सुतः स्नातः क्तुः शंखो गरुडो नरः॥ क्तः सुतो वरुणस्तारो वरः क्तौः सरमासुतः॥ ४॥ क्तं रिक्थं कथ-

नं दुःखं क्तो दैन्यं कर्ण उत्सवः ॥ क्ता रमोमा मही भित्तिः क्तिः
सूकर उरुक्रमः ॥ ५ ॥ क्तुः शिवोऽर्कोऽम्बुधिः शूद्रोऽमरः क्तूः पति-
रात्महा ॥ क्तं श्रोत्रं करणं क्लीबं क्यं कामः कमलाहितः ॥ ६ ॥
क्या रतिः कामपत्नी स्यात्क्यिः कामी क्यी रतीशवान् ॥ क्युर्वर्चः
क्यूः स्वभूः शंखः सूकरः क्योः कजालया ॥ ७ ॥ क्यं कर्म क्यः
पलाशाग्निरर्कः क्यो रेणुरुच्यते ॥ ख्यः खरोऽग्निः खरी ख्या स्यात्
ङ्यो मार्गः कमलासनः ॥ ८ ॥ ग्याऽधोनिष्टस्वनो वृको घ्या पत्नी
धरणी स्मृता॥च्यश्चयश्चातुरी च्या स्याच्छ्यो रागश्छ्या च भार-
ती ॥ ९ ॥ ज्यो जयो यजमानश्च ज्या जया सिंजिनी रमा ॥ झ्यो
नदोग्धा नदी प्रोक्ता झ्या कुवृष्टिर्धरासुता ॥ १० ॥ ढ्यो नारदोऽ-
नलो ढ्या यौढ्यौ दाडिमतरुः करः ॥ ढ्या रमा नर्मदा गंगा ढ्य
आढ्यः शिशुरुत्करः ॥ ११ ॥ ढ्या मही ण्यः स्मृतोऽग्रण्यः
शरण्यो ण्या नदी गिरा ॥ त्योऽत्यजः कमलानाथो गुरुस्त्या धरणी
नदी ॥ १२ ॥ द्यो नाथः स्यात्कथा द्योऽब्धिर्द्या दया' द्यौस्त्रिविष्ट-
पम् ॥ ध्योऽध्वे ध्याने ध्यश्च क्षुधा न्योनयोऽर्णव उज्ज्वलः ॥ १३ ॥
न्या नीतिर्नतिरुग्राणी प्यः पयः प्या कृपा रुचिः॥फ्यः फेनः फ्या
फणा ब्योऽर्को भ्य इभ्यो भ्योभयः पुमान्॥१४॥म्यो मयो यम ईशानो
म्या रमा सरमा क्षमा॥य्यो जय्यो विबुधाधीशो य्या शय्या ल्योऽनु-
पद्भुतः ॥ १५ ॥ ल्याऽहल्या नलिनी ज्योतिर्व्यः पक्षी च कूबरः ॥
व्यो वायुर्व्याल ईशानो व्या भव्या वडवा सुधा ॥ १६ ॥ श्यः
शय आशयो नारी श्या वश्या कृपारित्यपि॥ ष्यः प्रैष्यः ष्या सुरा
शुद्धा स्यः प्रशस्योऽमराधिपः ॥ १७ ॥ स्या कृपिर्दैवतं च ह्यो
हयो ह्या च तुरंगमी॥क्ष्या सर्वा जगदंबा च सर्वेशानी सुरेश्वरी॥१८॥
क्यं कार्यञ्च ख्यमाकाशं ग्यं गमं घ्यं तुरंगमः ॥ च्यं तोयं च्यं स्मृतं
याच्यं शौच्यं पैशाच्यमेव च ॥ १९ ॥ छ्यं ष्ठीव्यं ज्यं स्मृतं

याञ्यं स्मृतं झ्यं झपनाशनम् ॥ ट्यं स्फीतं ठ्यं स्मृतं शाठ्यं ड्यं जाड्यं ढ्यं धनं वनम् ॥२०॥ ण्यं नाय्यं त्यं स्मृतं नित्यं थ्यं तथ्यं द्यं सुखं चिरम् ॥ निंद्यं ध्यं त्वाध्यमित्युक्तं न्यं मान्यं नयनं वरम् ॥ २१ ॥ प्यं कुप्यं पात्रमित्युक्तं फ्यं पयो मरणं रजः ॥ ब्यं सुखं भ्यं भयं रुद्रं म्यं नाम्यं याम्यरम्यकम् ॥२२॥ य्यं कृतं न्याय्यमाधारं ल्यं प्रोक्तं निलयं बुधैः ॥ व्यं वियद्धनवस्त्रं स्याच्छ्यं स्वापे वश्य इत्यपि ॥ २३ ॥ ष्यं मुष्यं शिष्यमित्याहुः ष्यं वृष्यमृष्यमित्यपि ॥ स्यं सस्यं कांस्यमित्याहुर्ह्यं हस्तिवदनं गृहम् ॥ २४ ॥ क्ष्यं स्मरं क्षेत्रमुत्क्षारं क्ष्या पृथ्वी जगदीश्वरी ॥ क्वः कविः काव्यतातः स्यात्क्वा भूरिति निगद्यते ॥ २५ ॥ क्वं काव्यं कमलं क्वं स्याद् ग्वो गौर्गरुड उच्यते ॥ ग्वा धेनुर्ग्वं स्मृतं गुह्यं घ्वो घोपो घ्वा ऽरणिः स्मृता ॥ २६ ॥ घ्वं घुष्टं घर्षणं घासं छ्वश्छागश्छ्वा छविः स्मृता ॥ छ्वं स्वच्छपुच्छं गोमूत्रं ज्वो यवो ज्वा च चंचला ॥ २७ ॥ ज्वं जुष्टं झ्वः समुद्रः स्याज्झ्वा वसिष्ठवधूः स्मृता ॥ झ्वं दुग्धं दधि च प्रोक्तं ट्वोऽग्नी रामपिता मनुः ॥ २८ ॥ ट्वा खड्गा ट्वं स्मृतं पुष्टं ठ्वो वसिष्ठोथ विह्वलः ॥ ठ्वा चित्रामधुरा ठ्वं तु पुष्करं चाक्षमुच्यते ॥ २९ ॥ ड्वोभरद्वाजपुत्रः स्याद् ड्वाघंटाड्वं महोदरम् ॥ ढ्वो ढंढो[1] ढ्वा मनःक्षोभ्या ढ्वं पयो दधि चौदनम् ॥ ३० ॥ ण्वो नाथो जमदग्निः स्याण्ण्वा वाप्युज्जायिनी प्रभा ॥ ण्वं रूपमणु च प्रोक्तं त्वस्तुरंगो महेश्वरः ॥ ३१ ॥ त्वा स्वपत्नी च गौरी च त्वं तुल्यं मरणं तथा ॥ थ्वोद्धोऽक्षरोऽरुणस्थ्वा स्त्री थ्वं तु मैथुनमुच्यते ॥ ३२ ॥ द्वो दावो द्वा पुरी गंगा द्वं दूरं च दरंच यत् ॥ ध्वो धवोऽग्निर्वधो ध्वाऽध्वा धरा धारा वधूत्तमा ॥ ३३ ॥ ध्वं धन्यं धूननं ध्वस्तं न्वोऽहिर्बुध्नो धनी स्मृतः ॥ न्वा धन्या मातुली साभ्रा

[1] वाद्यभेदोऽन्नमिश्रितस्थूलतृणखंडश्च ढंढ उच्यते ।

ध्नं धनं साधनं वनम् ॥ ३४ ॥ प्वो वायुः प्वा स्मृता धूली प्वं पु-
ण्यं पठनं शिरः ॥ फ्वः फणी फ्वा फालिका स्यात्फ्वं फूत्का-
रेण चालनम् ॥ ३५ ॥ ब्वो ब्रह्मा गीष्पतिर्ब्वाऽभ्याँ ब्वं वाक्यं मधु-
विद्विपः ॥ भ्वो भवो भरतो ब्रह्मा भ्वा गौरी भ्वं निवेशनम्॥३६॥
म्वो वृक्षो म्वा धरा म्वं खं ब्रह्म पुस्तकमुच्यते ॥ य्वो यवो यवनो
यज्ञो य्वा योपिज्जवनोत्तमः ॥ ३७ ॥ यतनं यमनं य्वं तु रोदनं म-
र्दनं जगत् ॥ र्वोऽर्वा तु पवनो र्वाऽश्वी र्वं खर्वं पर्वं चर्वणम् ॥ ३८॥
ल्वो लवो रामपुत्रस्तु ल्वा लव्या ल्वं तु सूदनम् ॥ व्वो वायुर्व्वा
मही प्रोक्ता व्वं वलं वनितागृहम् ॥ ३९ ॥ शल्यं श्वं शरणं पत्रं मै-
थुनं गगनं गमम् ॥ श्वं प्रोक्तं शयने श्वः स्याच्छ्वः प्रातरशनो हयः
॥ ४० ॥ श्वा श्वा तु चंद्रमःपत्नी श्वो विडालोऽथ मारिपः ॥ ष्वं
परिष्वंजनं स्वप्नं गमनं परिवर्तनम् ॥४१॥ मीलनं मेलनं चाथ स्वः
स्वर्गः सुहृदित्यपि ॥ स्वो निजो भगवान्विष्णुर्भक्तो भासुर इत्य-
पि ॥४२॥स्वा स्वकीया च योपिच्च गौरी शक्तिः परेश्वरी ॥ स्वं गृहं
धनमायुष्यं पुण्यं पाप्मा पतिः सुखम् ॥ ४३ ॥ ह्वः प्रह्वः शतजिह्वः
स्याद् ह्वा जिह्वा तरुणी सरित् ॥ ह्वं वाहं गमनं क्ष्वेडा क्ष्वः क्षोदः
क्ष्वा सरिद्वरा ॥ ४४ ॥ क्ष्वं क्षीवं क्षरणं क्षीरं पालनं तारणं पितुः॥
स्नः सारः स्ना प्रथा श्रेष्ठा स्नं स्नानं मधु वारणम् ॥ ४५ ॥ घ्नो घनो
नाशको घ्नाब्धौ घ्नं जलं निबिडं च यत् ॥ म्नो मानो म्ना मरुत्तारा
म्नं मनो मरणं मधु ॥ ४६ ॥ क्लः कलः क्ला कला क्लं तु कलं कलन-
मुत्तमम् ॥ स्कः शुष्कः स्कंधशूरः स्यात्स्का स्कंदजननी सुरा ॥
॥ ४७ ॥ स्कं शुक्रं शरणं वित्तं वादित्रं गदनं सुखम् ॥ श्लः शलः
शलभः शुक्रः श्ला शलाका शिला तथा ॥ श्लं शुक्रं चूर्णमाधारं ग-
मनं शूलभृच्छिरः ॥ ४८ ॥ क्ष्लः शोकः क्षुद्रवदनः क्ष्ली क्षोण्यं
क्षौहिणी तथा ॥ क्ष्लं क्षुद्रं वस्तु मरणं भवनं शरणं वलम् ॥ ४९॥

ह्लं लक्ष्म ह्ला स्मृता गौरी ह्लो लोकस्तर्क इत्यपि ॥ ख्लः खलः ख्ला सरा क्षुद्रा योषित्कमललोचना ॥ ५० ॥ ग्लः शनीन्दुगुडा ग्ला वा ग्लं गलं गलनं सरित् ॥ घ्लोऽश्वो घ्ला जघनं घ्लं तु वृकणं सारथिपातनम् ॥ ५१ ॥ छ्लश्छलः शलकृच्छ्लोऽर्द्धा पुरी छ्ला तु शिवालयम् ॥ प्लः प्लवंगः प्लवः शूरः प्ला पाटी परमेश्वरी ॥ ५२ ॥ प्लं मांसं प्लवनं मध्ये पूरणं धरणीतलम् ॥ फ्लः फणीशः स्मृता फ्ला च फलिनी फलधारिणी ॥ ५३ ॥ फ्लं फलं बाणपूरं च वदनं सकलं वपुः ॥ ब्लं बलं ब्ला स्मृता रक्ता वरटी कंगुरित्यपि ॥ ५४ ॥ ब्लो बालोऽघासुरः कंसो ज्ञोऽध्वा मारो नलो यमः ॥ म्लं माल्यं मधुरं म्ला क्ष्मा ह्री देवेशोऽमरावती ॥ ५५ ॥ क्लः कल्पः कमलानाथो गरुडो हंससारथिः ॥ क्रः करः शरभो व्याघ्रो नाथः क्रा सुरभिर्मही ॥ ५६ ॥ क्रं खमिंद्रियमित्युक्तं ख्रो खरो रासभे खले ॥ ख्रा पूतना शूर्पणखा ताडका कैकयी क्षितिः ॥ ५७ ॥ ख्रं खड्गं दुष्टहृदयं मैथुनं मरणं तथा ॥ ग्रो गरो गद आसारो ग्रा राज्ञी त्रभ्रयोषितोः ॥ ५८ ॥ ग्रं गृहं ग्रहचक्रं खमाधारः शुक्रमेव च ॥ घ्रो घोपो मदनश्रूतो भगो ज्ञो यामिनीपतिः ॥ ५९ ॥ घ्रा घृणा सरमापुत्री घ्रं गृहं वदनं निजम् ॥ ङ्रो नरोऽशरणः शूरो ङ्रा मारणमिति स्मृतम् ॥ ६० ॥ ङ्रं गृहं रोदनं नासा मता हानिश्च कथ्यते ॥ च्रश्चरमश्रूः स्मरः श्लोकश्चूतश्चारण इत्यपि ॥ ६१ ॥ च्रा चंचुश्च चमूश्चाटु च्रं मैथुनकमग्रजम् ॥ छ्रो द्वेषी छुरिका खड्गस्तरुरंगणमार्गणः ॥ ६२ ॥ छ्रा विष्टा शुनकी वेश्या छ्रं नवं गमनं गृहम् ॥ ज्रो वृद्धो गमनेच्छोऽग्निर्ब्रह्मोमेशो रमापतिः ॥ ६३ ॥ जटायुश्च जरायुश्च जमदग्निर्जिनीपतिः ॥ ज्रा च जरा जंखा जारवत्सली षट्पदी घृणी ॥ ६४ ॥ ज्रं यज्ञान्त

१ भक्षणशीला ।

मजस्रं वा रजस्वलमुखं रजः॥ज्ञ्रो नदो जरठोदरौ ज्ञ्रा जरा हानिरी-
श्वरी॥ ६५ ॥ ज्ञ्रं जुष्टं भ्रमरैर्वुष्टं पुष्टं सुष्ठु गृहं कजम् ॥ ञ्श्रौरो
ञ्श्रा स्मृता नीतिर्गतिर्ञ्श्रं भगवन्मुखम् ॥ ६६ ॥ ट्रः पीठष्ट्रा स्मृता
पूषा ट्रं घोटकमुखं सरः॥ ट्रो मिष्टान्नं फलरसष्ट्रा टिट्टी भ्रमरी सुरा
॥ ६७ ॥ ठ्रं सुखं वाद्यजनितं पलितं हरितं जगत् ॥ ड्रो दंडो डम-
रुर्दक्षो ड्रुरगो ड्रः सुरोदकम् ॥ ६८॥ ड्रा टिट्टी मत्स्यगंधा स्या-
ज्झषपत्नी महोदरी ॥ ड्रं मद्यं मधुरं पुष्पं नर्मदाजलमंबुजम्॥६९॥
ढ्रः स्याद्धृष्टद्युम्नजातो विदुरो नर्मदाझषः ॥ ढ्रा गांधारी सती स्वाहा
स्वधाज्ञा सरयूरपि ॥ ७० ॥ ढ्रं फल्गुमरणं भ्रष्टं शुभ्रास्यं रूपं-
दिनीक्षमम् ॥ ण्रो नहुषोंवरं भीरुः कर्णो बीभत्सुरुद्भवः ॥ ७१ ॥
ण्रा नर्मदा च गोगोंदा गंगा द्रुपदजांबुजा ॥ ण्रं नाम ससुधं पात्रं
वाक्यं नारदभाषितम् ॥ ७२ ॥ त्रस्त्रिनेत्रोऽब्जजः पाता गरुत्मा-
न्मघवानपि ॥ त्रा गौरी नर्मदा पात्री तारणी सरमा तरी ॥ ७३ ॥
त्रं स्मृतं त्रुटितं घुष्टं जुष्टं पुष्टं परं पदम् ॥ गांधारीवदनं कर्णवचनं
द्रौपदीरितम् ॥ ७४ ॥ थ्रस्तीर्थवासकृत्पूतो जारः पुष्टोऽम्बिका-
त्मजः ॥ थ्रा स्थिताथ रमा राज्ञी रजनी रजकात्मजा ॥ ७५ ॥ थ्रं
तीर्थं सुखमायुक्तं मरणं मध्वरेर्मुखम्॥द्रो द्रोणो द्रोणसूनुः स्यात्काकः
काकसमो नरः ॥ ७६ ॥ भयकृद्भरतो राजा रंतिदेवो रमापतिः ॥
द्रा दरी सरमा क्षुद्रा द्रोणसूर्विदुरात्मजा ॥ ७७ ॥ द्रं भयं गमनं
क्षुद्रं क्षोदनं सरमा सुखम् ॥ सुतोढं सुखदं साम स्मरणं शरणं गुरुः
॥ ७८ ॥ ध्रो भूध्रो धारकः साक्षी धृष्टद्युम्नो धरात्मजः ॥ वृकोदरो
गदापाणिर्गणात्मा भ्रातृवत्सलः ॥ ७९ ॥ ध्रा धरा कुब्जाकूलमाप-
गा पथिकांबुगा ॥ ध्रं ध्रुवं धरणं धारा धरस्थानं च कूत्र-
रम् ॥ ८० ॥ न्रा नारी नर्मदा द्रुपा नखाग्रनरकोद्भवा ॥ पृथा पुष्टा
परेशानी परमानंददायिनी॥८१॥ न्रो नरो नरकोऽगारो नर्मदा नार्म-

दाह्वदः ॥ ग्रं गृहं नारकं गारं गरुडांगं गरोद्भवम्॥८२॥प्रा प्रकृष्टाम-
हादेवी महालक्ष्मी रजोद्भवा ॥ मधुरा मर्मसारो वा क्ष्मा क्षमा क्षाम-
नासिका ॥ ८३ ॥ प्रः प्रकृष्टोऽधकारातिर्मुरारातिः कंजोद्भवः ॥ का
मारातिर्ध्रुवोगस्त्योऽरुणोऽरुणपितामहः ॥ ८४ ॥ प्रं ब्रह्मगमने भूरि
भ्रमरांगं धरातलम् ॥ गंगातीरं पयःपेयं पाथः परसरं सरः॥८५॥ फ्रूं
फूत्कारः स्वनः फेनः स्फुरन्स्फ्रष्टांबरेचरः ॥ फ्रा वीरपत्नी कमला
खरी क्षारनदी सुरा ॥ ८६ ॥ फ्रं स्फुरद्वसनं जुष्टं पलं स्फुटनमुद्ध-
तम् ॥ प्राकृतं गमनं ध्वस्तं धूतं धरणमुच्यते ॥ ८७ ॥ ब्रो बृहस्प-
तिराचार्य्यो वटुर्वृद्धो वरावृतः ॥ वाष्कलो वहुदो वाजी वहुव्रीहिश्च
वुद्बुदः ॥८८॥ वालो वाणोऽबलो वद्धोऽस्पष्टोऽब्दो वधिरः स्मृतः॥ब्रा
वाला वधिरांऽस्पष्टा वह्निवद्धांऽबरेश्वरी ॥ ८९ ॥ ब्रं ब्रह्मबलमुच्छिष्टं
वधिरांगं तथा वरम्॥वहुलं वहुसारं च वधिरास्यं वटोर्मुखम्॥९०॥
भ्रो ब्रह्मा प्रकटो भारो भ्रमरो धूसरो धरः ॥ भ्रामको भासुरो भ्रष्टो
भीमसेनोऽभयः स्मृतः ॥ ९१ ॥ भ्रं भासुरं तथाऽभ्रं तु भ्रामकं
भरणं भयम् ॥ भ्रा भ्रष्टा ब्राह्मणी भावा हिडंवा धरिणी तथा॥९२॥
म्रो मरो मृत्युकृन्मर्त्यो मैथुनी माधवी बलः ॥ भ्रमरी भानवी मार-
मानिनी यामिनी शुनी॥ ९३ ॥ म्रं मैथुनं मृतांगं च मरणं मस्तकं
मधु ॥ य्रो यादवोऽर्जुनो जारो य्रा जराज्वरवाञ्जरा ॥ ९४ ॥ य्रं जुष्टं
भोजनभ्राजं जायमानं नरोद्भवम् ॥य्रिः कामिनी प्रिया जुष्टा परमा
पारगांवुधेः ॥ ९५ ॥ रकारद्वययोगाभावः शास्त्रादृष्टेः ॥ ल्रो लंडो
लालितोऽल्पांगो ल्रा साजा लालितांवुजा ॥ ९६ ॥ लालितं प्ला-
वितं ल्रं खं लालितं ललनासुखम्॥ व्रो वाराहो वरो वास्त्रो वाडवो
वासरोऽवुधिः ॥९७॥ व्रा श्रेष्ठा गिरिजा लक्ष्मी रत्नाकरगता तथा॥
व्रं तुलायोसुखं भीमं भासुरं श्रेष्ठमुच्यते ॥ ९८ ॥ श्रः शरश्शारदः
सारः शरण्यः सारथिः शिवः ॥ श्रा गौरी सरमा रामा रत्नाकरकृता

लया ॥ ९९ ॥ श्रं शरण्यं सतूणश्च तारुण्यं तादृशं शिवम् ॥ प्रः सुरेशो दितीशोऽर्कोऽरुणोऽर्णव उरुक्रमः॥१००॥प्रा गौरी सास्वत्पत्नी पारणा परमामरी॥प्रं प्रकृष्टारुणं काष्ठं कोमलेतरमुज्ज्वलम् ॥१॥ स्रः सरः सरमाभर्त्ता भक्तो भासुरभासुरः ॥ स्रा शिवा भवपत्नी च भक्ता ब्रह्मसुता तथा ॥ २ ॥ स्रं श्रेष्ठं सारदं वस्तु वचनं वरुणासनम् ॥ ह्नो हरो हरिणो हारो हरिर्हाहा हुहूर्हयः ॥ ३ ॥ ह्पों हंसोऽहरुद्दर्पो हासो हस्ती च नाहुषः ॥ ह्वा गौरी करिणी हंसी हस्तयुक्ता च हंसिनी ॥ ४ ॥ देवयानी च शर्मिष्ठा ह्वं तु चौर्य्यंचरो गरम्॥क्ष्रः क्षरः क्षरणः क्षारा क्षामा क्ष्रा च क्षराऽक्षरा॥५॥क्ष्मा लक्ष्मीः क्ष्रं क्षयि क्षारं क्षोदनं क्षरणं वरम् ॥ स्तः पुनः स्तिः सुरः शंखः सुता सारसयोपिता ॥ ६ ॥ स्ता प्रशस्ता [1]शंदा पक्षिपत्नी पाटलगौः स्मृता ॥ स्तुः सारः स्तूरथाचार्यौ लक्ष्यस्तूणोरणः स्मृतः ॥ ७ ॥ स्तं शस्त्रं शरणं राजगृहं गगनमुद्धतम् । ष्ट्रो भ्रष्टः शकटो व्रात्यो विप्रो वरुण आसवः ॥८॥ष्टुः सुष्ठु शरणं स्वेष्टं भास्वरं भक्तमेव च॥ ष्टिर्यष्टिर्विष्टिराविष्टिरावृत्तिर्वरुणांगना ॥ ९ ॥ ष्टी यष्टी सरमा भ्रष्टा भ्रामिका भ्रमिरासुरी ॥ ष्टा दुष्टा गृहिणी गाली सूर्यपत्नी जलालया ॥ ११० ॥ ष्टं श्रेष्ठमरणं साधुगदनं मदनं मधु ॥ ष्टः पंढो मुखरोऽगारोऽथासुरोऽसुरसत्तमः ॥ ११ ॥ गोविंदो गरुडो गंडोऽथारोगः संगरोऽमरः ॥ ष्ट्यः संघातस्तथास्त्यश्च क्ष्मो विष्णुः क्ष्मा धरा रमा॥१२॥क्ष्या हानिः क्ष्यो हरो विष्णुः ष्णः कृष्णः ष्णा कालिंदजा॥ ष्ण्यो दाता ष्ण्या रमा ष्ण्यं च गृहं तारापतिर्मुखम्॥१३॥श्र्यः शिवो ध्यो धराधीशः ल्ल्यः कल्यो ध्यो धनी हरिः ॥१४॥ पूर्वोक्ताक्षरसंयोगे द्वित्रिवेदेषु रूपके ॥ पूर्वोक्तेनैव विधिना कल्प्योऽर्थो विदुषां वरैः ॥ १५ ॥ आदावंते तथा मध्ये यो वर्णो यस्य नामनि ॥ तेन

---

१ तीक्ष्णा ।

तन्नाम विज्ञेयमित्येतत्सौभरेर्मतम् ॥ १६ ॥ यथा प्रशस्तमिति नामनि त्रयः प्रादयो वर्णाः संति तैर्नामकल्पना च ॥ प्रं प्रशस्तं शं प्रशस्तं स्तं प्रशस्तमितीरितम् ॥ एवं सर्वत्र बोद्धव्यमिति सौभरिणोदितम् ॥ १७ ॥ इत्येवं ग्रथिता मालाक्षरी सौभरिणा पुरा ॥यः पठेच्छृणुयाच्चेमां स शब्दार्णवपारगः ॥ ११८ ॥ यां चकार महर्षिशः सौभरिर्ज्ञानतोयाधिः ॥ अंगिरास्तत आश्रुत्य तां चकार त्रिलोकगाम् ॥ १९ ॥ वंशीधरो गुरूणां च सौभर्य्यंगिरसोस्तथा ॥ मोदाय विदुषां राधाकृष्णानुग्रहतोलिखत् ॥ १२० ॥ अस्य पाठाच्छ्रुतेश्चाथ सर्वशास्त्रश्रुतेः फलम् । एतन्मयं यतः सर्वं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥ २१ ॥ यो नित्यं मातृकामालां कंठस्थां कुरुते द्विजः ॥ तस्य कंठगता देवी सरस्वती वसेत्सदा ॥ १२२ ॥ अथ चैतस्माद्यथा श्रीभगवतो वर्णसमाम्नायाद्वेदाविर्भावो ब्रह्मादिद्वाराऽभूत्तं वर्णयामः । वेदाविर्भावस्तु पूर्वं श्रीमद्भागवतीयतृतीयैकादशद्वादशस्कंधोक्तरीत्या वर्णितोऽपि पुनरपि तं स्वरूपलक्षणतः स्मारयामः॥ तथाहि । 'यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ' इत्यादिश्रुतेर्नित्यासिद्धानेव वेदांस्तस्मै प्राहिणोत्प्रेपयामास स्वांतःस्थितान्वेदान्परमात्मा निजाचिन्त्यशक्त्या ब्रह्ममनसि प्रणवमातृकारूपेण सूक्ष्मानपि तन्मुखेभ्य ऋगादिस्थूलरूपेणैवोच्चारयामासेति । अतएवोक्तम् ' अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा । आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः' इति स्मृतेः। 'वाचा विरूपनित्यया' इति श्रुतेश्च वेदस्य नित्यत्वम् । यच्चोक्तम् 'ऋचः सामानि जज्ञिरे ' इति।तत्राप्याविर्भाव एव बोध्यो जनेः प्रादुर्भावार्थकत्वात् । ननु'शास्त्रयोनित्वात्' इति सूत्रस्य का गतिरिति चेत्तत्र योनिशब्दः प्रमाणार्थक एव 'तं त्वौपनिषदं पृच्छामि' इत्युपनिषद्वेद्यत्वमेव तदर्थ इति । किञ्च ' तस्यैतस्य महतो भू-

तस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद'इत्यादिश्रुतिरपि वेदस्योत्पत्तिं निराकरोति श्वासप्रश्वासादिवल्लीलयाविर्भावितवानिति। ननु लीलयाविर्भावकर्तृत्वेऽपि ब्रह्मोपादानता तस्य जातैव तथात्वे तस्य पौरुषेयत्वं कथं न भविष्यति। न च ब्रह्मकार्यत्वेऽपि तस्यपौरुषेयत्वं पुरुषमात्रजन्यत्वेऽपि पौरुषेयत्वे वर्णानां नित्यत्वेप्यानुपूर्वीविशेषस्य पुरुषजन्यत्वान्मीमांसकंमन्यस्यापि वेदाप्रामाण्यप्रसंगः। वर्णनित्यत्वमात्रेणैवापौरुषेयत्वव्यवस्थापने लौकिकवाक्यस्यापि तत्प्रसंगः। तस्मान्मानांतरेणार्थमुपलभ्य रचितत्वं पौरुषेयत्वं सापेक्षत्वलक्षणाप्रामाण्यप्रयोजकं। तच्च न वेदे वेदार्थस्य मानांतरागोचरत्वात्। इदमेव श्रुत्या निःश्वासदृष्टांतेन दर्शितम्। तथाहि निःश्वासः पुरुषाज्जायमानोऽपि न पुरुषचिकीर्षाजन्यस्सुषुप्तावपि तद्दर्शनात्। एवं वेदो ब्रह्मणो जायमानोऽपि न ब्रह्मचिकीर्षाजन्यो वेदार्थस्य वेदातिरिक्तमानाविषयत्वादित्यलम्। अस्यार्थस्य जन्माद्यस्येत्याद्यश्रीभागवतीयपद्यव्याख्याने बहुधा प्रपञ्चितत्वात्। अथाक्षरसमाम्नायत एव सर्वा आन्वीक्षिक्यादयोऽष्टादश विद्या अपि ब्रह्मद्वारा संभूतास्तदधस्ताद्विदुरं प्रति मैत्रेयोक्तरीत्या सूचिता अप्यधुना विशदीकुर्मः। तत्रर्ग्यजुःसामाथर्वभेदेन वेदाश्चत्वारः। शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गणम्। छंदसां लक्षणं चैव षडंगो वेद उच्यते इति। षट् पुराणानि न्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि चेति चत्वार्युपांगानि। अत्रैवोपपुराणानामंतर्भावः। वैशेषिकस्य न्यायनये वेदान्तस्य मीमांसायां महाभारतरामायणयोः सांख्यपातंजलपाशुपतवैष्णवादीनाञ्च धर्मशास्त्रे च मिलित्वा चतुर्दश विद्याः। तथोक्तं 'पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्यच चतुर्दश' इति। एता एव चतुर्भिरुपवेदैः सहिता अष्टादश विद्या भवंति। आयुर्वेदो

धनुर्वेदो गांधर्ववेदोर्थशास्त्रं च सर्वेषामास्तिकानामेतावन्ति हि धर्मप्रस्थानानि अन्येषामप्येकदेशिनामेष्वेवांतर्भावात् । ननु नास्तिकानामपि प्रस्थानानि संति तान्येष्वनंतर्भावात्पृथग्गणयितुमुचितानि । तथाहि शून्यवादेनैकं प्रस्थानं माध्यमिकानां क्षणिकविज्ञानवादेनापरं योगाचाराणां ज्ञानाकारानुमेयक्षणिकबाह्यार्थवादेनापरं सौत्रांतिकानां प्रत्यक्षक्षणिकबाह्यार्थवादेनापरं वैभाषिकाणामिति सौगतानां प्रस्थानचतुष्टयम् । तथा देहात्मवादेनैकं प्रस्थानं चार्वाकाणामेवं देहातिरिक्तदेहप्रमाणात्मवादेन द्वितीयं प्रस्थानं दिगंबराणामेवं मिलित्वा षट् प्रस्थानानि कस्मान्नोच्यंते। सत्यं वेदबाह्यत्वात्तेषां म्लेच्छादिप्रस्थानवत्परंपरयापि पुरुषार्थानुपयोगादुपेक्षणीयत्वमेव।इह च साक्षात्परंपरया वा । परमार्थोपयोगिनां वेदोपकरणानामेव प्रस्थानानां भेदो दर्शितः । अथ संक्षेपेणैषां प्रस्थानानां स्वरूपभेदहेतुः प्रयोजनभेद उच्यते बालानां व्युत्पत्तये। तत्र धर्मप्रतिपादकमपौरुषेयं वाक्यं वेदः सच मंत्रब्राह्मणात्मकः।'मंत्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्'इति तत्स्वरूपस्यान्यत्रोक्तेः। तत्र मंत्रा अनुष्ठानकारकभूतद्रव्यदेवताप्रकाशकास्तेपि त्रिविधा ऋग्यजुःसामभेदेन । तत्र पादबद्धगायत्र्यादिच्छंदोविशिष्टा ऋचः ' अग्निमीळे पुरोहितम् ' इत्यादिकास्ता एव गीतिविशिष्टाः सामानि । तदुभयविलक्षणानि यजूंषि अग्निदाग्नीन्विहरंत्वित्यादिसंबोधनरूपाणि । निगदमंत्रा अपि यजुरंतर्गता एव तदेवं निरूपिता मंत्राः । मंत्रव्याख्यानरूपं ब्राह्मणम् । ब्राह्मणमपि त्रिविधं विधिरूपमर्थवादरूपं तदुभयविलक्षणं च।तत्र शाब्दी भावना विधिरिति भाट्टाः।नियोगो विधिरिति प्राभाकराः।इष्टसाधनता विधिरिति तार्किकाः।विधिरपि चतुर्विध उत्पत्त्यधिकारविनियोगप्रयोगभेदात्।तत्र कर्मस्वरूपमात्रप्रतिपादको विधिरुत्पत्तिविधिः'आग्नेयोऽ-

ष्टाकपालो भवति' इत्यादिः।सेतिकर्त्तव्यताकस्य करणस्य यागादेः फलसंबंधबोधको विधिरधिकारविधिः 'दर्शपौर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत्' इत्यादिः।अंगसंबंधबोधको विधिर्विनियोगविधिः 'व्रीहिभिर्यजेत् समिधो यजति ' इत्यादिः । सांगप्रधानकर्मप्रयोगैक्यबोधकः पूर्वोक्तविधित्रयमेलनरूपः प्रयोगविधिः स च श्रौत इत्येके, कल्प इत्यपरे । कर्मस्वरूपञ्च द्विविधं गुणकर्मार्थकर्मभेदात् । तत्र क्रतुकारकाण्याश्रित्य विहितं गुणकर्म।तदपि चतुर्विधम् उत्पत्त्याप्तिविकृतिसंस्कृतिभेदात् । तत्र वसंते ' ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत यूपं तक्षति ' इत्यादावाधानतक्षणादिना संस्कारविशेषविशिष्टाग्नियूपादेरुत्पत्तिः।'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः, गां पयो दोग्धि'इत्यादावध्ययनदोहादिना विद्यमानस्यैव स्वाध्यायपयःप्रभृतेः प्राप्तिः । ' सोममभिषुणोति'व्रीहीनवहंति,आज्यं विलापयति'इत्यादावभिषवावघातविलापनैः सोमादीनां विकारः ।' व्रीहीन्प्रोक्षति, प्रत्यवेक्षते' इत्यादौ प्रोक्षणावेक्षणादिभिर्व्रीह्यादिद्रव्याणां संस्कार एव । एतच्चतुष्टयं चांगमेव। तथा क्रतुकारकाण्यनाश्रित्य विहितमर्थकर्म। तच्च द्विविधमंगं प्रधानं च । तत्रान्यार्थमंगमनन्यार्थं प्रधानम् । अंगमपि द्विविधं सन्निपत्योपकारकमाराडुपकारकंच । तत्र प्रधानस्वरूपनिर्वाहकं प्रथमं फलोपकारकं द्वितीयमेवं संपूर्णांगसंपादकोविधिः प्रकृतिर्विकलाङ्गसंपादको विधिर्विकृतिस्तदुभयविधविलक्षणो विधिर्दर्वीहोमः एवमन्यदप्यूह्यम्। अत्रबहुवक्तव्यमस्ति ग्रंथविस्तरभियोपरम्यते । तदेवंनिरूपितो विधिभागः प्राशस्त्यनिंदान्यतरलक्षणया विधिशेषभूतं वाक्यमर्थवादः स च त्रिविधो गुणवादोऽनुवादो भूतार्थवादश्च। तत्र प्रमाणांतरविरुद्धार्थबोधको गुणवादः 'आदित्यो यूपः ' इत्यादिः। प्रमाणांतरप्राप्तार्थबोधकोऽनुवादः ' अग्निर्हिमस्य भेषजम्'इत्यादिः।प्रमाणांतरबाधतत्प्राप्तिरहितार्थबोधको

भूतार्थवादः ‘ इंद्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्’ इत्यादिः । तदुक्तं ‘विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते । भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधा मतः’ इति । तत्र त्रिविधानामर्थवादानां विधिस्तुतिपरत्वे समानेऽपि भूतार्थवादानां स्वार्थेऽपि प्रमाण्यम् देवताधिकरणन्यायात्।अबाधिताज्ञातज्ञापकत्वं हि प्रामाण्यम् । तच्च बाधितविषयत्वात् ज्ञातज्ञापकत्वाच्च नगुणवादानुवादयोः । भूतार्थवादस्य तु स्वार्थतात्पर्यरहितस्याप्यौत्सर्गिकं प्रामाण्यं न विहन्यते । तदेवं निरूपितोऽर्थवादभागः । विध्यर्थवादोभयविलक्षणं तु वेदांतवाक्यम् । तच्चाज्ञातज्ञापकत्वेऽप्यनुष्ठानाप्रतिपादकत्वान्न विधिः स्वतः पुरुषार्थपरमानंदज्ञानात्मके ब्रह्मणि स्वार्थे चोपक्रमोपसंहारादिषड्विधतात्पर्यलिंगवत्तया स्वतःप्रमाणभूतं सर्वानपि विधीनंतःकरणशुद्धिद्वारा स्वशेषतामापादयन्परशेषत्वाभावाच्च नार्थवादस्तस्मादुभयविलक्षणमेव वेदांतवाक्यम् । तच्च क्वचिदज्ञातज्ञापकत्वेन विधिरिति व्यपदिश्यते । विधिपदरहितप्रमाणवाक्यत्वे क्वचिद्भूतार्थवाद इति व्यवह्रियते इति न दोषः । षड्विधलिंगानि च ‘उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वताफलम् । अर्थवादोपपत्ती च लिंगं तात्पर्यनिर्णये’ इति।उपक्रमोपसंहारावेकलिंगम् । अद्वितीयात्मप्रतिपादकत्वात् । सृष्टेः पूर्वं नामरूपरहितं सत्तामात्रमिदं जगदिति छांदोग्ये षष्ठे प्रपाठके ‘ सदेव सौम्येदमग्र आसीत्’ इति श्रुत्या प्रतिपादनमुपक्रमः । प्रतीयमानं सर्वं जगदिदं पूर्वोक्तसत्स्वरूपमेव नान्यदिति।‘एतदात्मामिदं सर्वम्’ इति श्रुत्यांते प्रतिपादनमुपसंहारः ॥ १ ॥ प्रकरणप्रतिपाद्यस्य पुनःपुनः प्रतिपादनमभ्यासः।यथा तत्रैव तत्त्वमसीति नवकृत्वोऽभ्यासः । प्रकरणप्रतिपाद्यस्य तन्मध्ये तत्त्वमसीति नवसंख्याकोपदेशेन प्रतिपादनमभ्यासः॥२॥ प्रमाणानां मध्ये लक्षणया ‘ तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि ’ इत्यु-

पनिपत्प्रमाणेन गम्य आत्मा नेतरेणेति विवेकोऽपूर्वता ॥ ३ ॥ प्रारब्धक्षयपर्यंतं देहेंद्रियादौ मिथ्याप्रतीतिः । प्रारब्धस्य निःशेषनाशे प्राप्ते तदप्रतीतिपूर्वकमद्वितीयात्मस्वरूपेणावस्थानस्य ' आचार्यवान्पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येथ संपत्स्ये ' इत्यादिश्रुत्या प्रतिपादनं फलम् ॥ ४ ॥ प्रकरणप्रतिपाद्यस्य 'उत तमादेशमप्राक्ष्मो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्' इत्यादिश्रुत्या प्रशंसनमर्थवादः स्वार्थे तात्पर्याभावात् ॥ ५ ॥ यथा मृज्जन्यघटशरावादीनांमृदभिन्नत्वं स्वर्णजन्यकटककुंडलादीनां स्वर्णभिन्नत्वं तथा कारणजन्यजगतः कारणाभिन्नत्वमिति 'वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ' इत्यादिश्रुत्या प्रतिपादिता युक्तिरुपपत्तिरिति ॥ ६॥ निरूपितं त्रिविधं ब्राह्मणम्। यत्तु'मंत्रास्त्वनेकधा संति ब्राह्मणं त्वष्टधा मतम्' इति तस्याष्टविधस्यापि यथाकथंचित्त्रिष्वेवैष्वंतर्भावो ध्येयः। अष्टधा ब्राह्मणं तु बृहदारण्यकश्रुत्योक्तम् ' इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राणि व्याख्यानान्यनुव्याख्यानान्यस्यैव निःश्वसितानि' इति । कथाप्रतिपादक इतिहासः । विश्वस्य पूर्वावस्थानिरूपकं पुराणम् । उपासनात्मविद्याप्रतिपादका विद्याः । या चोपास्यदेवरहस्यप्रतिपादका सोपनिषत् । ये मंत्राः श्लोकवत्पठ्यंते ते श्लोकाः । संक्षिप्तार्थप्रतिपादकं सूत्रम् । विस्तृतार्थप्रतिपादकं व्याख्यानम्।व्याख्यानस्यापि स्फुटतापादकमनुव्याख्यानम्।एतान्यष्टब्राह्मणानि। शिक्षाकल्परहस्यादीनां च वेदांगतापादकत्वमेव मंत्रब्राह्मणयोर्व्याख्येयव्याख्यानताभावोस्ति तच्च 'मांत्रवर्णिकम्' इति सूत्रव्याख्याने प्रतिपादितं वृत्तिकारैः । अथप्रकृतमनुसरामः । एवं च कर्मकांडगुणकांडब्रह्मकांडात्मको वेदो धर्मार्थकाममोक्षहेतुः। स च प्रयोगत्रयेण निर्वाहार्थमृग्यजुःसामभेदेन भिन्नः। तत्र होत्र-

प्रयोग ऋग्वेदेनाध्वर्यवप्रयोगो यजुर्वेदेनौद्गात्रप्रयोगः सामवेदेन ब्रह्मयजमानप्रयोगौ तत्रांतर्भूतौ । अथर्ववेदस्तु यज्ञानुपयुक्तश्शान्तिकपौष्टिकाभिचारिकादिकर्मप्रतिपादकत्वेनात्यंतविलक्षण एव । प्रवचनभेदात्प्रतिवेदं भिन्ना भूयस्यः शाखाः संति । तज्ज्ञानं चरणव्यूहवैदिकग्रंथाद्भवति । एवं च कर्मकांडे व्यापारभेदे ऽपि सर्वासां वेदशाखानामेकरूपत्वमेव ब्रह्मकांड इत्यादिश्चतुर्णां वेदानां प्रयोगभेदेन प्रयोजनभेद उक्तः ॥ अथांगानामुच्यते । तत्र शिक्षाया उदात्तानुदात्तस्वरितह्रस्वदीर्घप्लुतादिविशिष्टस्वरव्यंजनात्मकवर्णोच्चारणविशेषज्ञानं प्रयोजनं तदभावे मंत्राणामनर्थफलत्वात् । तथा चोक्तं 'मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह । स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेंद्रशत्रुस्स्वरतोऽ पराधात् ॥' इति। तत्र सर्ववेदसाधारणी शिक्षा। 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि' इति पंचखंडात्मिका प्रकाशिता । प्रतिवेदशाखं भिन्नाः प्रातिशाख्यसंज्ञिका अन्यैरेव मुनिभिः प्रदर्शिताः । एवंवैदिकपदसाधुत्वज्ञानेनाहादिकं व्याकरणप्रयोजनं । तच्च 'वृद्धिरादैच्' इत्याद्यष्टाध्याय्यात्मकं महेश्वरप्रसादेन पाणिनिनैव प्रकाशितम् । तच्च कात्यायनेन मुनिना पाणिनीयसूत्रेषु वार्तिकं विरचितम् ।तद्वार्तिकोपरि च भगवता पतंजलिना महाभाष्यमारचितम् । तदेतत्त्रिमुनिव्याकरणं वेदांगं माहेश्वरमित्याख्यायते । कौमारादिव्याकरणानि तु न वेदांगानि । किन्तु लौकिकप्रयोगमात्रार्थानीत्यवगंतव्यम् । एवं शिक्षाव्याकरणाभ्यां वर्णोच्चारणे पदसाधुत्वे च ज्ञाते मंत्रपदार्थज्ञानापेक्षायां तदर्थं भगवता यास्केन 'समाम्नायः समाम्नातो व्याख्यातव्य' इत्यादित्रयोदशाध्यायात्मकं निरुक्तमारचितम् । तत्र च नामाख्यातनिपातोपसर्गभेदेन चतुर्विधं पदजातं निरूप्य वैदिकपदानामर्थः प्रदर्शितः । मंत्राणां चातुष्टयार्थप्रकाशनद्वारेणैव करणत्वात्पदार्थज्ञानाधीनत्वाच्च

वाक्यार्थज्ञानस्य मंत्रस्थपदार्थज्ञानाय निरुक्तमप्यपेक्षणीयमप्यथानुष्ठानासंभवात्सूल्पेन 'जर्जरीजुर्फरीतूना' इत्यादीनां दुरूहत्वात्प्रकारांतरेणार्थज्ञानस्यासंभावनीयत्वाच्च । एवं निघंटुकोशा वैदिकद्रव्यदेवतात्मकपदार्थपर्यायशब्दात्मका निरुक्तांतर्भूता एव । तत्रापि निघंटुसंज्ञकः पञ्चाध्यायात्मको ग्रंथो भगवता यास्केनैव कृतः । अन्येप्यमरहेमचन्द्रादिप्रणीताः कोशा निघंटुरूपत्वेन निरुक्तांतर्भूता एव द्रष्टव्याः । एवमृङ्मंत्राणां पादबद्धानुष्टुप्छन्दोविशेषविशिष्टत्वात् । तदज्ञानेच निंदाश्रवणे छंदोविशिष्टानुष्ठानविशेषविधानाच्च।छंदोज्ञानाकांक्षायां तत्प्रकाशनाय'धीश्रीस्त्रीम्' इत्याद्यध्यायाष्टकात्मिका छंदोविचितिर्भगवता पिंगलेनैव रचिता।तत्राप्यलौकिकमित्यंतेनाध्यायत्रयेण गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपंक्तित्रिष्टुब्जगतीछंदांसि सतावांतरभेदानि निरूपितानि।अथ लौकिकमित्यारभ्याध्यायपंचकेन पुराणेतिहासादावुपयोगीनि लौकिकानि छंदांसि निरूपितानि।व्याकरणे लौकिकपदनिरूपणवत्।एवं वैदिककर्मदर्शादिकालज्ञानाय ज्यौतिषं भगवतादित्येन गर्गादिभिश्च प्रणीतं बहुविधं गणितहोरासंहितादिरूपस्कंधत्रयात्मकमिति।तत्र गणितं च मूलबीजरेखापाट्यादिभेदतोनेकविधम्।होराशास्त्रं तु जन्मपत्रप्रकाशकम्।होराशब्दस्तु पूर्वापरवर्णलोपेनाहोरात्रशब्दान्निष्पन्नःपृषोदरादित्वा दित्युक्तं बृहज्जातके।तेन कालोपलक्षणान्मुहूर्तबोधकवर्षबोधकप्रश्नबोधकशास्त्रमप्यत्रैवांतर्भूतंज्ञेयम्।संहिताशास्त्रं सर्वप्रकाशकत्वात्सर्वमयमेव।गणितबोधकाः सूर्यसिद्धांतादयोऽष्टादश संति।होराबोधकाःशुकजातकयवनजातकादयो मुहूर्तमार्त्तंडादयःप्रश्नादर्शादयो।हिल्लाजादयश्चबहवःसंति।संहिता अपि गर्गसंहितारुद्रसंहिताभृगुसंहिताद्या अनेकाःसंतीति।एवं शाखांतरीयगुणोपसं

द्वारेण वैदिकानुष्ठानक्रमविशेषविज्ञापनाय कल्पसूत्राणि। तानि च अयो गत्रयभेदात्त्रिविधानि। तत्र हौत्रप्रयोगप्रतिपादकान्याश्वलायनसांख्या यनादिप्रणीतानि। आध्वर्यवप्रयोगप्रतिपादकानि बौधायनापस्तंब कात्यायनादिप्रणीतानि। औद्गात्रप्रयोगप्रतिपादकानि शाड्यायनत्र्य्यारुण्यादिप्रणीतानि। एवं निरूपितः षण्णामंगानां प्रयोजनभेदः॥ चतुर्णामुपांगानामधुनोच्यते। तत्र सर्गप्रतिसर्गमन्वंतरवंशवंशानुचरितप्रतिपादकानि भगवता बादरायणेन निरूपितानि। पुराणानि तानि च ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं शैवं भागवतं नारदीयं मार्कण्डेयमाग्नेयं भविष्यं ब्रह्मवैवर्त्तं लैंगं वाराहं स्कांदं वामनं कौर्मं मात्स्यं गारुडं ब्रह्मांडं चेत्यष्टादश। एवमुपपुराणान्यपि गणेशकालिकासांबपराशरादीन्यनेकानि द्रष्टव्यानि। न्याय आन्वीक्षिकी पञ्चाध्यायी गौतमेन प्रणीतम्-प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टांतसिद्धांतावयवतर्कविपर्ययवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां षोडशपदार्थानामुद्देशलक्षणपरीक्षाभिस्तत्त्वज्ञानं तस्याःप्रयोजनमेवं दशाध्यायं वैशेषिकं शास्त्रं कणादेन प्रणीतम्। द्रव्यगुणकर्मसामान्यसमवायानां षण्णां भावपदार्थानामभावसप्तमानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां व्युत्पादनं तस्य प्रयोजनं तदपि न्यायपदेनोक्तम्। एवं मीमांसाऽपि द्विविधा धर्ममीमांसा शारीरिकमीमांसा च। तत्र द्वादशाध्यायी धर्ममीमांसा 'अथातो धर्मजिज्ञासा' इत्यारभ्य 'अन्वाहार्य्ये च दर्शनात्' इत्यंता भगवता जैमिनिना प्रणीता। तत्र धर्मप्रमाणं धर्मभेदः शेषशेषिभावश्च क्रत्वर्थपुरुषार्थभेदेन प्रयुक्तिविशेषः श्रुत्यर्थपठनादिभेदः क्रमभेदोधिकारविशेषः सामान्यातिदेशो विशेषातिदेश ऊहो बाधस्तंत्रप्रसंगश्चेति क्रमेण द्वादशानामध्यायानामर्थः। तथा संकर्षणकांडमध्यायचतुष्टयात्मकं जैमिनिना प्रणीतम्। तच्च देवताकांडसंज्ञया प्रसिद्धमप्युपासनादिकर्मप्रतिपादकत्वात्कर्मकांडांतर्गतमेव। तथा चतुरध्यायी

शारीरिकमीमांसा 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इत्यादिः 'अनावृत्तिः शब्दात्' इत्यंता जीवब्रह्मैकत्वसाक्षात्कारहेतुश्रवणाख्यविचारप्रतिपादकान्न्यायाननुपदर्शयंती भगवता बादरायणेन कृता । तत्र सर्वेषामेव वेदांतवाक्यानां साक्षात्परंपरया वा प्रत्यगभिन्नाद्वितीये ब्रह्मणि तात्पर्यमिति समन्वयः प्रथमाध्यायेन दर्शितः । तत्र प्रथमपादे स्पष्टब्रह्मलिंगयुक्तानि वाक्यानि विचारितानि । द्वितीयपादे त्वस्पष्टब्रह्मलिंगयुक्तान्युपास्यब्रह्मविषयाणि । तृतीयपादे स्पष्टब्रह्मलिंगानि ज्ञेयब्रह्मविषयाणि । एवं पादत्रयेण वाक्यविचारः समापितः । चतुर्थपादे तु प्रधानविषयत्वेन संदिह्यमानान्यव्यक्तादिपदानि चिंतितानि । एवं वेदांतानामद्वये ब्रह्मणि सिद्धे समन्वये तत्र संभावितस्मृतितर्कादिविरोधमाशंक्य तत्परिहारः क्रियते इति । अविरोधो द्वितीयाध्यायेन दर्शितः । तत्राद्यपादे सांख्ययोगकणादस्मृतिभिः सांख्यादिप्रयुक्तैश्च तर्कैर्विरोधो वेदांतसमन्वयस्य परिहृतः । द्वितीयपादे सांख्यादिमतानां दुष्टत्वं प्रतिपादितम् । स्वपक्षस्थापनपरपक्षनिराकरणरूपपर्वद्वयात्मकत्वाद्विचारस्य । तृतीयपादे महाभूतसृष्ट्यादिश्रुतीनां परस्परविरोधः पूर्वभागेन परिहृत उत्तरभागेन तु जीवविषयाणाम् । चतुर्थपादेनेंद्रियविषयश्रुतीनां विरोधपरिहारः ॥ तृतीयाध्याये साधननिरूपणम् । तत्र प्रथमपादे जीवस्य परलोकगमनागमनेन वैराग्यं निरूपितम् । द्वितीयपादे पूर्वभागेन त्वंपदार्थो निरूपित उत्तरभागेन तत्पदार्थः । तृतीये पादे निर्गुणे ब्रह्मणि नानाशाखापठित एव गुणोपसंहारः कृतः । प्रसंगात्सगुणविद्यासु शाखांतरीयगुणोपसंहारो निरूपितः । चतुर्थपादे निर्गुणब्रह्मविद्याया बहिरंगसाधनान्याश्रमयज्ञादीन्यंतरंगसाधनानि शमदमनिदिध्यासादीनि निरूपितानि । चतुर्थाध्याये सगुणनिर्गुणविद्ययोः फलनिर्णयः कृतः । तत्र प्रथमे पादे श्रवणाद्यावृत्त्या

निर्गुणं ब्रह्म उपासनावृत्त्या सगुणं वा ब्रह्म साक्षात्कृत्य जीवतः पुण्यपापालेपलक्षणा जीवन्मुक्तिरभिहिता । द्वितीयपादे म्रियमाणस्योत्क्रांतिप्रकारश्चिंतितः । तृतीयपादेसगुणब्रह्मविदो मृतस्योत्तरमार्गोभिहितः । चतुर्थपादे पूर्वभागेन निर्गुणब्रह्मविदो विदेहकैवल्यप्राप्तिरुक्ता । उत्तरभागेन सगुणब्रह्मविदो ब्रह्मलोकगमनस्थितिरुक्ता । इदमेव सर्वशास्त्राणां मूर्द्धन्यं शास्त्रांतरं सर्वमस्यैव शेषभूतमिति।इदमेव मुमुक्षुभिरादरणीयं श्रीशंकरमध्वादिमुनिदर्शितमार्गेण यथारुचीति रहस्यम्॥एवं धर्मशास्त्राणि मनुयाज्ञवल्क्यविष्णुयमांगिरोवसिष्ठदक्षशातातपपराशरगोतमशंखलिखित हारीतापस्तंबोशनोव्यासकात्यायनबृहस्पतिदेवलनारदपैठीनसिप्रभृतिभिः कृतानि वर्णाश्रमधर्मविशेषाणां विभागेन प्रतिपादकानि॥ एवं व्यासकृतं महाभारतं वाल्मीकिकृतं रामायणं च धर्मशास्त्र एवांतर्भूतमितिहासत्वेन प्रसिद्धम् । एवं सर्वदेवसाधारणमंत्रशास्त्रं श्रीमहादेवब्रह्मगौतमादिप्रणीतं धर्मशास्त्र एवान्तर्भूतत्वेऽपीह स्वशब्देनैवोपादानात्पृथगेव संगतिर्वाच्या ॥ अथ वेदचतुष्टयस्य क्रमेण चत्वार उपवेदाःतत्रायुर्वेदस्याष्टौ स्थानानि भवंति । सूत्रं शारीरमैंद्रियं चिकित्सा निदानं विमानं कल्पं प्रसिद्धिश्च । 'कायबालग्रहोर्द्धांगशल्यदंष्ट्राजरावृषान् । अष्टावंगानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिताः' इति । तस्यायुर्वेदस्य कायचिकित्सा, बालचिकित्सा, ग्रहो भूतप्रेतादिः, ऊर्द्धांगं शिरोनेत्रादि, शल्यं शस्त्रघातादि, दंष्ट्रा स्थावरजंगमात्मकं विषं तेषां चिकित्सा, जरा रसायनादिना जराया दूरीकरणं, वृषो वाजीकरणतंत्रमित्यष्टांगानीति ।ब्रह्मप्रजापत्यश्विधन्वंतरींद्रभारद्वाजात्रेयाग्निवेशादिभिरुपदिष्टश्चरकेन संक्षिप्तश्च । तत्रैव सुश्रुतेन पंचप्रस्थात्मकं प्रस्थानांतरं कृतम् । एवं वाग्भटादिभिरपि बहुधेति न शास्त्रभेदः ॥ कामशास्त्रमप्यायुर्वेदांतर्गतमेव सुश्रुते-

न वाजीकरणाख्यकामशास्त्राभिधानात् । तत्र वात्स्यायनेन पञ्चाध्यायात्मकं कामशास्त्रं प्रणीतम् । तस्य विषयवैराग्यमेव प्रयोजनं शास्त्रोद्दीपितमार्गेणापि विषयभोगे दुःखपर्यवसानात् । चिकित्साशास्त्रस्य च रोगतत्साधनरोगनिवृत्तितत्साधनज्ञानं प्रयोजनम् । तच्च मोक्षसाधनीभूतशरीरारोग्यसंपादकत्वेन मोक्षोपयोग्येव । एवं धनुर्वेदः पादचतुष्टयात्मको विश्वामित्रप्रणीतः । तत्र प्रथमपादो दीक्षात्मको द्वितीयः संग्रहपादस्तृतीयस्सिद्धपादश्चतुर्थः प्रयोगपादः।तत्र प्रथमे पादे धनुर्लक्षणमधिकारिनिरूपणञ्च कृतम्।तत्र धनुःशब्दश्चापे निरूढोऽपि चतुर्विधेष्वायुधेषु वर्त्तते । यथा चक्रशब्दोऽरौ निरूढोऽपिगदायामपि वर्त्तते'जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्र'इत्यत्र तथादर्शनादन्यथा अस्त्रतेजः स्वगदया विधमन्तमित्युक्तिव्याकोपः स्यादिति।तच्चतुर्विधमायुधं मुक्तममुक्तं मुक्तामुक्तं मंत्रमुक्तं च।तत्र मुक्तं चक्रादि, अमुक्तं खड्गादि,मुक्तामुक्तं शल्यावांतरभेदादि,मंत्रमुक्तं शरादि।तत्र मुक्तमस्त्रमुच्यते तदमुक्तं शस्त्रमित्युच्यते । तदपि ब्राह्मवैष्णवप्राजापत्याग्नेयादिभेदादनेकविधम् । एतद्भेदज्ञापनाय किञ्चिद्वक्ष्यामोऽग्रे । एवं साधिदैवतेषु समंत्रेषु चतुर्विधायुधेषु येषामधिकारः क्षत्रियकुमाराणां तदनुयायिनां च ते सर्वे चतुर्विधाः पदातिरथतुरगगजारूढा इति दीक्षाभिषेकसन्नाहनमंगलकरणादिकञ्च सर्वमपि प्रथमे पादे निश्चितम् । सर्वेषां शस्त्रविशेषाणामाचार्यस्य च लक्षणपूर्वकसंग्रहप्रकारो दर्शितो द्वितीयपादे । गुरुसंप्रदायसिद्धानां शस्त्रविशेषाणां पुनः पुनरभ्यासो मंत्रदेवतासिद्धिकरणमपि निरूपितं तृतीयपादे । एवं देवतार्चनाभ्यासादिभिस्सिद्धानामस्त्रविशेषाणां प्रयोगश्चतुर्थपादे निरूपितः । क्षत्रियाणां स्वधर्माचरणं युद्धं दुष्टदस्युचौरादिभ्यः प्रजापालनं च धनुर्वेदस्य प्रयोजनम् ॥ अथ किञ्चिद्धनुर्वेदोद्धृतं शार्ङ्गधरोक्तरीत्याप्यधुनोच्यते ।एको

पि यत्र नगरे प्रसिद्धः स्याद्धनुर्द्धरः ॥ ततो यान्त्यरयो दूरान्मृगाः सिंहगृहादिव ॥ १ ॥ अथ धनुर्दानविधिः । आचार्येण धनुर्देयं ब्राह्मणे सुपरीक्षिते ॥ लुब्धे धूर्ते कृतघ्ने च मंदबुद्धौ न दापयेत् ॥ २ ॥ ब्राह्मणाय धनुर्देयं खड्गं वै क्षत्रियाय च ॥ वैश्याय दापये-त्कुन्तं गदां शूद्राय दापयेत् ॥ ३ ॥ धनुश्चक्रश्च कुन्तश्च खड्गं च क्षुरिका गदा ॥ सप्तमं बाहुयुद्धं स्यादेवं युद्धानि सप्तधा ॥ ४ ॥ अथाचार्यलक्षणम् । आचार्यः सप्तयुद्धः स्याच्चतुर्भिर्भार्गवः स्मृतः॥ द्वाभ्यांचैव भवेद्योध एकेन गणको भवेत् ॥ ५ ॥ हस्तः पुनर्वसुः पुष्यो रोहिणी चोत्तरात्रयम् ॥ अनुराधाश्विनी चैव रेवती दशमी तथा ॥ ६॥ जन्मस्थे च तृतीये च षष्ठे वै सप्तमे तथा ॥ दशमैकाद-शे चंद्रे सर्वकार्याणि कारयेत् ॥ ७ ॥ तृतीया पंचमी चैव सप्तमी दशमी तथा ॥ त्रयोदशी द्वादशी च तिथयस्तु शुभा मताः ॥ ८ ॥ रविवारः शुक्रवारो गुरुवारस्तथैवच ॥ एतद्वारत्रयं धन्यं प्रारंभे शस्त्रकर्मणाम् ॥ ९ ॥ एभिर्दिनैस्तु शिष्याय गुरुः शस्त्राणि दाप-येत् ॥ संतर्प्य दानहोमाभ्यां सुरान्स्वाहाविधानतः ॥१०॥ ब्राह्मणा-न्भोजयेत्तत्र कुमारीश्चाप्यनेकशः ॥ तापसानर्चयेद्भक्त्या ये चान्ये शिवयोगिनः ॥ ११ ॥ अन्नपानादिभिश्चैव वस्त्रालंकारभूषणैः ॥ गंधमाल्यैर्विचित्रैश्च गुरुं तत्र प्रपूजयेत्॥१२॥कृतोपवासः शिष्यस्तु धृताजिनपरिग्रहः ॥ बद्धांजलिपुटस्तत्र याचयेद्गुरुतो धनुः ॥१३ ॥ अंगन्यासं ततः कार्यं शिवोक्तं सिद्धिमिच्छता ॥ आचार्य्येण च शिष्यस्य पापघ्नं विघ्ननाशनम् ॥ १४ ॥ शिखास्थानेन्यसेदीशं बाहुयुग्मे च केशवम् ॥ ब्रह्माणं नाभिमध्येतु जंघयोश्च गणाधि-पम् ॥ १५ ॥ प्रतिमंत्रम् । ओं ह्रीं शिखास्थाने शंकराय नमः । ओं ह्रीं बाह्वोः केशवाय नमः । ओं ह्रीं नाभिमध्ये ब्रह्मणे नमः । ओं ह्रीं जंघयोर्गणपतये नमः । ईदृशं कारयेन्न्यासं ये-

न श्रेयो भविष्यति॥अन्येऽपि दुष्टमंत्रेण न हिंसंति कदाचन॥१६॥ शिष्याय मानुषं चापं धनुर्मंत्राभिमंत्रितम् ॥ काण्डात्काण्डाभिमंत्रेण दद्याद्वेदविधानतः ॥ १७ ॥ प्रथमं पुष्पवेधश्च फलहीनेन पत्रिणा ॥ ततः फलयुतेनैव मत्स्यवेधं च कारयेत् ॥ १८ ॥ मांसवेधं ततः कुर्य्यादेवं वेधो भवेत्त्रिधा ॥ एतैर्वेधैः कृतैः पुंसां शराः स्युः सर्वसाधकाः ॥ १९ ॥ वेधने चैव मांसस्य शरपातो यदा भवेत् ॥ पूर्वदिग्भागमाश्रित्य तदा स्याद्विजयी सुखी ॥ २० ॥ दक्षिणे कलहो घोरो विदेशगमनं पुनः ॥ पश्चिमे धनधान्यं च सर्वं चैवोत्तरे शुभम् ॥ २१ ॥ ऐशान्यां पवनं दुष्टं विदिशोऽन्याश्च शोभनाः ॥ हर्षपुष्टिकराश्चैव सिद्धिदाः सर्वकर्मणि ॥ २२ ॥ एवं वेधत्रयं कुर्य्याच्छंखदुंदुभिनिस्वनैः । ततः प्रणम्य गुरवे धनुर्बाणान्निवेदयेत् ॥ २३ ॥ इति धनुर्दानविधिः ॥ अथ चापप्रमाणम् । प्रथमं यौगिकं चापं युद्धचापं द्वितीयकम् ॥ निजबाहुबलोन्मानात्किञ्चिदूनं शुभं धनुः ॥ २४ ॥ वरं प्राणाधिको धन्वी न तु प्राणाधिकं धनुः ॥ धनुषा पीड्यमानस्तु धन्वी लक्ष्यं न पश्यति ॥ २५ ॥ अतो निजबलोन्मानं चापं स्याच्छुभकारकम् ॥ देवानामुत्तमं चापं ततो न्यूनञ्च मानवम् ॥ २६ ॥ अर्द्धपञ्चमहस्तन्तु श्रेष्ठं चापं प्रकीर्त्तितम् ॥ तद्विज्ञेयं धनुर्दिव्यं शंकरेण धृतं पुरा ॥ २७॥ तस्मात्परशुरामेण ततो द्रोणेन धारितम् ॥ द्रोणाद्गृहीतं पार्थेन ततः सात्यकिना धृतम् ॥२८ ॥ कृते युगे महादेवस्त्रेतायां चापि राघवः॥द्वापरे द्रोणविप्रश्च दैवं चापमधारयत् ॥२९॥ चतुर्विंशांगुलो हस्तश्चतुर्हस्तं धनुः स्मृतम् ॥ तद्भवेन्मानवं चापं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥३०॥ त्रिपर्वं पञ्चपर्वं वा सप्तपर्वं प्रकीर्त्तितम् ॥ नवपर्वं च कोदंडं चतुर्द्धा शुभकारकम् ॥ ३१ ॥ चतुष्पर्वञ्च षट्पर्वमष्टपर्वं विवर्जयेत् ॥ केषाञ्चिच्च भवेच्चापं वितस्तिनवसंमि-

तम् ॥ ३२ ॥ अतिजीर्णमपक्वञ्च ज्ञातिघृष्टं तथैव च ॥ दग्धं छिद्रं न कर्त्तव्यं बाह्याभ्यंतरहस्तकम् ॥३३॥ गुणहीनं गुणाक्रांतं कांडदोपसमन्वितम् ॥ गलग्रंथिं न कर्त्तव्यं तलमध्ये तथैव च ॥ ३४ ॥ अपक्वं भंगमायाति ह्यतिजीर्णं तु कर्कशम् ॥ ज्ञातिघृष्टं तु सोद्वेगं कलहो बांधवैः सह ॥ ३५ ॥ दग्धेन दह्यते वेश्म छिद्रं युद्धविनाशनम् ॥ बाह्ये लक्ष्यं न लभ्येत तथैवाभ्यंतरेऽपि च ॥ ३६ ॥ हीने तु संधिते बाणे संग्रामे भंगकारकम् ॥ आक्रांते तु पुनः क्वापि लक्ष्यं न प्राप्यते दृढम् ॥ ३७ ॥ गलग्रंथि तलग्रंथि धनहानिकरं धनुः ॥ एभिर्दोपैर्विनिर्मुक्तं सर्वकार्य्यकरं स्मृतम् ॥ ३८ ॥ शार्ङ्गं पुनर्धनुर्दिव्यं विष्णोः परममायुधम् ॥ वितस्तिसप्तमं मानं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥३९॥ न स्वर्गे न च पाताले न भूमौ कस्यचित्करे ॥ तद्धनुर्वशमायाति मुक्त्वैकं पुरुपोत्तमम् ॥ ४० ॥ पौरुपेयं तु यच्छार्ङ्गं बहुवत्सरशोभितम् ॥ वितस्तिभिः सार्द्धपड्भिर्निर्मितं चार्थसाधनम् ॥४१॥ प्रायो योज्यं धनुश्शार्ङ्गं गजारोहाश्वसादिनाम् ॥ रथिनां च पदातीनां वांशं चापं प्रकीर्तितम् ॥४२॥ अथ गुणलक्षणानि। गुणानां लक्षणं वक्ष्ये यादृशं कारयेद्गुणम् ॥ पट्टसूत्रो गुणः कार्य्यः कनिष्ठामानसंमितः ॥ ४३ ॥ धनुःप्रमाणो निःसन्धिः शुद्धस्त्रिगुणतंतुभिः ॥ वर्तितः स्याद्गुणः श्लक्ष्णः सर्वकर्मसहो युधि ॥ ४४ ॥ अभावे पट्टसूत्रस्य हरिणीस्नायुरिष्यते ॥ गुणार्थमपि च ग्राह्याः स्नायवो महिपीभवाः ॥४५॥ तत्कालहतगोकर्णचर्मणा छागलेनवा ॥ निर्लोमतंतुसूत्रेण कुर्य्याद्वा गुणमुत्तमम् ॥ ४६ ॥ पक्ववंशत्वचः कार्यो गुणस्तु स्थावरो दृढः ॥ पट्टसूत्रेण सन्नद्धः सर्वकर्मसहो युधि ॥ ४७ ॥ प्राप्ते भाद्रपदे मासि त्वगर्कस्य प्रशस्यते ॥ तस्यास्तत्र गुणः कार्य्यो नवित्रः स्थावरो दृढः ॥ ४८ ॥ वृत्तार्कसूत्रतंतूनां

हस्तास्त्वष्टादश स्मृताः ॥ तद्वत्तं त्रिगुणं कार्य्यं प्रमाणोयं गुणे स्मृतः ॥ ४९ ॥ अथ शरलक्षणानि । अतःपरं प्रवक्ष्यामि शराणां लक्षणं शुभम् ॥ स्थूलं न चातिसूक्ष्मं च न पक्वं न कुभूमिजम् ॥ ५० ॥ हीनग्रंथिं विदीर्णं च वर्जयेदीदृशं शरम् ॥ पूर्णग्रंथिं सुपक्वं च पांडुरं समयाहृतम् ॥ ५१ ॥ कठिनं वर्तुलं काण्डं गृह्णीयात्सुप्रदेशजम् ॥ द्वौ च हस्तौ मुष्टिहीनौ दैर्घ्ये स्थौल्ये कनिष्ठिका॥५२॥विधेया शरमानेषु यंत्रेष्वाकर्षयेत्ततः ॥ काकहंसशशादानां मत्स्यादक्रौंचकेकिनाम्॥५३॥गृध्राणां कुरराणाञ्च पक्षा एतेषु शोभनाः॥५४॥एकैकस्य शरस्यैव चतुष्पक्षान्नियोजयेत् ॥ षडंगुलप्रमाणेन पक्षच्छेदं च कारयेत् ॥ ५५ ॥ दशांगुलिमितं पक्षं शार्ङ्गचापस्य मार्गणे ॥ योज्या दृढाश्चतुः संख्याः सन्नद्धाः स्नायुतंतुभिः ॥ ५६ ॥ शराश्च त्रिविधा ज्ञेयास्स्त्री पुमांश्च नपुंसकः ॥ अग्रे स्थूला भवेन्नारी पश्चात्स्थूलो भवेत्पुमान् ॥ ५७ ॥ समं नपुंसकं ज्ञेयं तल्लक्ष्यार्थं नियोजयेत् ॥ दूरं पातं युवत्या च पुरुषो भेदयेद्दृढम् ॥ ५८ ॥ अथ फललक्षणम् । फलं तु शुद्धलोहस्य सुधारं तीक्ष्णमक्षतम् ॥ योजयेद्वज्रलेपेन शरे पक्षानुमानतः ॥ ५९ ॥ आरामुखं क्षुरप्रञ्च गोपुच्छं चार्द्धचंद्रकम् ॥ सूचीमुखञ्च भल्लञ्च वत्सदन्तं द्विभल्लकम् ॥ ६० ॥ कर्णिकं काकतुण्डं च तथान्यान्यप्यनेकशः ॥ फलानि देशदेशेषु भवंति बहुरूपतः ॥ ६१ ॥ आरामुखेन वै चर्म क्षुरप्रेण च कार्मुकम् ॥ सूचीमुखेन कवचं ह्यर्द्धचंद्रेण मस्तकम् ॥ ६२ ॥ भल्लेन हृदयं भेद्यं द्विभल्लेन गुणः शराः ॥ लोहश्च काकतुण्डेन लक्ष्यं गोपुच्छकेन च ॥ ६३ ॥ अन्यद्गोपुच्छकं ज्ञेयं शुद्धकाष्ठविनिर्मितम् ॥ मुखे च लोहकंटेन विद्धं त्र्यंगुलसम्मितम् ॥ ६४ ॥ अथ फलपायनम्॥फलस्य पायनं वक्ष्ये दिव्यौषधिविलेपनैः ॥ येन दुर्भे-

द्यवर्माणि भेदयेत्तरुपर्णवत् ॥ ६५ ॥ पिप्पलीसैंधवं कुष्ठं गोमूत्रे तु सुपेपयेत् । अनेन लेपयेच्छत्रं लिप्तश्चाग्नौ प्रतापयेत् ॥ ६६ ॥ शिखिग्रीवानुवर्णाभं ततपीतं तथौपधम् ॥ ततस्तु विमलं तोयं पाययेच्छस्त्रमुत्तमम् ॥६७॥ अथ नाराचनालीकौ ॥ सर्वलोहास्तु ये वाणा नाराचास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ पञ्चभिः पृथुलैः पक्षैर्युक्ताः सिध्यन्ति कस्यचित् ॥६८॥नालीका लघवो वाणा नलयंत्रेण नोदिताः॥अत्यु-च्चदूरपातेषु दुर्गयुद्धेषु ते मताः ॥ ६९ ॥ अथ स्थानमुष्ट्याकर्पणलक्षणानि । स्थानान्यष्टौ विधेयानि योजने भिन्नकर्मणाम्॥मु-ष्टयः पञ्च समाख्याता व्यायाः पञ्च प्रकीर्त्तिताः ॥ ७० ॥ अग्रतो वामपादश्च दक्षिणं चानुकुंचितम् ॥ आलीढं तु प्रकर्त्तव्यं हस्तद्वय-सविस्तरम् ॥ ७१ ॥ प्रत्यालीढे तु कर्त्तव्यं सव्यश्चैवानुकुञ्चितम्॥ दक्षिणं तु पुरस्ताद्वा दूरपाते विशिष्यते ॥ ७२ ॥ पादौ सविस्तरौ कार्य्यौ समौ हस्तप्रमाणतः ॥ विशाखस्थानकं ज्ञेयं कूटलक्ष्यस्य वेधने ॥ ७३ ॥ समपादे समौ पादौ निष्कम्पौ च सुसंगतौ ॥ असमे च पुरो वामे हस्तमात्रे नतं वपुः ॥ ७४ ॥ आकुंचितोरू द्वौ यत्र जानुभ्यां धरणीं गतौ ॥ दर्दुरक्रममित्याहुः स्थानकं दृढभेद-ने ॥ ७५ ॥ सव्यं जानुगतं भूमौ दक्षिणश्च सकुञ्चितम् ॥ अग्रतो यत्र दातव्यं तं विद्याद्गरुडक्रमम् ॥ ७६ ॥ पद्मासनं प्रसिद्धं तु ह्युपविश्य यथाक्रमम्॥धन्विना तत्तु विज्ञेयं स्थानकं शुभलक्षणम् ॥ ७७ ॥ इति स्थानानि ॥ अथ गुणमुष्टयः ॥ पताका वज्रमुष्टिश्च सिंहकर्णस्तथैव च ॥ मत्सरी काकतुण्डी च योजनीया यथाक्रमम् ॥ ७८ ॥ दीर्घा तु तर्ज्जनी यत्र ह्याश्रितांगुष्ठमूलकम् ॥ पताका सा च विज्ञेया नलिका दूरमोक्षणे ॥ ७९ ॥ तर्जनीमध्यमामध्यमंगुष्ठो विशते यदि ॥ वज्रमुष्टिस्तु सा ज्ञेया स्थूले नाराचमोक्षणे ॥८०॥ अंगुष्ठमध्यदेशं तु तर्जन्यग्रं सुसंस्थितम् ॥ सिंहकर्णः स विज्ञे-

यो दृढलक्ष्यस्य वेधने ॥ ८१ ॥ अंगुष्ठनखमूले तु तर्जन्यग्रं च संस्थितम् ॥ मत्सरी सा च विज्ञेया चित्रलक्ष्यस्य वेधने ॥ ८२ ॥ अंगुष्ठाग्रे तु तर्जन्या मुखं यत्र निवेशितम् ॥ काकतुंडी च सा ज्ञेया सूक्ष्मलक्ष्येषु योजिता ॥८३॥ अथ धनुर्मुष्टिसंधानम् ॥ संधानं त्रिविधं प्रोक्तमध ऊर्ध्वं समं सदा ॥ योजयेत्त्रिप्रकारं हि कार्य्येष्वपि यथाक्रमम् ॥ ८४ ॥ अधश्च दूरपातित्वे समे लक्ष्ये सुनिश्चले ॥ दृढास्फोटं प्रकुर्वीत ऊर्ध्वं संधानयोगतः ॥ ८५ ॥ अथ व्यायाः । कैशिकः केशमूले वै शरः शृंगे च सात्विकः ॥ श्रवणे वत्सकर्णश्च ग्रीवायां भरतो भवेत् ॥ ८६ ॥ अंसके स्कंधनामा च व्यायाः पञ्च प्रकीर्तिताः ॥ कैशिकाश्चित्रयुद्धेषु ह्यधो लक्ष्येषु सात्विकः ॥ ८७ ॥ वत्सकर्णः सदा ज्ञेयो भरतो दृढभेदने ॥ दृढभेदे च दूरे च स्कंधनामानमुद्दिशेत् ॥ ८८ ॥ अथ लक्ष्यम् ॥ लक्ष्यं चतुर्विधं ज्ञेयं स्थिरं चैव चलं तथा ॥ चलाचलं द्वयचलं वेधनीयं क्रमेण तु ॥ ८९ ॥ आत्मानं सुस्थिरं कृत्वा लक्ष्यञ्चैव स्थिरं बुधः ॥ वेधयेत्त्रिप्रकारं तु स्थिरवेधी स उच्यते ॥ ९० ॥ चलं तु वेधयेद्यस्तु आत्मस्थाने सुसंस्थितः ॥ चलं लक्ष्यं तु तत्प्रोक्तमाचार्य्येण सुधीमता ॥ ९१ ॥ धन्वी तु चलते यत्र स्थिरलक्ष्ये समाहितः ॥ चलाचलं भवेत्तत्र ह्यप्रमेयमचिंतितम् ॥ ९२ ॥ उभावेव चलौ यत्र लक्ष्यं चापि धनुर्द्धरः ॥ तद्विज्ञेयं द्वयचलं श्रमेण बहु साध्यते ॥ ९३ ॥ श्रमेणास्खलितं लक्ष्यं दूरं च बहुभेदनम् ॥ श्रमेणास्खलिताकृष्टिः शीघ्रसंधानमाप्यते ॥ ॥ ९४ ॥ श्रमेण चित्रयोधित्वं श्रमेण प्राप्यते जयः ॥ तस्माद्गुरुसमक्षं हि श्रमः कार्य्योविजानता ॥ ९५ ॥ प्रथमं वामहस्तेन यः श्रमं कुरुते नरः ॥ तस्य चापक्रियासिद्धिरचिरादेव जायते ॥ ९६ ॥ वामहस्ते सुसंसिद्धे पश्चाद्दक्षिणमारभेत् ॥ उभाभ्यां च श्रमं कुर्य्यान्नाराचैश्च शरैस्तथा ॥ ९७ ॥ वामेनैव श्रमं कुर्यात्सुसिद्धे दक्षिणे

करे ॥ विशाखेनासमेनैव रथी व्याये च कैशिके ॥ ९८ ॥ उदिते भास्करे लक्ष्यं पश्चिमायां निवेशयेत् ॥ अपराह्ने च कर्त्तव्यं लक्ष्यं पूर्वदिगाश्रितम् ॥ ९९ ॥ उत्तरेण सदा कार्यमवश्यमवरोधिकम् ॥ संग्रामेण विना कार्यं न लक्ष्यं दक्षिणामुखम् ॥१००॥ षष्टिधन्वंतरे लक्ष्यं ज्येष्ठं लक्ष्यं प्रकीर्त्तितम् ॥ चत्वारिंशन्मध्यमं च विंशतिश्च कनिष्ठकम् ॥१॥शराणां कथितं ह्येतन्नाराचानामथोच्यते॥चत्वारिंशच्च त्रिंशच्च षोडशैव भवेत्ततः ॥ २॥ चतुःशतैश्च कांडानां यो हि लक्ष्यं विसर्जयेत् ॥ सूर्योदये चास्तमने स ज्येष्ठो धन्विनां भवेत् ॥ ॥ ३ ॥ त्रिशतैर्मध्यमश्चैव द्विशताभ्यां कनिष्ठकः ॥ लक्ष्यं च पुरुषोन्मानं कुर्य्याच्चंद्रकसंयुतम् ॥ ४ ॥ ऊर्ध्ववेधी भवेज्ज्येष्ठो नाभिवेधी च मध्यमः ॥ पादवेधी तु लक्ष्यस्य स कनिष्ठो मतो बुधैः॥५॥ अथानध्यायाः॥ अष्टमी च ह्यमावास्या वर्जनीया चतुर्दशी ॥ पूर्णिमार्द्धदिनं यावन्निषिद्धं सर्वकर्मसु ॥ ६ ॥ अकाले गर्जिते देवे दुर्दिनं चाथवा भवेत् ॥ पूर्वकांडहतं लक्ष्यमनध्यायं प्रचक्षते ॥ ७ ॥ अनुराधर्क्षमारभ्य षोडशर्क्षे दिवाकरः ॥ यावच्चराति तं कालमकालं हि प्रचक्षते ॥ ८ ॥ यद्वा । अरुणोदयवेलायां वारिदो यदि गर्जति ॥ तद्दिने स्यादनध्यायस्तमकालं प्रचक्षते ॥ ९ ॥ श्रमं च कुर्वतस्तत्र भुजंगो दृश्यते यदि ॥ अथवा भज्यते चापं यदैव श्रमकर्मणि ॥ ११० ॥ त्रुट्यते वा गुणो यत्र प्रथमे बाणमोक्षणे ॥ श्रमं न तत्र न कुर्वीत शस्त्रे मतिमतां वरः॥११॥ अथ श्रमक्रिया ॥ क्रियाकलापान्वक्ष्यामि श्रमसाध्याञ्छुचिष्मताम् ॥ येषां विज्ञानमात्रेण सिद्धिर्भवति नान्यथा ॥ १२ ॥ प्रथमं चापमारोप्य चूलिकां बंधयेत्ततः ॥ स्थानकं तु ततः कृत्वा बाणोपरि करं न्यसेत् ॥ १३ ॥ तुलनं धनुषश्चैव कर्तव्यं वामपाणिना ॥ आदानं च ततः कृत्वा संधानञ्च ततः परम् ॥ १४ ॥ सकृदाकृष्टचापेन भूमिवेधं न कार-

येत् ॥ नमस्कुर्याच्छिवं विघ्नराजं गुरुधनुःशरान् ॥ १५ ॥ याचितव्या गुरोराज्ञा बाणस्याकर्षणं प्रति ॥ प्राणवायुं प्रयत्नेन प्राणेन सह पूरयेत् ॥ १६ ॥ कुंभकेन स्थिरं कृत्वा हुंकारेण विजयेत् ॥ इत्याभ्यासक्रिया कार्या धन्विना सिद्धिमिच्छता ॥१७॥ षण्मासात्सिध्यते मुष्टिः शराः संवत्सरेण तु ॥ नाराचास्तस्य सिद्ध्यंति यस्य तुष्टो महेश्वरः ॥१८॥ पुष्पवद्धारयेद्बाणं सर्पवत्पीडयेद्धनुः ॥ धनवच्चिंतयेल्लक्ष्यं यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः॥१९॥क्रियामिच्छन्ति चाचार्या दूरमिच्छन्ति भार्गवाः ॥ राजानो दृढमिच्छन्ति लक्ष्यमिच्छन्ति चेतराः॥१२०॥जनानां रंजनं येन लक्ष्यपातात्प्रजायते॥हीनेनापीषुणा तस्मात्प्रशस्तं लक्ष्यवेधनम्॥२१॥अथ लक्ष्यास्खलनविधिः॥विशाखस्थानकं हित्वा समसंधानमाचरेत् ॥ गोपुच्छमुखवामेन सिंहकर्णेन मुष्टिना ॥२२॥ आकर्षेत्कौशिकन्याये न शिखाश्चालयेत्ततः॥ पूर्वापरौ समं कार्यौ समांसौ निश्चलौ करौ ॥ २३ ॥ चक्षुषी स्पंदयेन्नैव दृष्टिं लक्ष्ये नियोजयेत्॥मुष्टिनाऽऽच्छादितं लक्ष्यं शरस्याग्रे नियोजयेत् ॥२४॥ मनोदृष्टिगतं ज्ञात्वा ततः कांडं विसर्जयेत्॥ स्खलत्येव कदाचिन्न लक्ष्ये योधो जितश्रमः ॥ २५ ॥ अथ शीघ्रसंधानम् ॥ आदानं चैव तूणीरात्संधानं कर्षणं तथा ॥ क्षेपणं च त्वरायुक्तो बाणस्य कुरुते तु यः ॥२६॥नित्याभ्यासवशात्तस्य शीघ्रसंधानता भवेत् ॥ अथ दूरपातित्वम् ॥ मुष्ट्या पताकया बाणं स्त्रीचिह्नं दूरपातनम्॥२७॥ अथ दृढभेदिता॥प्रत्यालीढे कृते स्थाने ह्यधःसंधानमाचरेत्॥दर्दुरस्थानमास्थाय ह्यूर्द्ध्वं धारणमाचरेत्॥२८॥ स्कंधन्यायेन वज्रस्य मुष्ट्या पुंमार्गणेन च ॥ अत्यंतसौष्ठवा बाह्वोर्जायते दृढभेदिता॥२९॥अथ हीनगतयः । सूचीमुखा मीनपुच्छा भ्रमरी च तृतीयका ॥ शराणां गतयस्तिस्रः प्रशस्ताः कथिता बुधैः ॥१३०॥ सूचीमुखा गतिस्तस्य सायकस्य प्रजायते ॥ पत्रं विलो-

किलं यस्य ह्यथवा हीनपत्रकम्॥३१॥ कर्करोतं तु चापेन यः कृष्टो हीनमुष्टिना॥मत्स्यपुच्छा गतिस्तस्य सायकस्य प्रकीर्त्तिता॥३२॥ भ्रमरी कथिता ह्येपा सद्भिस्तु श्रमकर्मणि॥ ऋजुत्वेन विना याति क्ष्येप्यमाणस्तु सायकः॥ ३३ ॥ अथ वाणानां लक्ष्यस्खलनगतयः॥ वामगा दक्षिणा चैव ऊर्द्धगाऽधोगमा तथा॥चतस्रो गतयः प्रोक्ता वाणस्खलनहेतवः॥ ३४ ॥ कंपते गुणमुष्टिस्तु मार्गणस्य तु पृष्ठतः॥ संमुखी स्याद्धनुर्मुष्टिस्तदा वामे गतिर्भवेत्॥३५॥ ग्रहणं शिथिलं यस्य ऋजुत्वेन विवर्जितम्॥ पार्श्वे तु दक्षिणं याति सायकस्य न संशयः॥३६॥ऊर्द्ध्वं भवेच्चापमुष्टिर्गुणमुष्टिरधो भवेत्॥ स मुक्तो मार्गणो लक्ष्यादूर्द्ध्वं याति न संशयः॥३७॥ मोक्षणे चैव वाणस्य चापमुष्टिरधो भवेत्॥गुणमुष्टिर्भवेदूर्द्ध्वं तदाऽधोगामिनी गतिः॥३८॥ अथ शुद्धगतयः। लक्ष्यवाणाग्रदृष्टीनां संगतिस्तु यदा भवेत्॥तदानीं मुंचितो वाणो लक्ष्यान्न स्खलति ध्रुवम्॥ ३९॥ निर्दोपः शब्दहीनश्च समसुष्टिद्वयोज्झितः॥ भिनत्ति दृढवेध्यानि सायको नास्ति संशयः॥१४०॥स्वाकृष्टस्तेजितो यश्च सुशुद्धो गाढमुष्टितः॥ नरनागाश्वकायेषु न तिष्ठति स मार्गणः॥ ४१ ॥ यस्य तृणसमा वाणा यस्येंधनसमं धनुः॥ यस्य प्राणसमा मौर्वी स धन्वी धन्विनां वरः॥ ४२॥ अथ दृढचतुष्कम्॥ अयश्चर्म घटश्चैव मृत्पिण्डश्च चतुष्टयम्॥ यो भिनत्ति न तस्येषुर्वज्रेणाऽपि विदार्य्यते॥ ४३॥ सार्द्धांगुलप्रमाणेन लोहपत्राणि कारयेत्॥ तानि भित्त्वैकवाणेन दृढघाती भवेन्नरः॥४४॥चतुर्विंशतिचर्माणि यो भिनत्तीषुणा नरः॥तस्य वाणो गजेंद्रस्य कायं निर्भिद्य गच्छति॥४५॥भ्राम्यज्जले घटो वेध्यश्चक्रे मृत्पिण्डकं तथा॥भ्रमंतं वेधयेद्यो हि दृढभेदी स उच्यते॥४६॥ अयस्तु काकतुंडेन चर्म चारामुखेन हि॥ मृत्पिण्डश्च घटश्चैव विध्येत्सूचीमुखेन हि॥ ४७॥ अथ चित्रविधिः॥ वाणभंग करावर्त्ते

चंडीं गुरुं शस्त्राणि वाजिनः ॥ ६४ ॥ विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा कुमारीं भोजयेत्ततः॥दिव्यै पशुबलिं दद्याद्धृष्टो वादित्रमंगलैः ॥६५॥ ततस्तु साधयेन्मंत्रान्वेदोक्तान्वागमोदितान्॥ अस्त्राणां कर्मसिद्ध्यर्थं जपहोमविधानतः॥६६॥ब्राह्मं नारायणं शैवमैंद्रं वायव्यवारुणे ॥ आग्नेयश्चापरास्त्राणि गुरुदत्तानि साधयेत् ॥ ६७ ॥ मनोवाक्कर्मभिर्भाव्यं लब्धास्त्रेण शुचिष्मता ॥ अपात्रमसमर्थं च दहन्त्यस्त्राणि पूरुषम् ॥ ६८ ॥ प्रयोगं चोपसंहारं यो वेत्ति स धनुर्द्धरः ॥ सामान्ये कर्मणि प्राज्ञो नैवास्त्राणि प्रयोजयेत् ॥ ६९ ॥ अथ स्कांदोक्तकतिचिदस्त्रस्वरूपमप्युच्यते॥अथास्त्राणि प्रवक्ष्यामि सावधानोऽवधारय॥ब्रह्मास्त्रं प्रथमं प्रोक्तं द्वितीयं ब्रह्मदण्डकम् ॥७०॥ ब्रह्मशिरस्तृतीयं च तुर्यं पाशुपतं मतम्॥वायव्यं पंचमं प्रोक्तमाग्नेयं षष्ठकं स्मृतम् ॥ ७१ ॥ नारसिंहं सप्तमं च तेषां भेदा ह्यनंतकाः ॥ ससंहारं सविज्ञेयं शृणु द्रोण यथातथम् ॥ ७२ ॥ वेदमात्रा सर्वशस्त्रं गृह्यते दीप्यतेऽथवा ॥ तत्प्रयोगं शृणु प्राज्ञ ब्रह्मास्त्रं प्रथमं शृणु ॥ ७३ ॥ दादिदन्तां च सावित्रीं विपरीतां जपेत्सुधीः॥ जप्त्वा पूर्वां निखर्वं चाभिमंत्र्य विधिवच्छरम् ॥ ७४ ॥ क्षिपेच्छत्रुषु सहसा नश्यंति सर्वजातयः ॥ बाला वृद्धाश्च गर्भस्था ये च योद्धुं समागताः ॥ ७५ ॥ सर्वे ते नाशमायांति मम चैव प्रसादतः॥यथाक्रमं दादिदंतं जपेत्संहारसिद्धये ॥ ७६ ॥ तस्य स्वरूपम् ॥ ॐ द्यादचोप्रनोयोयेधिहिमधीस्यवदेर्गोभण्यंरेवंतुविसतद्स्वोवर्भुभूरेम् ॥ इति प्रयोगः ॥ अथसंहारः॥ॐ भूर्भुवःस्वःतत्सवितुर्वरेण्यंभर्गोदेवस्यधीमहि धियोयोनःप्रचोदयात्॥इति संहारः॥ब्रह्मदंडं प्रवक्ष्यामि प्रणवं पूर्वमुच्चरेत् ॥ ततः प्रचोदयाज्ज्ञेयं ततो नो यो धियः क्रमात् ॥ ७७ ॥ ततो धीमहि देवस्य ततो भर्गो वरेणियम् ॥ सवितुस्तत्प्रयोक्तव्यममुकशत्रुं तथैव च ॥ ७८ ॥ ततो हनहन हुंफट् जप्त्वा पूर्वं

द्विलक्षकम् ॥ अभिमंत्र्य शरं तद्वत्प्रक्षिपेच्छत्रुषु स्फुटम् ॥८१॥ नश्यंति शत्रवः सर्वे यमतुल्या अपि ध्रुवम् ॥ एतदेव विपर्यस्तं जपेत्संहारसिद्धये ॥ ८२ ॥ ब्रह्मशिरः प्रवक्ष्यामि प्रणवं पूर्वमुच्चरेत् ॥ धियो यो नः प्रचोदयाद्भर्गो देवस्य धीमहि ॥ ८३ ॥ तत्सवितुर्वरेणियं शत्रून्मे हनहनेति च ॥ हुंफट् चैव प्रयोक्तव्यं क्षिपेद्ब्रह्मशिरस्ततः ॥ ८४ ॥ पुरश्चर्य्यां पुरः कृत्वा त्रिलक्षं नियतः शुचिः ॥ नश्यंति सर्वे रिपवः सर्वे देवासुरा अपि ॥ ८५ ॥ इदमेव विपर्यस्तं प्रयोक्तव्यं विकर्षणे॥अतः परं प्रवक्ष्यामि शस्त्रं पाशुपतं मम॥८६॥यस्य विज्ञानमात्रेण नश्यंति सर्वशत्रवः॥ दादिदन्ताञ्च सावित्रीं प्रोच्य प्रणवमेव च ॥ ८७ ॥ श्रींपशुहुंफट् अमुकशत्रून् हनहन हुंफट् ॥ जप्त्वा पूर्वं द्विलक्षञ्च ततः पाशुपतं क्षिपेत् ॥ ८८॥ पुनस्तदेव व्यस्तं स्यात्संहारे तां नि योजयेत्॥ एतत्पाशुपतं शस्त्रं सर्वशत्रुनिवारणम्॥८९॥ वच्मि वायव्यमस्त्रं ते येन नश्यंति शत्रवः॥ ॐवायव्यवायव्ययाण्यौवायियवातथा ॥ १९० ॥ अमुकशत्रून्हनहन हुंफट् चैव प्रकीर्त्तयेत् ॥ पूर्वमेव तथा जप्त्वा नियुतद्वितयं तथा॥९१॥पुनः संहाररूपेण संहारं च प्रकल्पयेत् ॥ अस्त्रं वायव्यकं नाम देवानामपि वारणम् ॥ ९२ ॥ आग्नेयं संप्रवक्ष्यामि यतः परभयं दहेत् ॥ ओमग्निस्त्यताद्दुर्भूं च शिवं वनाश्वाविणिच॥९३॥ह्रगाद्युतिदशरूपनः सद्वेति ततः क्रमात् ॥ हादतितोयतिरामतथा मसोहिवावान ॥ ९४ ॥ सुसेदवेदया च वदेत् ॥ अमुकादींस्ततो वदेत्॥ पूर्वोक्तां च पुरश्चर्य्यां कृत्वा शस्त्रेऽभियोजयेत् ॥ इमं मंत्रं पुनर्व्यस्तं संहारे चैव योजयेत्॥९५॥ ॐवज्रनखवज्रदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुंफट् ॥ पूर्वं जप्त्वा च लक्षं हि नारसिंहं च योजयेत् ॥९६ ॥ सिंहरूपास्ततो बाणाः पतंति शात्रवे वने॥ पूर्वोक्तेन प्रकारेण संहारं च प्रकल्पयेत् ॥ ९७ ॥ संक्षेपतो महाभाग तवोक्तानि महामते ॥ भेदा-

स्त्वेषां धनुर्वेदे ह्यनंताः परिकीर्त्तिताः ॥ ९८ ॥ इति केदारखंडे श्रीशिवेन द्रोणं प्रति प्रोक्तम् ॥ अथ शस्त्रवारणम्। हस्तार्के लांगलीकन्दो गृहीतस्तस्य लेपतः ॥ शूरस्य चरणे पुंसो दर्पं हरति कातरः ॥ ९९ ॥ गृहीत्वा योगनक्षत्रैरपामार्गस्य मूलकम् ॥ लेपमात्रेण वाराणां सर्वशस्त्रनिवारणम् ॥ २०० ॥ अधःपुष्पी शंखपुष्पी लज्जालुर्गिरिकर्णिका ॥ नलिनी सहदेवी च पुत्रमार्जारिका तथा ॥ १ ॥ विष्णुक्रांता च सर्वासां जटा ग्राह्या रवेर्दिने ॥ बद्धा भुजे विलेपाद्वा काये शस्त्रापवारकाः ॥ २ ॥ सर्पव्याघ्रादिसत्वानां भूतादीनां न जायते ॥ भीतिस्तस्य स्थिता यस्य मातरोऽष्टौ शरीरके ॥३॥ गृहीतं हस्तनक्षत्रे चूर्णं छुच्छुंदरीभवम् ॥ तत्प्रभावाद्गजः पुंसः संमुखं नैति निश्चितम् ॥४॥ च्छुछुंदरीश्रीफलपुष्पचूर्णैरालिप्तगात्रस्य नरस्य दूरात् ॥ आघ्राय गंधं द्विरदोऽतिमत्तो मदं त्यजेत्केसरिणो यथोग्रम्॥५॥श्वेताद्रिकर्णिकामूलं पाणिस्थं वारयेद्गजम्॥ श्वेतकंटारिकामूलं व्याघ्रादीनां भयं हरेत्॥ ६ ॥ पुष्यार्कोत्पाटिते मूले पाठाया मुखसंस्थिते ॥ देहं स्फुटति नो तीक्ष्णमंडलाग्रे रणे नृणाम्॥७॥ गंधार्य्या उत्तरं मूलं मुखस्थं संमुखागतम् ॥ शस्त्रौघं वारयेत्तत्र पुष्यार्के विधिनोद्धृतम् ॥ ८ ॥ विधिरुपवासः ॥ शुभ्रायाः शरपुंखाया जटा नीलीजटाऽथवा ॥ भुजे शिरसि वक्त्रे वा स्थिता शस्त्रनिवारिका ॥ भूपाहिचोरभीतिघ्नी गृहीता पुष्यभास्करे ॥९॥ अथ संग्रामविधिः। प्रथमं क्रियते स्नानं शुक्लवस्त्रावृतो भवेत् ॥ मंगल्यगीतसंयुक्तो देवविप्रांश्च पूजयेत् ॥ २१० ॥ क्षेत्रपालस्य नाम्ना च बलिं दद्याद्दिशो दश ॥ शस्त्राणि चापि संपूज्य रक्षामंत्रं स्मरेत्ततः॥११॥मंत्रश्च ॥ ओंमूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चांबिके ॥ घंटास्वनेन नः पाहि चापज्यानिस्वनेन च ॥१२॥ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चंडिके रक्ष दक्षिणे ॥ भ्रामणेनात्मशूलस्य चोत्तरस्यां तथे-

श्वरि ॥१३॥ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरंति ते ॥ यानि चात्यंतघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥१४॥ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके॥करपल्लवसंगीनि तैरस्मान्रक्ष सर्वतः॥१५॥ इतिरक्षामंत्रः ॥ दिव्यौषधीनां लेपश्च रक्षाबंधं च कारयेत् ॥ किञ्चिद्भुक्त्वा च पीत्वा च ततः सन्नाहमाचरेत् ॥ १६ ॥ सेनापतिं गजारोहांस्तांस्तांश्च सुभटांस्तथा ॥ मुख्यानन्यानपि धनैर्वस्त्रैश्च परितोषयेत् ॥ १७ ॥ पूर्वं सारथिमारोप्य रथे सज्जे ततः स्वयम् ॥ योजयेद्वाजिनः शुद्धान्सुसंतुष्टाञ्जितश्रमान् ॥ १८ ॥ रथे च धारयेद्भद्रं कार्मुकाणां चतुष्टयम् ॥ चतुःशतानि बाणानां तूणीराणि प्रपूरयेत् ॥ १९ ॥ खड्गं चर्म गदां शक्तिं परिघं मुद्गरं तथा ॥ नाराचान्परशुं कुंतं पट्टिशादींश्च धारयेत् ॥ २२० ॥ न रथा न गजा यस्य सोऽश्वमेव समारुहेत् ॥ कटिबद्धैकतूणीरः खड्गशक्तिधनुर्युतः ॥ २१ ॥ ततोऽर्जुनस्य नामानि विष्णुस्मरणपूर्वकम् ॥ जपेत्ततः प्रतिष्ठेत चतुरंगबलैर्युतः ॥ २२ ॥ लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ॥ येषां हृदिस्थो भगवान्मंगलायतनं हरिः ॥ २३ ॥ अर्जुनः फाल्गुनः पार्थः किरीटी श्वेतवाहनः ॥ बीभत्सुर्विजयः कृष्णः सव्यसाची धनंजयः ॥ २४ ॥ इन्द्रसूनुः कर्णहंता शिवशिष्यः कपिध्वजः ॥ नामान्येतानि युद्धादौ स्मृत्वा विजयमश्नुते ॥ २५ ॥ अथाक्षौहिणीसंख्या ॥ खद्वयं स्वरवस्विन्दुनेत्रैरक्षौहिणी मता ॥ २१८७०० ॥ अक्षौहिण्यां प्रदिष्टानां रथानां वर्मधारिणाम् ॥ २६ ॥ संख्या गणिततत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः ॥ उपर्यष्टौ शतान्याहुस्तथा भूयश्च सप्ततिः २१८७० ॥ २७ ॥ गजानां तु परीमाणमेतदेव प्रकीर्तितम् ॥ ज्ञेयं लक्षं पदातीनां सहस्राणि तथा नव ॥ २८ ॥ शतानि त्रीणि पंचाशच्छूराणां शस्त्रधारिणाम् ॥ पञ्चषष्टिसहस्राणि

तथाश्वानां शतानि च॥२९॥दशोत्तराणि षड् प्राहुः संख्यातत्वविदो जनाः॥२३०॥अथ महाक्षौहिणी ॥ खद्वयं निधिवेदाक्षिचंद्राक्ष्यग्निहिमांशुभिः ॥ १३'२१'२४'९'०० ॥ महाक्षौहिणिका प्रोक्ता संख्यागणितकोविदैः ॥ ३१ ॥ कोटयस्त्रयोदश प्रोक्ता लक्षाणामेकविंशतिः ॥ चतुर्विंशसहस्राणि तथा नव शतानिच ॥ ३२ ॥ महाक्षौहिणिकां प्राहुस्संख्यातत्वविदो जनाः ॥ ३३ ॥ महाक्षौहिणिकायां तु रथाःकोटिमिताः स्मृताः ॥ अश्वाश्चतुःकोटिमिता लक्षाण्येकादशैव च ॥ ३४ ॥ प्रोक्तानि नवतिस्तद्वदेवमेव गजा मताः ॥ गजाश्चतुःकोटिमिता लक्षाण्येकादशैव च॥३५॥ सप्तविंशसहस्राणि तथा नव शतानि च॥केचित्तु। महाक्षौहिणिकां प्राहुरिमां तत्त्वविदो जनाः ॥ ३६ ॥ महाक्षौहिणिकायां तु रथाः कोटिमिताः स्मृताः ॥ सप्तत्रिंशच्च लक्षाणि गीयंते तत्त्ववेदिभिः ॥३७॥ द्वादशैव सहस्राणि चत्वार्येव शतानि च ॥ प्रोक्तानि नवतिस्तद्वदेवमेव गजाः स्मृताः॥ ॥३८॥अश्वाश्चतुष्कोटिमिता लक्षाण्येकादशैव च॥सप्तत्रिंशत्सहस्राणि तथा शतचतुष्टयम् ॥ ३९ ॥ सप्ततिश्चैव संख्याताः प्रोच्यंते पत्तयस्ततः॥षट्कोट्योशीतिलक्षाणि पंचाधिकामितानि च॥२४०॥ द्विषष्टिश्च सहस्राणि तथा शतचतुष्टयम् ॥ पंचाशदिति संख्याता महाक्षौहिणिका बुधैः ॥ ४१ ॥ अथ व्यूहविधिः ॥ मुखे रथा गजाः पृष्ठे तत्पृष्ठे च पदातयः ॥ पार्श्वयोश्च हयाः कार्या व्यूहस्यायं विधिः स्मृतः ॥४२॥ अर्द्धचंद्रश्च चक्रश्च शकटं मकरं तथा ॥ कमलश्रेणिका गुल्मं व्यूहान्येवं प्रकल्पयेत् ॥ ४३ ॥ अथ युद्धविधिः ॥ ये राजपुत्राः सामन्ता आप्ताः सेवकजातयः ॥ तान्सर्वानात्मनः पार्श्वे रक्षार्थे स्थापयेन्नृपः ॥४४॥ यस्मिन्कुले यः पुरुषः प्रधानः स सर्वयत्नेन च रक्षणीयः ॥ तस्मिन्विनष्टे किल सारभूते न नाभिभंगे अरका वहंति ॥ ४५ ॥ क्षत्रं सारभूतां शूरं शस्त्र-

ह्यमनुरागि चेत् ॥ अपि स्वल्पं श्रिये सैन्यं वृथेयं मुंडमंडली ॥ ४६ ॥ अपि पञ्चशताः शूरा मृद्नंति महतीं चमूम् ॥ अथ वा यंच पट् सप्त विजयंतेऽनिवर्तिनः ॥ ४७ ॥ धनुःसंगतिसंशुद्धा वाजिनो मुखदुर्बलाः॥आकर्णपतिता योधाः संग्रामे जयनादिनः॥४८॥ परस्परानुरक्ता ये योधाः शार्ङ्गधनुर्द्धराः ॥ युद्धज्ञास्तुरगारूढास्ते जयंति रणे रिपून् ॥ ४९ ॥ एकः कापुरुषो दीर्णो दारयेन्महतीं चमूम् ॥ तद्दीर्णमनुदीर्यन्ते योधाः शूरतमा अपि ॥ २५० ॥ दुर्निवारतरा चैव ग्रभग्ना महती चमूः ॥ अपामिव महावेगस्त्रस्ता मृगगणा इव ॥ ५१ ॥ यस्तु भग्नेषु सैन्येषु विद्रुतेषु निवर्त्तते ॥ पदे-पदेऽश्वमेधस्य लभते फलमव्ययम् ॥ ५२ ॥ द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलभेदिनौ॥परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः॥५३॥ यत्रयत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ॥ अक्षयं लभते लोकं यदि क्लीबं न भाषते ॥ ५४ ॥ मूर्च्छितं नैव विकलं नाशस्त्रं नान्ययोधिनम् ॥ पलायमानं शरणं गतं चैव न हिंसयेत् ॥ ५५ ॥ भीरुः पलायमानोऽपि नान्वेष्टव्यो बलीयसा ॥ कदाचिच्छूरतां याति स रणे कृतनिश्चयः ॥ ५६ ॥ संभृत्य संहतां सेनां चतुरंगां महीपतिः॥ व्यूहयित्वाऽग्रतः शूरान्स्थापयेज्जयलिप्सया॥५७॥अल्पायां वा महत्यां वा सेनायामिति निश्चयः ॥ सर्वयोक्तृगणस्यैको जयलक्षण उच्यते ॥ ५८ ॥ पृष्ठेन वायवो वांति पृष्ठे भानुर्वयांसि च ॥ अनुप्लवन्ते मेघाश्च यस्य तस्य रणे जयः॥५९॥ अपूर्णेनैव मर्त्तव्यं संपूर्णेनैव जीवनम्॥ तस्माद्धैर्य्यं विधातव्यं हंतव्या परवाहिनी॥२६०॥ जिते लक्ष्मीर्मृते स्वर्गः कीर्त्तिश्च धरणीतले ॥ तस्माद्धैर्यं विधातव्यं हंतव्या परवाहिनी ॥ ६१ ॥ इति धनुर्वेदोद्धृतधनुर्वेदसारः ॥ एवं गांधर्वशास्त्रं भरतेन प्रणीतं तत्र नृत्यगीतवाद्यभेदेन बहुविधोऽर्थः प्रपंचितः ॥ देवताराधननिर्विकल्पकसमाध्यादिसिद्धिश्च गांधर्व-

वेदस्य प्रयोजनम् । गीतं गानशिक्षागीतनिर्माणम्।स्वरजातिरागभेदास्तालमात्रादिरचनाप्रकाराः । साधकबाधकस्वरादिमेलनपरिज्ञानञ्च 'स्वरगं पदगं चैव तथा लयगमेव चाचेतोवधानगं चैव गेयं ब्रूयुश्चतुर्विधम् ॥' स्वरादिभेदा अनंता रागाश्च भैरवश्रीरागादिभेदेन षोढाऽप्यवांतरभेदैरनन्ता एव । तालश्च क्रियामानं. क्रिययाऽऽवापनिष्क्रमादिकया मानं परिच्छेदः। लयश्च गीतवाद्यपादादिन्यासानां क्रियाकालयोः साम्यम् । वाद्यं घनं तथानद्धं ततं सुषिरमेव च। कांस्यपुष्करतंत्रीभिर्वेणुना च यथाक्रमम् ॥ एतदेवामरेणाप्युक्तं 'ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम् । वंशादिकं तु सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम्॥ चतुर्विधमिदं वाद्यम्'इति।तत्र' नृत्यं कृतानुकरणं नाट्यं तु नर्तकाश्रयम् । करणान्यंगहाराश्च विभावो भाव एव च॥अनुभावो रसाश्चेति संक्षेपान्नृत्यसंग्रहः॥'इति । करणानि साधनानि ॥ अंगहारोऽगविक्षेपः । विशेषेण भावयंत्युत्पादयंति रसमिति विभावाः । स्त्रीवसंतोद्यानादयः रसकारणानि । अनुभूयते लक्ष्यरस एभिरित्यनुभावाःकंपस्वेदादीनि रसकार्याणि भावाः सात्त्विकाःस्तंभादयो व्यभिचारिणश्च धृतिस्मृत्यादय एतैरुत्कर्षमारोप्यमाणोऽत्र व्यंजितः स्थायीभावो रत्यादिः शृंगाररसरूपो भवतीति तत्त्वम् ॥ अथ च किञ्चिद्गांधर्ववेदग्रंथरूपमपि ब्रूमः । प्रणम्य सर्वदेवेशं शिवं ब्रह्मादिकांस्ततः ॥ गांधर्वशास्त्रसंक्षेपः सारतोऽयं मयोच्यते ॥ १ ॥ यदुक्तं ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मग्रंथिश्च यो मतः ॥ तन्मध्ये संस्थितः प्राणः प्राणाद्वह्निसमुद्भवः ॥ २ ॥ वह्निमारुतसंयोगान्नादः समुपजायते ॥ न नादेन विना गीतं न नादेन विना स्वरः ॥ ३ ॥ न नादेन विना वाद्यं नाट्यं नादं विना न हि न नादेन विना नृत्यं तस्मान्नादात्मकं जगत् ॥ ४ ॥ पवनाज्जायते नादो नादतः स्वरसंभवः ॥ स्वरात्संजायते रागः

स रागो जनरंजकः ॥ ५ ॥ पदस्थस्वरसंघातस्तालेनानुमितस्तथा॥ प्रयुक्तश्चावधानेन गांधर्वमभिधीयते ॥ ६ ॥ तदेतन्नारदादिभ्यो दत्त-मादौ स्वयंभुवा ॥ विधिवन्नारदेनादः पृथिव्यामवधारितम्॥७॥मृगो वेत्ति शिशुर्वेत्ति वेत्ति गीतरसं फणी॥यत्ते गीते विलीनाः स्युः सर्वथा चित्तवृत्तिभिः ॥ ८ ॥ अपि ब्रह्मपदानंदादिदमेवाधिकं ध्रुवम् ॥ जहार नारदादीनां चेतांस्यन्यस्य का कथा ॥९॥ इति गीतप्रशंसा॥ अथ सुगीतलक्षणम् ॥ सुस्वरं सरसं चैव सरागं मधुराक्षरम् ॥ सालंकारप्रमाणञ्च षड्विधं गीतलक्षणम् ॥ १० ॥ स्वरेण पदसंयुक्तं छंदसा च सुसंयुतम् ॥ सुमारुतं सुतालं च सुगीतं तेन भण्यते ॥११॥ इति सुगीतम् ॥ वाङ्मातुरुच्यते गेयं धातुरित्यभिधीयते॥ वाचा च गेयं कुरुते यः स वागुपकारकः ॥ १२ ॥ शब्दानुशास-नज्ञानमभिधानप्रवीणता ॥ गणच्छंदोरुवेदित्वमलंकारेषु कौश-लम् ॥ १३ ॥ तौर्यत्रितयचातुर्य्यं हृव्यशारीरपालितम् ॥ लयता-लकलाज्ञानं विवेकोनेककाकुषु ॥ १४ ॥ देशीरागेषु विज्ञत्वं वाक्पटुत्वं सभाजयः ॥ इति वागुपकारस्य गुणाः प्रतिनिरूपिताः ॥१५॥अधमो मातुकारश्च धातुकारश्च मध्यमः॥धातुमातुक्रियाकार उत्तमः परिकीर्तितः ॥ १६ ॥ अधमो लक्षणेन स्यान्मध्यमो लक्ष्यमाचरन् ॥ स लक्षणेन संयुक्त उत्तमः परिकीर्तितः ॥१७॥ इति वागुपकारलक्षणानि ॥ अथ शिष्यकारः ॥ त्वरितः शिष्यको यस्तु सकंठो मधुरस्वरः ॥ रागतालसमोपेतः शिष्यकारः स उच्य-ते ॥ १८ ॥ अथ गायनलक्षणम् ॥ प्रबंधमात्रनिष्णातो विविधा-लापकारकः ॥ रागरागांगभाषांगक्रियागेयांगकोविदः ॥ गायनो गीतशास्त्रज्ञैर्भण्यते सर्वसंमतः ॥ १९ ॥ अथ गायनदोषाः ॥ कंपितं भीतमुद्घुष्टमव्यक्तमनुनासिकम् ॥काकस्वरं शिरःस्थं च तथा स्था-नविवर्जितम् ॥ २० ॥ विस्वरं विरसं चैव विश्लिष्टं विषमाहतम् ॥

व्याकुलं तालहीनश्च गातुर्दोषाश्चतुर्दश ॥२१॥ अथ सालगसूडः ॥
हिमवत्कन्यकाप्रीत्यै देवदेवेन शंभुना ॥ शुद्धरागाद्विनिष्पीड्य
सरसं सालगं कृतम् ॥ २२ ॥ शुद्धरागसमुत्पन्नं छायालगमनोहरम्॥
अबलाबालगोपालक्षितिपालैः सुगीयते ॥ २३ ॥ आद्यो ध्रुवस्ततो
मंठः प्रतिमंठो निशारुकः ॥ अड्डतालस्ततो रास एकताली च
संमता ॥ २४ ॥ अथैषु ध्रुवकलक्षणम् ॥ न विवेकं विना ज्ञानं
ध्यानं नात्मरसं विना ॥ श्रद्धया न विना दानं गानं न ध्रुवकं
विना ॥ २५ ॥ उत्तमः षट्पदैः प्रोक्तो मध्यमः पंचभिस्तथा ॥
कनिष्ठस्तु चतुर्भिः स्यादेवं स्युर्ध्रुवकास्त्रिधा ॥ २६ ॥
एकधातुर्द्विखंडः स्याच्छत्रोद्ग्राहस्ततः परम् ॥ तृतीयं किञ्चिदुच्चं
स्यात्खंडं गमकशोभनम् ॥२७॥ ततो द्विखंड आभोगस्तृतीयं त-
स्य खंडकम् ॥ उच्चं गमकयुक्तं वा नवा स्वाम्यंकितं च तत्॥२८॥
उद्ग्राहस्याद्यखंडे च न्यासः स ध्रुवको मतः॥एवं हि षट्पदः प्रोक्त
उत्तमो ध्रुवको बुधैः ॥ २९ ॥ पंचपादस्य तूद्ग्राहे पदयुग्मं प्रशस्य-
ते ॥ तृतीयं चोच्चखंडं स्याद्द्विरभ्यस्तमिदं त्रयम् ॥३०॥ आभोग-
श्चैकखंडः स्याद्द्वितीयं चोच्चखंडकम् ॥ तुल्यनामांकितं चैतदिति
मध्यमलक्षणम् ॥३१॥ चतुष्पादस्य तूद्ग्राहे पदैकं स्यात्ततः परम्॥
किंचिदुच्चं द्वितीयं स्याद्द्विरभ्यस्तमिदं द्वयम्॥३२॥आभोगे च तथै-
कं स्यात्किंचिदुच्चं द्वितीयकम्॥अभुनामांकितं चैतत्कनिष्ठस्येति ल
क्षणम्॥३३॥षण्णां पदानां वा वर्णनियमो वा द्वयोर्भवेत्॥पदयोर्व-
र्णनियमो ध्रुवाणां हि द्विधा गतिः ॥ ३४ ॥ पदद्वये यदा वर्णनि-
यमः क्रियते बुधैः ॥ तदा पदानि चान्यानि भवंति नियमं विना
॥ ३५ ॥ एकादशाक्षरात्पादादेकैकाक्षरवर्द्धितैः ॥ खंडैर्ध्रुवाः षोड-
श स्युः षड्विंशत्यक्षरावधिः ॥ ३६ ॥ रमतालादिवर्णैश्च ध्रुवाणां ल-
क्षणं शुभम् ॥ प्रोक्तं रागार्णवे सर्वं संक्षेपादिह कथ्यते ॥३७॥ अथ

षोडशध्रुवाणां नामानि ॥ जयन्तः शेखरोत्साहौ ततो मधुरनिर्मलौ ॥ कुंतलः कमलाचारो नंदनश्चंद्रशेखरः ॥ ३८ ॥ कामदो विजयाक्षश्च कंदर्पजयमंगलौ ॥ तिलको ललितश्चैव ध्रुवाः षोडश कीर्तिताः॥३९॥आदितालो जयन्तः स्याच्छृंगाररससंयुतः ॥ रुद्रसंख्याक्षरपदैरायुर्वृद्धिकरः परः ॥ ४० ॥ एक एव लघुर्यस्मिन्नादितालः स कथ्यते ॥ सयथा(।ऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽ) इति ॥ द्वादशाक्षरपादोन्यो भागैकफलकृत्प्रभोः ॥ ४१ ॥ हंसके च रसे वीरे गीयते शेखराह्वयः ॥ लघुर्गुरुर्लघुर्यत्र स तालो हंसकः स्मृतः ॥ ४२ ॥ स यथा (।ऽ।) इति॥उत्साहः स्याद्रसे साम्ये ताले कंदुकसंज्ञके॥वंशाभिवृद्धिकृत्पादस्त्रयोदशमिताक्षरः ॥४३॥ लघुद्वयं विरामान्ते ताले कंदुकसंज्ञके॥स यथा (।।) गार्ग्यतालेन गीयेत कारुण्ये मधुरो ध्रुवः ॥ ४४ ॥ अंघ्रिर्द्विसप्तभिर्वर्णैरानंदफलदः सदा ॥ चतुर्द्रुतो विरामांतस्तालोऽयं गार्ग्यसंज्ञकः॥४५॥स यथा(० ० ०) क्रीडाताले ध्रुवः स स्यात्तिथिवर्णांघ्रिनिर्मलः ॥ शृंगाररससंयुक्तः श्रोतुस्तेजोविवर्द्धनः ॥ ४६ ॥ एक एव द्रुतो यस्मिन् क्रीडातालः स कथ्यते ॥ स यथा(०)वर्णैः षोडशभिः पादः कुंतलो लघुशेखरे ॥ ४७ ॥ इष्टार्थदः शौर्यदः स्यादद्भुताख्यरसान्वितः॥लघुर्गुरुर्भवेद्यत्र स भवेल्लघुशेखरः॥४८॥स यथा (।ऽ) वर्णैश्च सप्तदशकैरंघ्रिः शृंगारके रसे॥कमलो मलयाख्ये वै स्यायुर्वृद्धिकरः परः॥४९॥मलयाख्ये भवेत्ताले गुरुर्लघुरतो गुरुः ॥स यथा (ऽ।ऽ) चारोष्टादशवर्णांघ्रिर्यशोहर्षप्रदो ध्रुवः ॥ फणिभाषायुतो वीरे रसे कंदुकतालके॥५०॥लघुद्वयं विरामांते ताले कंदुकसंज्ञके॥स यथा(ऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽ।।) नंदद्वयेन्दुवर्णांघ्रिर्नंदनः सर्वसिद्धिदः॥५१॥पूर्णेशृंगारवीराभ्यां कंदुके च विधीयते ॥ लघुद्वयं विरामांततालः कंदुकसंज्ञकः ॥५२॥स यथा(ऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽऽ ॥ ) कल्याणदो भवेद्वीरे ध्रुवकश्चंद्रशेखरः॥दिग्विवर्णपदं यत्र त्रिपुटेति वि-

धीयते॥८३॥द्रुतद्वयं लघुद्वंद्वं ताले त्रिपुटसंज्ञके॥स यथा(००॥)एक-विंशतिवर्णांघ्रिर्भवेच्छृंगारके रसे॥८४॥कामदोभीष्टदः पुंसां तालके तुरलीलके॥द्रुतद्वयं लघु चांते तालःस्यात्तालकेतुकः॥स यथा (००।) विजयाख्यो ध्रुवः स स्याद्द्वाविंशत्यक्षरांघ्रिकः ॥ ८५ ॥ सन्निपातेन संयुक्तः शृंगारेऽभीष्टदो रसे ॥ एक एव गुरुर्यत्र सन्निपातः स कथ्यते॥८६॥स यथा (०ऽ) त्रयोविंशतिवर्णांघ्रिर्ध्रुवः कंदर्पसंज्ञकः॥ वीरे वा करुणे वा स्यात्खंडताले विधीयते ॥८७॥ द्रुतमेकं भवेद्यत्र तालोऽयं खंडसंज्ञकः॥ स यथा ( ० ) द्विघ्रद्वादशवर्णांघ्रिस्तालो वा खंडके भवेत् ॥ ८८ ॥ वीरशृंगाररसयोर्जयकृज्जयमंगलः ॥ द्रुतद्वयं विरामांतं लघुनैकेन रूपकः ॥८९॥ स यथा ( ०० ) पंचविंशाक्षरैः पादो यस्यासौ ललिताह्वयः ॥ ताले वाचपुटे गेयो वीरेवाप्यद्भुते-ऽपि वा ॥ ९० ॥ तालं वाचपुटं ज्ञेयं गुरुर्लघुयुगं गुरुः ॥ स यथा (ऽ॥ऽ) यः षड्विंशतिवर्णांघ्रिः स स्यात्सर्वार्थसिद्धिदः ॥ ९१ ॥ ललितश्चपुटाख्ये च ताले शृंगारपोषकः ॥ ताले च चपुटे ज्ञेयं गुरुद्वंद्वं लघुस्ततः ॥ ९२ ॥ स यथा (ऽऽ।) इति षोडश ध्रुवाः ॥ अथ मंठकलक्षणम् ॥ उद्ग्राहो ध्रुपदश्च स्यादाभो-गस्तदनंतरम् ॥ नियमास्त्रिविधो ज्ञेयो मंठकस्य विचक्षणैः ॥ ९३ ॥ जयप्रियः कलापश्च कमलस्सुंदरस्तथा ॥ वल्लभो मंगलश्चेति षडे-ते मंठका मताः ॥ ९४ ॥ लघुर्गुरुर्लघुर्यत्र स तालो हंसकः स्मृतः ॥ तालश्चायं रसे वीरे कर्तव्यो जयमंठके ॥ ९५ ॥ हंसतालः ( ।ऽ। ) रंगताले तु विज्ञेयो लघुश्चैको गुरुद्वयम् ॥ कलापो मंठकस्तेन रसे रौद्राभिधानके ॥९६॥ रंगतालः ( ।ऽऽ ) लघुद्वयं गुरुश्चैकस्तालोऽ-यं दर्पणः स्मृतः ॥ आरंभस्ताले रसे शांते कमलो मंठको भवेत् ॥ ९७ ॥ दर्पणतालः ( ॥ऽ ) गुरुद्वयं लघुद्वंद्वं ताले त्रिपुटसंज्ञके ॥ सुंदरो गीयते तेन वीरे वाप्यद्भुते रसे ॥ ९८॥ त्रिपुटतालः ( ऽऽ॥ )

मलयाह्वे भवेत्ताले गुरुर्लघुरतो गुरुः ॥ वल्लभो मंठको गेयस्ताले- स्मिन्करुणे रसे ॥६९॥ मलयतालः ( ऽ।ऽ ) गुरुर्लघुद्वयं यत्र भृंग- तालः स कथ्यते ॥ मंगलो मंठको ज्ञेयो रसे चाद्भुतसंज्ञके ॥ ७० ॥ भृंगतालः ( ऽ।। ) इति षण्मंठकाः ॥ अथ प्रतिमंठकलक्षणम् ॥ तालश्चाप्यमरश्चैव विचारः कुंदसंज्ञकः ॥ चत्वारः कथिताश्चेति प्रतिमंठास्तु शंभुना ॥ ७१ ॥ विरामांतं द्रुतद्वंद्वं गुरुश्चैकस्ततः परम् ॥ सुरंगताले गातव्यस्तालश्च प्रतिमंठकः ॥ ७२ ॥ सुरंगतालः ( ००ऽ ) गुरुरेको भवेद्यत्र सन्निपातः स कथ्यते ॥ अमरप्रतिमंठोऽ- सौ विद्वद्भिस्तेन गीयते ॥ ७३ ॥ सन्निपातः ( ऽ ) लघुद्वंद्वं विरा- मांते ताले कंदुकसंज्ञके ॥विरागो गीयते तेन विलंबश्च लयो भवेत् ॥ ७४ ॥ कंदुकतालः ( ०० ) द्रुतमेकंभवेद्यत्र स तालः खंडसं- ज्ञकः ॥ द्रुतंलयेन गातव्यः कुंदश्च प्रतिमंठकः ॥ ७५ ॥ खंडतालः ( ० ) अथ निःसारुकलक्षणम् ॥ कांतारः समराख्यश्च वैकुंठो वांछितस्तथा ॥ विशालश्च तथानंदः षोढा निःसारुको भवेत् ॥ ७६ ॥ लघुद्वयं विरामांते ताले कंदुकसंज्ञके॥ द्रुतं लयेन गातव्यः कांतारो भवति स्फुटः॥७७॥कंदुकः(।।) लघु- द्वयं विरामांते ताले कंदुकनामनि॥समरो गीयते तेन मध्यमश्च ल- यो भवेत् ॥७८॥ द्रुतद्वंद्वं गुरुद्वंद्वं भवेत्ताले मुकुंदके ॥ अनेन गेयो वैकुंठो ह्ययो निःसारुकः सदा॥७९॥मुकुंदः(००ऽऽ)लघुत्रयं द्रुतद्वंद्वं ताले सरभलीलके॥अयं निःसारुको ज्ञेयो वांछितो वांछितप्रदः ८०॥ विशालोप्येतादृश एव॥द्रुतमेकं भवेद्यत्र क्रीडातालः स कथ्यते ॥ अनेन गीयते नंदो नित्यं निस्सारुकोत्तमः ॥ ८१ ॥ क्रीडातालः। अथपट्टताललक्षणम्॥शकः कोलश्च विजयश्चारो निःशंक एव च । मकरंदः परो ज्ञेयस्त्वड्डतालश्चैव षड्विधः॥८२॥लघुर्गुरुश्च भवति लघुशेखरतालके॥ शको ह्यमरतालश्च गीयते तेन कोविदैः॥८३॥

लघुशेखरः ( ।ऽ ) द्रुतद्वयं विरामांतं लघुनैकेन संयुतम् ॥ जयतालो भवेत्तेन गेयः शांते बुधोत्तमैः ॥ ८४ ॥ विजयतालः ( ००। ) उमातिलकताले तु द्रुतौ लघुगुरू स्मृतौ ॥ चाराख्यस्त्वड्डतालः स्याद्विद्वद्भिस्तेन गीयते ॥ ८५ ॥ चाराख्याड्डतालः ( ००।ऽ ) द्रुतमेकं द्रुतौ द्वौ च वनमालिनि तालके ॥ निःसंगस्त्वड्डतालः स्याद्बुधैस्तेनैव गीयते ॥८६॥ वनमाली (ऽ००) राजतालाभिधाने तु लघुद्रुतौ लघुः स्मृतः ॥ अनेन तु समायुक्तो मकरंदस्त्वड्डतालकः ॥८७॥ राजतालः (।०।) अथ रासकलक्षणानि ॥ चतुर्द्धा रासकाः प्रोक्ता गीतवाद्यविशारदैः ॥ विनोदो वरदो नंदः कंबुजश्चेति कीर्त्तितः ॥ ८८ ॥ एक एव लघुर्यत्र ह्यादितालः स कथ्यते ॥ विनोदो रासकस्तेन गातृश्रोतृसुखावहः ॥ ८९ ॥ आदितालः ( । ) लघुद्रुतौ गुरुर्यत्र तालोयं गजलीलकः ॥ वरदो रासको गेयः श्रोतॄणां च सुखावहः ॥९०॥ गजलीलकः ( ।०ऽ ) द्रुतश्च गुरुरेकत्र तालो विद्याधरः स्मृतः ॥ यत्रासौ रासको नंदो गीयतेऽभ्युदये शुभः ॥ ९१ ॥ विद्याधरः ( ऽऽ ) राजविनोदे ताले स्याद्गुरुद्वंद्वमथ द्रुतः ॥ रासकः कंबुजस्तेन गीयते गीतिकोविदैः॥९२॥ राजविनोदः ( ऽऽऽ ) अथैकतालीलक्षणम् ॥ एकताली त्रिधा प्रोक्ता गीतवाद्यविशारदैः॥रामा च चंद्रिका तद्वद्विपुलेत्यथ लक्षणम्॥९३॥ द्रुतमेकं भवेद्यत्र तालोऽयं खंडसंज्ञितः ॥ रामा तनैकताले तु गीयते गायकोत्तमैः॥ ९४ ॥ खंडतालः (०) गुरुद्वयं भवेद्यत्र तालो ललितसंज्ञितः॥चंद्रिका चैकताली स्यात्तेन सौभाग्यदायिनी॥९५॥ ललितः (ऽऽ) कोकिलाप्रियताले वै द्रुतत्रयमुदाहृतम् ॥ विपुला चैकताली स्यात्तेन गीतज्ञसंमता॥९६॥कोकिलाप्रियः ( ००० ) ॥ अथाष्टौ ध्रुवाः ॥ जयंतश्च तथोत्साहो नंदनश्चंद्रशेखरः॥कामदो विजयाख्यश्च कंदर्पजयमंगलौ ॥९७॥ अष्टौध्रुवाः समाख्याता राजयो-

म्याः सदा बुधैः ॥९८॥ इति तालगरुडः ॥ अथ शुद्धसूढनामानि ॥ एलाकरणडेकीभिर्वर्त्तिन्याद्रूमडेनच ॥ लंभरासेकतालीभिः शुद्धसूढोष्टभिः स्मृतः ॥ ९९ ॥ शुद्धसूढोन्यदेशेषु गीयते विरलैः क्वचित् । अतो न विस्तरो लोके दक्षिणेषु च गीयते ॥१००॥ अथ रूपकम् ॥ उद्ग्राहश्चान्यधातुः स्याद्ध्रुवकश्चान्यधातुकः ॥ मेलापकोन्यधातुः स्यादाभोगश्चान्यधातुकः ॥ चतुर्द्धातुकमेतद्धि रूपकं कीर्त्यते बुधैः ॥ १ ॥ अथगमकम् ॥ स्फुरितं कंपितं लीनं स्तिमितांदोलितावपि ॥ आहतं त्रिकभिन्नं च गमकं सप्तधा स्मृतम् ॥ २ ॥ अथ प्रत्यंतरम् ॥ उद्दिष्टं वस्तुरागादौ किंचिदाधिक्यचिंतितम् ॥ तद्धातुमातुनिष्पन्नं प्रत्यंतरमितीरितम् ॥ ३ ॥ पूर्वरूपकसंसिद्धं छायासंस्कृतरूपकम् ॥ तत्स्थानं प्रोच्चनीचं च खलोत्तारं प्रकीर्त्तितम् ॥ ४ ॥ अथ स्वरादिकथनम् ॥ सामवेदात्स्वरा जाताः स्वरेभ्यो ग्रामसंभवः ॥ ग्रामेभ्यो जातयो जाता जातिभ्यो रागसंभवः ॥ ५ ॥ देशीरागाः स्वरा वैते विख्याता देशरूढितः ॥ ग्रामरागोद्भवा भाषा भाषाभ्यश्च विभाषिकाः ॥ ६ ॥ विभाषाभ्योऽपि संजातास्तथैवांतरभाषिकाः ॥ सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः ॥ ७ ॥ द्वाविंशतिश्च श्रुतय एतेभ्यो रागसंभवः ॥ षड्जर्षभकगांधारमध्यपञ्चमधैवताः ॥ निषादश्चेत्यमी सप्त तंत्रीकंठोत्थिताः स्वराः ॥ ८ ॥ षड्जादयः स्वराः सप्त ग्रामौ च षड्जमध्यमौ ॥ केचिद्गांधारमप्याहुस्स तु नेहास्ति भूतले ॥ ९ ॥ चतुर्दशैव श्रुतयस्तावन्मानाश्च मूर्च्छनाः ॥ गीयन्ते मानवैर्भूमावन्यास्तु त्रिदशालये ॥११०॥ स्वयं यो राजते नादः स स्वरः परिकीर्त्तितः॥स्वरैश्च निखिलं व्याप्तं तद्विज्ञेयं पृथक्पृथक् ॥११॥ उच्चैर्निषादगांधारौ नीचैर्ऋषभधैवतौ ॥ शेषास्तु स्वरिता ज्ञेयाः षड्जमध्यमपंचमाः ॥ १२ ॥ षड्जं वदेन्मयूरो हि ऋषभं चातको वदेत्॥

अजा वदति गांधारं क्रौंचो वदति मध्यमम् ॥ १३ ॥ पुष्पसाधारणे काले कोकिलः पञ्चमं वदेत् ॥ दर्दुरो धैवतं चैव निषादश्च वदेद्गजः ॥ १४ ॥ हास्यशृंगारयोः कार्य्यौ स्वरौ पंचममध्यमौ ॥ षड्जर्षभौ तथा ज्ञेयौ वीररौद्राद्भुते रसे॥१५॥गांधारश्च निषादश्च कर्त्तव्यौ करुणारसे ॥ धैवतश्चैव कर्त्तव्यो बीभत्से च भयानके॥१६॥ चतुःश्रुतिस्त्रिश्रुतिश्च द्विश्रुतिश्च चतुःश्रुतिः ॥ चतुःश्रुतिस्त्रिश्रुतिश्च द्विश्रुतिश्चेति ते स्वराः ॥ १७ ॥ अथ षट्त्रिंशत्प्रवर्त्तकरागीरुच्यते ॥ भैरवः पञ्चमो नाटो मल्लारो गौडमालवः ॥ देशापश्चेति षड् रागाः प्रोच्यंते लोकविश्रुताः ॥ १८ ॥ वंगपालो गुणकारी मध्यमादिर्वसंतकः ॥ धन्याश्रीश्चेति पंचैते रागा भैरवसंश्रिताः॥१९॥ललिता गुर्जरी देशी विराटी रामकृत्तथा॥मता रागार्णवे रागाः पंचैते पंचमाश्रयाः ॥ १२० ॥ नटनारायणः पूर्वं गांधारः सालगस्तथा ॥ तथा कर्णाटकेदारौ पश्चैते नाटसंश्रयाः॥२१॥ मेघमल्लारिका मालकौशिकः प्रतिमंजरी ॥ आसावरी च पंचैते रागा मल्लारसंश्रयाः ॥ २२ ॥ हिंदोलस्त्रिगुणा धाली गौडी कोलाहलास्तथा ॥ पंचैते गौडनामानं रागमाश्रित्य संस्थिताः ॥२३॥ भूपाली हरिपालश्च कामोदी घोरणिस्तथा ॥ वेलावली च पंचैते रागा देशापसंस्थिताः ॥ २४ ॥ अन्येऽपि बहवो रागा जाता देशविशेषतः॥मारुप्रभृतयो लोके ते च भद्रेशिकाः स्मृताः॥२५॥ श्रीआदिपुराणेतु । भैरवो मुख्यरागश्च द्वितीयो मालकौशिकः ॥ हिंदोलकस्तृतीयस्तु चतुर्थो दीपकः स्मृतः ॥ २६ ॥ पंचमो मेघनादश्च श्रीरागः षष्ठ उच्यते॥एतेषां पंच पंच स्युः पत्न्यः षण्णां सुशोभनाः ॥२७॥ पूर्वं भैरवपत्न्यस्तु पंचैताः शृणु नारद ॥ भैरवी नटनाम्नी च तथा मालसिरी मता॥पटमंजरी चतुर्थी स्याल्ललिता पंचमी मता॥२८॥ मालकौशिकपत्नीनां नामानीमानि मे शृ-

णु ॥ विचित्रा भाविनी चैव तथा मारवणी मता ॥ २९ ॥ रामगिरी गुर्जरी च हिंदोलस्याथ वल्लभाः॥वैरावली पराटोडी देशाख्या चणवारिका ॥ १३० ॥ माधवी पंचमी प्रोक्ता दीपकस्यापराः स्त्रियः ॥ धनासिरी वसंता च कर्णाटी तृतीया मता ॥ ३१ ॥ वैराटी च चतुर्थी स्यात्तथा मधुकरी स्फुटम् ॥ मेघनादस्त्रियः पञ्च तासां नामानि मे शृणु ॥ ३२ ॥ कलाटिका तथा गौरी ककुभा च विभावरी ॥ बंगाली पंचमी प्रोक्ता श्रीरागस्य स्त्रियः स्मृताः ॥ ३३ ॥ माघफाल्गुनयोर्गेयो दीपकाख्योऽतिशोभनः ॥ मेघनादः परो गेयो मधुमाधवयोरपि ॥ ३४ ॥ ज्येष्ठाषाढकयोर्गेयः श्रीरागः सर्वसंमतः॥ मालकौशिकरागश्च वर्षत्तविव संमतः ॥ ३५ ॥ भैरवश्चापरो गेयः शारदत्तौ निरन्तरम् ॥ हिंदोलगानकालश्च मासयोर्मार्गपौषयोः ॥ ३६ ॥ अथैषामेव रूपाणि वर्णनीयानि वर्णये ॥ नीलांबरो गौरतनुः सपुष्पो भैरवः शुभः ॥ ३७ ॥ तत्पत्नीनाम् ॥ सरोवरस्थस्फटिकस्य मंडपे सरोरुहैः श्रीहरिमर्चयंती ॥ तालप्रयोगैः प्रतिबद्धगीता गौरी मृदुर्नारद भैरवीयम् ॥ ३८ ॥ तुरंगमस्कन्धनिबद्धरागा स्वर्णप्रभा शोणितशोणगात्रा ॥ संग्रामभूमौ चरति धृतास्त्री नटेयमुक्ता किल कश्यपेन ॥३९॥ नीलं निचोलं वपुषा वहन्ती विप्रोक्षमार्गा कृतभक्तिरेषा॥तमालनीले तिमिरं वहन्ती प्रियानुगा मालसिरी प्रदिष्टा ॥ १४० ॥ वियोगिनी कांतविशीर्णपुष्पसंचं वहन्ती वपुषातिशुष्कम् ॥ आश्वास्यमाना प्रियया च सख्या विधूसरांगी पटमञ्जरीयम् ॥ ४१ ॥ स्वकांतसंगाभिनिवेशतश्च समुत्थिता पङ्कजकेसरारुणे ॥ नेत्रे दधाना पटुकंठमण्डिता प्रातः प्रयुक्ता ललिताभिधेया॥४२॥ अनन्तशृङ्गारपरा विनोदिनी सुहारचामीकरगात्रवल्ली ॥ कर्पूरसौगंध्यसुनागवल्लीं कोलाम्बिकां चैव मुखे दधाना ॥ ४३ ॥ अथ मालकौशिकः ॥ मेघागमेत्यंतविघूर्णनेत्रः कलाकु-

लांगो मदनापहारी॥विचित्रमुख्या वनिताप्रियोऽसौ विराजते माल-
सुकौशिकश्च ॥ ४४ ॥ सानंदमालंवितपुष्पचापा प्रियाङ्गसङ्गा-
मृतसाधुतृता ॥ पर्यंकमध्ये सुकृतोपवेशा विभाति निद्रालस्थितचित्रं-
गौरा ॥ ४५ ॥ वासोवसाना शरदभ्रशुभ्रं विरिञ्चिदेवोपमकर्म-
शक्ता ॥ कुन्दावदाता चतुराननस्य संभावनी लब्धसमृद्धसेवा
॥ ४६ ॥ अनेकलावण्यनिदानशाला प्रियांकमध्ये नितरां वसंती॥
चाटूक्तिरम्यैर्वचनैर्हसन्ती विलज्जिता मारवणी प्रदिष्टा ॥ ४७ ॥
स्वर्णप्रभा भासुरभूषणा च नीलं निचोलं सुतनौ वहन्ती ॥ कान्ते
पदोपान्तमधिश्रितेऽपि मानोन्नता रामगिरी प्रदिष्टा ॥ ४८ ॥ श्यामा
सुकेशी मलयद्रुमाणां मृदूल्लसत्पल्लवतल्पयाता ॥ श्रुतीः स्वराणां
दधती विभागं तंत्रीमुखादक्षिणगुर्जरीयम् ॥४९॥ शंखावदातं पलितं
दधाना प्रलंबकर्णा कुसुमेन्दुवर्णा ॥ विचित्रवासाः स्वविहारचारिणी
मल्लारिकेयं शुचिशांतमूर्त्तिः॥ ५० ॥अथ हिन्दोलः ॥ नितम्बिनीमंद
तरंगितासु हेलासु दोपासु कला दधानः॥शुकैः कपोतद्युतिकर्बुराङ्गो
हिंदोलरागः कथितो मुनीन्द्रैः ॥ ५१ ॥ संकेतशय्यां दयितस्य द-
त्वा वितन्वती मण्डनमंगयष्टयाम् ॥ हृदा स्मरंती स्मरमिष्टदेवं
वैरावली नीलसरोजकांतिः ॥ ५२ ॥ उन्निद्रपंकेरुहचारुवक्त्रा कुर-
ङ्गमातंगकृतेवरेण ॥ संभावयंती विपिनोपकंठे टोडीमुखेंदीवरदा-
मरम्या ॥ ५३ ॥ आस्फोटनाविष्कृतरोमहर्षानियुद्धसंयुक्तावेशा-
लवाहुः ॥ प्रांशुप्रचंडद्युतिरिन्दुगौरा देशाख्यरागिण्यथ मल्लराज्ञी
॥५४॥ अनेकवस्त्राभरणाकुलांगी पद्मायदस्ता नयनांजनेन॥मनो
हरंती मदनांगयष्टिर्गांधाररागिण्यथ वामचेष्टा ॥ ५५ ॥ विस्पष्टकृ-
ष्णाजिनमध्यवर्ती कांता पवित्रा स्थविरा विशुद्धा॥संगायती नार-
दतुंबुरुभ्यां श्रीमाधवीनाम कथां विचित्राम् ॥ ५६ ॥ सौभाग्यसंग-

१ चित्राचाऽसौगौराचेतिचित्रगौरा पुंवद्भावः पूर्वपदे। २ तं स्मतियापाठः।

विंतगौरदेहा मनोभवस्याथ शिलीमुखानि॥मुश्चंती विश्वस्य विमोहनाय सौभाग्यसंज्ञेति विशालनेत्रा ॥ ५७ ॥ अथ दीपकः ॥ विशालनेत्रो नयनाभिरामः कलाविदग्धः कलकंठगीतः॥ मारांगकश्चातिविमोहनोऽसौ स्त्रीणां पटुर्दीपकरागराजः ॥ ५८ ॥ दूर्वादलश्यामतनुर्मनोज्ञा कांतं लिखंती स्वकरेण पीठे॥बालाचला लोचनगूढभावैर्धनासिरी नाम मुने प्रदिष्टा ॥५९॥ अनेकपुष्पाकरपत्रवल्ली विमोहरूपामदनाधिभूपा ॥ वसंतरागिण्यथ कामकांता मनो हरंती विपिने निविष्टा ॥ ६० ॥ पाठांतरम्॥शिखंडिबर्हीच्चयबद्धचूडा पुष्णंत्यापि प्रांतलतांतराणि ॥ भ्रमंत्यथावासमनंगमूर्तिर्मतात्वनंगस्य वसंतसंज्ञा ॥ ६१ ॥ अतिप्रमत्ता बलभावयुक्ता गौरांगयष्टिः कनकांगभूषा ॥ वीणांदधानातिसुकंठगानकर्त्री च कर्णाटिकिकाप्रसिद्धा ॥ ६२ ॥ विराटदेशे सुभगा सुगौरी ह्यनेकगानाकलिताकुलांगी ॥ मृदंगहस्ता नवयौवनाढ्या वैराटिकेयं चमराभियुक्ता ॥ ६३ ॥ पाठांतरम् ॥ विनोदयंती दयितं च गौरी स्वलंकृता चामरचालनेन ॥ करे दधाना सुरवृक्षपुष्पं वरांगनेयं कथिता विराटी॥६४॥मुखादनंतं मधु चास्तुवंती स्वकांतकेलीः प्रचुरं प्रयाता ॥ उच्चैःस्वरेणातिजगौ पदानि मानोन्नता माधुकरी प्रसिद्धा ॥ ६५ ॥ दीनानना मंगलयानकाले लाजांजलीन्विदधती गलदश्रुधारा ॥ हेमद्युतिर्दंतनखांशुशुभ्रा श्रीसोरठी मानयुताप्रसिद्धा ॥ ६६ ॥ अथ मेघनादः ॥ तमालनीलांगमनोज्ञवेषो विचित्रवाचा परिवक्ति भार्याम् ॥ आताम्रनेत्रांतविलासशीलः श्रीमेघनादः कथितोमुनींद्रैः ॥ ६७ ॥ आकर्णनेत्रा तु मनो हरन्ती शुचिस्मिताऽसौ कलगानकृत्या ॥ आशृण्वतां पद्मदलाग्रहस्ता कंटालिकाकेलिकरातिपङ्गी ॥ ६८ ॥ सानंदमालंबितपुष्पचापा प्रियाधरस्वादुसुधाभितृप्ता ॥ पर्यंकमध्येसुकृतोपवेशा

सालस्यगात्रा विदिता च गौडी ॥ ६९ ॥ नीलं वसाना वसनं सुवेषा वने रुदंती पिकनाददूती ॥ विलोकयंती ककुभोऽथ भीता मूर्तिः प्रदिष्टा ककुभः श्रयेयम् ॥७०॥ प्रातः समुत्थाय प्रियांकमध्ये तत्केलिचिह्नाकलितानिमित्ता ॥ सालस्यनेत्रा प्रतिबोधयंती खगान्द्रुमस्थांश्च विभासनाम्नी ॥ ७१ ॥ मनोज्ञमौंजीगुणगुंफितांगा त्वचं दधाना धरणीरुहस्य ॥ चंडा कुमारी कमनीयमूर्तिर्वंगालिका गायनकेषु मुख्या ॥ ७२ ॥ सदारंगारतिरभसकांतवदना मदोन्मत्ता पतिपदालिंगितकरा ॥ वरालापप्रेमपूरप्रसक्ता भक्तादेवी देवमोहातिसक्ता ॥ ७३ ॥ अथ श्रीरागः ॥ किरीटवान् रागसमाजमध्ये संगीतशालीयमदांगयष्टिः ॥ आतालमानाधिकृतौ विवेकी श्रीरागराजो वनिताभिकांतः ॥७४॥ शृंगारसंभारसमूहनांगा ह्यनंगलेखेव निजांगकांत्या ॥ प्रतप्तचामीकरचारुवर्णा श्रीमेघशाली मदनाभिमत्ता ॥ ७५ ॥ अब्जमालां करे धृत्वा वसाना रौरवीं त्वचम् । जपंती जाह्नवीतीरे मोदकातियशस्विनी ॥ ७६ ॥ नीलांशुकालंबितदेहपीठा विभ्रत्प्रभासाधरपद्मवक्त्रा ॥ श्यामा सुवेषा दयितेन सार्द्धं केदारिकाब्जं दधती करेसा॥७७॥आसावरी मन्मथचर्यहारिणी वक्रदृशाभ्रुकुटिशोभितसुस्मितास्या ॥ मानोन्नता कान्तकराभिमर्शप्रमोदभारा विगता सदैव ॥७८॥ कामोदकी कामलका विदग्धा शश्वत्तनौ हाटकतुल्यवर्णा ॥ कर्णांतनेत्रा मदनांगयष्टिर्नीलोत्पलं सा दधती मनोज्ञा ॥ ७९ ॥ मारुर्मनोत्साहविभासयंती कंदर्पसंपीडितदेहयष्टिः ॥ प्रियप्रवासातिवियोगिनी सा महावियोगेन सुतप्यमाना ॥८०॥ एवमन्यत्रान्यथापि वर्णिता रागास्ते च सर्वे एव योग्या एव ॥ तदुक्तम्।न रागाणां न तालानामंतः कुत्रापि विद्यते॥संतोषाय शिवस्यैते गेया बुधजनैः सदा ॥ ८१ ॥ तथा नयंति कैलासं न गंगा न सरस्वती ॥ यथा नयंति रागास्ते नरं

गायनकोविदम्॥८२॥श्रीभगवताप्युक्तम्॥नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदये नवै ॥ मद्भक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारदेति पाद्मादौ॥८३॥अथ गणाः॥म्यरस्तजभ्नगैर्लांतैरेभिर्दशभिरक्षरैः ॥ समस्तं वाङ्मयैर्व्याप्तं त्रैलोक्यमिव विष्णुना ॥ ८४ ॥ सानुस्वारो विसर्गांतो दीर्घो युक्तपरश्च यः ॥ वा पादांतस्त्वसौ ग्वक्रो ज्ञेयोऽन्यो मातृको लृजुः ॥ ८५ ॥ मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः ॥ जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोंऽतगुरुः कथितोंऽतलघुस्तः ॥८६॥ मो भूमिः श्रियमातनोति य जलं वृद्धिं रवह्निर्मृतिं सो वायुः परदेशदूरगमनं तव्योम शून्यं फलम्॥जः सूर्यो रुजमाददाति विपुलां भेन्दुर्यशो निर्मलं नो नाकश्चिरमायुरष्टकमिदं प्राहुर्गणानां फलम् ॥ ८७ ॥ अथवर्णप्रस्तारः ॥ पादे सर्वगुरावाद्याल्लघुं न्यस्य गुरोरधः ॥ यथोपरिं तथा शेषं भूयः कुर्यादमुं विधिम् ॥ ८८ ॥ ऊने दद्याद्गुरूनेव यावत्सर्वलघुर्भवेत् ॥ प्रस्तारोऽयं समाख्यातश्छंदोविचितिवेदिभिः ॥ ८९ ॥ अथ गुरुलघुप्लुतद्रुतलक्षणानि ॥ लघुः शुद्धो गुरुर्वक्र उभाभ्यां च प्लुतो भवेत् ॥ द्रुतस्तु बिंदुरूपः स्यादिति सर्वत्र निश्चयः ॥ ९० ॥ एकमात्रो लघुः प्रोक्तो द्विमात्रश्च गुरुर्भवेत् ॥ प्लुतस्त्रिमात्रको ज्ञेयो द्रुतः स्यादर्द्धमात्रकः ॥ ९१ ॥ लघोर्गुरोः प्लुतस्यापि भवेत्तालः पृथक्पृथक्॥ मिलितानामपि भवेत्प्रस्तारस्तस्य कथ्यते॥९२॥अथ तालप्रस्तारः ताले पादस्थिते मात्रां गणयेल्लघुरूपिकाः॥ तावतीभिस्तु मात्राभिः प्रस्तारो निखिलो भवेत् ॥ ९३ ॥ तच्च मध्याद्द्वयो ज्ञेयस्तत्पृष्ठे चेद्यथोपरि ॥ मध्यमिष्टाश्रितैः सार्द्धं मात्राभिर्गणयेदधः ॥ ९४ ॥ मध्यस्याग्रे च विलिखेन्मात्राः पूरणहेतवे ॥ पूरणाय विधिस्त्वेष पूर्वं स्थूलास्ततः कृशाः ॥ ९५ ॥ बहुमात्रो भवेत्स्थूलस्ततो हीनः कृशो भवेत् ॥ द्रुतस्तु न भवेत्स्थूलस्ततो हीनः कृशो

भवेत् ॥ ९६ ॥ किंच । गीते वाद्ये च नृत्ये च शक्तिः साधारणो गुणः ॥ सा चेदेतत्किमन्येन दूषणेन गुणेन च ॥ ९७ ॥ अथौषधानि ॥ गुडूच्यपामार्गविडंगशंखिनीवचाभयाकुष्ठशतावरीसमा ॥ घृतेन लीढा प्रकरोति पुंसां त्रिभिर्दिनैर्गीतसहस्रधारणम् ॥ ९८ ॥ देवदारुदलोद्भूतरसो मधुघृतान्वितः ॥ पीतः पथ्याशिनः कुर्याद्गीते मुखरतां भृशम् ॥ ९९ ॥ वासा ब्राह्मी वचा कुष्ठं पिप्पली मधुसंयुता ॥ सप्तरात्रप्रयोगेण किन्नरैः सह गीयते ॥ २०० ॥ वृद्धदारुकमूलं हि यो लिह्यान्मधुसर्पिषा ॥ सप्ताहक्षीरयूपाशी किन्नरैः सह गीयते ॥ १ ॥ बीजपूरफलं जातीपत्रं जंबीरजं तथा ॥ एनीधान्यकलायाश्च पिप्पल्या सह चूर्णयेत्॥२॥मधुना चावलीढं तु कंठं सुस्वरतां नयेत्॥इति गांधर्ववेदोद्धृतसारः॥ ॥अथ रसशास्त्रं च बहुविधं भरतेनैव प्रणीतम् । तच्च रसरीतिशब्दालंकारार्थालंकारनायकनायिकादिवर्णनरूपम् ॥ तथा हि । साधुपाकेप्यनास्वाद्यं भोज्यं निर्लवणं तथा ॥ तथैव नीरसं काव्यं न स्याद्रसिकतुष्टये इति । तत्र रसत्वमंगांगिभावापन्नसकलविभावादिसाक्षात्कारकत्वम् । विशेषणं विभावानुभावसंचारिभावस्थायीभावा इत्येवमाकारकसमूहालम्बनवारणाय। रसत्वं च जातिरिति ॥ केचित्तु-कारणेनाथ कार्येण सहकारिभिरेव च ॥ व्यक्तत्वं नीयमानस्तु स्थायीभावो रसः स्मृतः ॥ कारणमङ्गनानवयौवनादि ॥ कार्याणि । स्तंभः स्वेदोऽथ रोमांचः स्वरभंगोऽथ वेपथुः ॥ वैवर्ण्यमश्रुप्रलयावित्यष्टौ सात्विका मताः॥सहकारिणः उद्यानादयः ग्लान्यादयश्च ॥ यदाहुः॥ विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः ॥ आरोप्यमाण उत्कर्षं स्थायीभावो रसः स्मृतः॥तं विभजते । शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ॥ बीभत्साद्भुतशांताश्च काव्ये नव रसाः स्मृताः ॥ ०-संभोगो विप्रलंभश्च शृंगारो द्विविधः स्मृत इति ॥ तत्र स्त्रीपुं-

क्षणे इष्टप्राप्तौ रतिरेव संभोगः ॥ तदुक्तम् । अनुरक्तौ निषेवेतां यत्रा-न्योन्यं विलासिनौ ॥ दर्शनस्पर्शनादीनि संभोगोऽयमुदाहृतः ॥ तत्र नायिकाश्रयसंभोगो यथा । शून्यं वासगृहं विलोक्य शयना-दुत्थाय किञ्चिच्छनैर्निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मु-खम् ॥ विस्रब्धं परिचुंब्य जातपुलकामालोक्य गंडस्थलीं लज्जान-म्रमुखी प्रियेण सहसा बालाचिरं चुंबिता ॥ आलोक्य नम्रमुखीति योज्यम् ॥ नायिका चतुर्द्धा ॥ अनूढा च स्वकीया च परकीया वरांगना ॥ त्रिवर्णिनः स्वकीया स्यादन्या केवलकामिनः ॥ तत्रानुरक्ताऽनुरक्तेन स्वयं या स्वीकृता भवेत् ॥ साऽनूढेति यथा राज्ञो दुष्यन्तस्य शकुंतला ॥ देवतागुरुसाक्ष्येण स्वीकृता स्वीयनायिका ॥ परकी-याऽप्यनूढैव विशेषस्तु स्फुटस्तयोः ॥ सामान्यवनिता वेश्या भवे-त्कपटपंडिता । नहि कश्चित्प्रियस्तस्या दातारं नायकं विना ॥ अस्याः प्रकाशोऽन्यासां प्रच्छन्नो रस इति विशेषः ॥ ताश्चाष्टधा ॥ खंडि-तोत्कंठिता प्रोष्यत्पतिका चाभिसारिका ॥ कलहांतरिता वासासल-ज्जाविप्रलब्धिका ॥ स्वाधीनभर्तृका चान्या चतस्रोऽप्यष्टधा मताः ॥ ल-क्षणान्यासां सोदाहरणानि रसमंजर्यादिभ्योऽवसेयानीह विस्तरभिया नोक्तानि ॥ नायकाश्रयो यथा ॥ त्वं मुग्धाक्षि विनैव कंचुलिकया धत्से मनोहारिणीं लक्ष्मीमित्यभिधायिनि प्रियतमे तद्वीटिकां संस्पृशि ॥ शय्योपान्तनिविष्टसस्मितसखीनेत्रोत्सवानंदितो निर्यातः शनकैर-लीकवचनोपन्यासमाली जनः ॥ रूपयौवनसंपन्नः कुलीनः कुशलो युवा ॥ अनुद्धतस्सूनृतवाङ् नायकः प्रीतये स्त्रियाः ॥ अयं बहुप्रकारोऽ-पि संक्षेपेण चतुर्विधः ॥ अनुकूलो दक्षिणश्च शठधृष्टौ च ते यथा ॥ लीनरागोऽनुकूलः स्यादनन्यरमणीरतः ॥ दक्षिणश्चान्यचित्तोऽपि यः स्यादविकृतः स्त्रियाम् ॥ प्रियं वक्त्यप्रियं तस्याः कुर्वन्नपि कृती शठः ॥ धृष्टो ज्ञातापराधोऽपि न विलक्षोऽवमानितः ॥ विप्रलंभस्तु ॥ भावो यदा

रतिर्नाम प्रकर्षमधिगच्छति ॥ नाभिगच्छति चाभीष्टं विप्रलंभः स उच्यते॥अभीष्टं स्त्रीपुंसलक्षणमेव।स च।पूर्वानुरागो मानात्मा प्रवासः करुणात्मकः ॥ विप्रलंभश्चतुर्द्धा स्यात्पूर्वपूर्वो ह्ययं गुरुः ॥ तत्र-स्त्रीपुंसयोर्नवालोकादेवोल्लसितरागयोः ॥ ज्ञेयः पूर्वानुरागोऽयमला-भाद्रतिकामयोः ॥ यथा। प्रेमार्द्राः प्रणयस्पृशः परिचयादुद्गाढ-रागोदयास्तास्ता मुग्धदृशो निसर्गमधुराश्चेष्टा भवेयुर्मयि ॥ यास्वं-तःकरणस्य बाह्यकरणव्यापाररोधी क्षणादाशंसापरिकल्पितास्वपि भवत्यानंदसांद्रोलयः ॥ अथान्यावनितासक्तमवगम्यस्ववल्लभम् ॥ ईर्ष्यावशेन वैमुख्यमेष मान उदाहृतः ॥ यथा। सा पत्युः प्रणया-पराधसमये सख्योपदेशं विना नो जानाति सविभ्रमांगवलनावक्रो-क्तिसंसूचनम्॥स्वच्छैरच्छकपोलमूलगलितैःपर्यस्तनेत्रोत्पला बाला केवलमेव रोदिति लुठल्लोलालकैरश्रुभिः॥प्रवासः परदेशस्थे द्विती-यो विरहोद्भवः॥ यथा। त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायामात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ॥ अस्रैस्ता-वन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्त इति ॥ स्यादेकतरपंचत्वे दंपत्योरनुरक्तयोः ॥ शृंगारः करुणाख्योऽयमजस्येव रतेरिव ॥ १ ॥ ननु शृंगारस्य रतिप्रकृति-त्वात्तस्याश्च सुखसंवेदनरूपत्वात्तस्य च विप्रलंभेऽभावात्स कथं शृंगारभेद इति चेन्न।धन्योहमस्याः कृते दशामिमामनुभवामि इति। तत्रापि तदभिधानात्। श्रीपादस्तु। रतिर्भवति देवादौ मुनौ पुत्रे नृपे गुरौ॥ शृंगारस्तु भवेत्सैव पाकांतविषया रतिः॥ तत्र देवे यथा।कंठकोणविनिविष्टमीशते कालकूटमपि मे महामृतम्॥ अप्यु-पात्तममृतं भवद्वपुर्भेदवृत्ति यदि मे,न रोचते। मुनौ यथा। हरत्यघं संप्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः ॥ शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम्॥ पुत्रे यथा।

एह्येहि वत्स रघुनंदन पूर्णचंद्र चुंबामि मूर्ध्नि सुचिरं च परिष्वजे त्वाम् ॥ आरोप्य वा हृदि दिवानिशमुद्वहामि वंदेऽथ वा चरणपुष्करकद्वयं ते॥नृपे यथा॥ ते कौपीनधनास्त एव हि परं धात्रीफलं भुंजते तेषां द्वारि नदंतिवाक्षिनिवहास्तैरेव लब्धा क्षितिः ॥ तैरेतत्सकलं कृतं निजकुलं किंम्वाबहुब्रूमहे ये दृष्टाः परमेश्वरेण भवता तुष्टेन रुष्टेन वा॥गुरौ यथा॥हा तात विश्वजनवत्सल मामकीन जीवौषधं द्युमणिवंशवतंसभूत॥स्यां चेद्भवत्कुलजसद्मनि चेटकः स्यां यद्वा भवच्चरणपंकजरेणुरेव ॥इति॥१॥हासमूलः समाख्यातो हास्यनामा रसो बुधैः । चेष्टांगवेषवैकृत्याद्वाच्यो हासस्य संभवः ॥ कपोलाक्षिकृतोल्लासो भिन्नोष्ठः स महात्मनाम् । विदीर्णास्यश्च मध्यानामधमानां सशब्दकः ॥ यथा । नपुंसकमिति ज्ञात्वा प्रियायै प्रेषितं मनः । तच्च तत्रैव रमते हताः पाणिनिना वयम्॥२॥शोकोत्थः करुणो ज्ञेयस्तत्र भूयस्त्वरोदनम् । वैवर्ण्यमोहनिर्वेदप्रलयाश्रूणि वर्णयेत्॥यथा। मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी । गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो विधे त्वां करुणा रुणद्धि नो॥ इति॥३॥क्रोधात्मको भवेद्रौद्रः क्रोधः प्रौढ्या च वैरिणः । भीष्मवृत्तिरसामान्यो भवेदुग्रक्रियाश्रयः॥ स्वांसघातस्वयंशस्त्रोत्क्षेपभ्रुकुटयस्तथा । अत्रारातिजनाक्षेपो दलनं चोपवर्ण्यते ॥ यथा । कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः । नरकरिपुणा सार्द्धं तेषां सभीमकिरीटिनामयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम्॥४॥उत्साहात्मा भवेद्वीरो बलशस्त्राश्रयश्च सः । नायकोऽत्र भवेत्सर्वैः श्लाघ्यैरभिमतो गुणैः ॥ तथा । क्षुद्राः संत्रासमेते विजहत हरयो भिन्नशक्रेभकुंभा युष्मद्गात्रेषु लज्जां दधाति परममी सायका निष्पतन्तः । सौमित्रे तिष्ठ पात्रं त्वमसि न हि रुषां नन्वहं मेघनादःकिञ्चिद्भ्रूभङ्गलीलानियमितजलधिंराममन्वेषयामि॥५॥भ-

यानको भवेद्भीतिप्रकृतिर्घोरवस्तुनः॥सच प्रायेण वनितानीचबालेषु दृश्यते ॥ दिगालोकास्यशोषांगकंपगद्गदसंभ्रमाः ॥ स्तंभवैवर्ण्यमोहाश्च वर्ण्यंते विबुधैरिह ॥ यथा ॥ ग्रीवाभंगाभिरामं मुहुरनुपतति स्यंदने दत्तदृष्टिः पश्चार्द्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद्भूयसा पूर्वकायम्॥ शष्पैरर्द्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति॥६॥बीभत्सः स्याज्जुगुप्सातः सोऽहृद्यश्रवणेक्षणात् ॥ निष्ठीवनास्यभंगादि स्यादत्र सहृतां न च ॥ यथा । उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं प्रथममथ पृथूत्सेधभूयांसि मांसान्यंसस्फिक्पृष्ठपिंडाद्यवयवसुलभान्युग्रगंधीनि जग्ध्वा ॥आर्त्तः पर्यस्तनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरंकः करंकादंकस्थादस्थिसंस्थापुटकगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति ॥७॥विस्मयात्माद्भुतो ज्ञेयः स चासंभाव्यवस्तुनः ॥ दर्शनाच्छ्रवणाद्वापि प्राणिनामुपजायते ॥ तत्र । नेत्रनेत्रविकारः स्यात्पुलकः स्वेद एव च ॥ निष्पन्दनेत्रता साधुसाधुवादास्तथामताः ॥ चित्रं कनकलतायां शारदिन्दुस्तत्र खञ्जनद्वितयम्॥तत्र च मनोजधनुषी तदुपरि गाढान्धकाराणि॥८॥सम्यग्ज्ञानसमुत्थानः शांतो निस्स्पृहनायकः॥रागद्वेषपरित्यागे सम्यग्ज्ञानस्य चोद्भवः ॥ पश्चात्तापः शरीरादियावद्वस्तुविडंबनम् ॥ विवेकचित्तस्थैर्यादियोगाद्यास्तस्य लक्षणम् ॥ यथा । अहौ वा हारे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा मणौ वा लोष्टे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा॥ तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यांतु दिवसाः क्वचित्पुण्यारण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः ॥९॥ स्त्रैणं स्त्रीसमूहः । अत्राहिरिव हारो हेयो न तु हारवदहिरप्युपादेय इति बोद्धव्यम्॥अत्र सर्वत्र तत्तद्रसत्वमात्रे उदाहरणमिति स्मर्तव्यम्॥अथ रसानां विरोधाविरोधावाह॥ शृंगारहास्यौ करुणबीभत्सौ वीररौद्रकौ ॥ भयानकाद्भुतौ मित्रे मिथः शांतो न कस्यचित् ॥ शांते करुणबीभत्सौ न किंचिद्दोष्ट

चाद्भुतः ॥ शृंगारे शांतकरुणौ हासस्य करुणो रिपुः ॥ अत्र करुण-बीभत्सयोर्मैत्री विशेषाभिप्रायेण स्मर्तव्या ॥ स्थायी भावो रसो मत इत्युक्तमत आह । रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा ॥ जुगुप्सा विस्मयो भावा निर्वेदः स्थायिनो नव ॥ स्थायिनो भावा नवेत्यर्थः ॥ ननु निर्वेदस्य कथं शांतरसस्थायिता व्यभिचारित्वा-दिति चेन्न । अधिकरणभेदेनोभयाविरोधादित्यन्यत्र विस्तरः ॥ स्थायिलक्षणं तु । विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः ॥ स्वात्म-भावं नयत्यन्यान्स्थायी भावस्स उच्यते ॥ यथा लवणाकरो विरुद्धै-र्जुगुप्सादिभिरविरुद्धैरत्यादिभिर्यो न विच्छिद्यत इत्यर्थः ॥ विशेषल-क्षणं तु मनोनुकूलविषयसुखात्मकं संवेदनं रतिः ।अंगक्रीडादिभिश्चे-तोविकारो हासः । इष्टनाशादिजनितचित्तवैक्लव्यं शोकः ।प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यप्ररोहः क्रोधः । कार्यारंभे स्थिरसंरंभ उत्साहः । व्याघ्रादि-दर्शनादिजनितं मनःक्लैब्यं भयम् । दोषदर्शनात्पदार्थगर्हणं जुगुप्सा-लोकसीमातिक्रांतपदार्थविषयश्चित्तविकारो विस्मयः । तत्त्वज्ञाना-दीर्ष्यादिभिः स्वावमाननं निर्वेदः ॥ एते च सर्वभावेषु मुख्याः । यथाह । यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः ॥ तथा सर्वेषु भावेषु स्थायिभावः स्मृतो महान् ॥ विभावो द्विविधः । उद्दीपना-लंबनभेदात् । तत्र कोकिलवसंतादिरुद्दीपनो नायकादिरालंबनः ॥ योगादपि रसत्वादिकमनुभावत्वादिकमस्मन्मते जातिरेव नाहि वैशेषिकादिवदस्माकं प्रक्रियेत्यालंकारिकाः ॥ अनुभावलक्षणं तु । अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः । तत्र । हेलाविच्छित्तिवि-ब्बोककिलकिञ्चितिपविभ्रमाः ॥ लीलाविलासो हविश्च विपेक्षो वि-कृतो मदः । मोदायितं कुट्टमितं मौग्ध्यञ्च तपनं तथा ॥ ललितञ्चे-त्यमी हावाश्चेष्टाः शृंगारभावजाः ॥ एतच्चास्माभिरेव प्रपञ्चितं श्रीभागवताद्यपक्षव्याख्याशत्युत्तरम् ॥ सात्विकलक्षणं तु । विशेषे-

णाभितः काये स्थायिनं भावयंति ये ॥ अनुभूतादिहेतूंस्तान्वदंति व्यभिचारिणः ॥ आदिपदात्स्वेदादिपरिग्रहः ॥ ते च । निर्वेदग्लानिशंकाख्यास्तथासूयामदश्रमाः॥आलस्यश्चैव दैन्यश्च चिन्ता मोहः स्मृतिर्धृतिः ॥ व्रीडा चपलता हर्षश्चावेगो जडता तथा ॥ गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्राऽपस्मार एव च । सुप्तं विरोधोमर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता । मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च ॥ त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः ॥ अमी च प्रत्येकं भाव्यंते क्वचित्सर्वभावतापि ॥ यथा । क्वाकार्यं शशलक्ष्मण इत्यादौ क्वाकार्यमिति वितर्कः ॥ भूयोपि दृश्येत सत्यौत्सुक्यं दोषाणामिति मतिः । कोपेपीति स्मृतिः । किंवक्ष्यंतीतिशंका।स्वप्नेपि सा दुर्लभेति दैन्यम् । चेतः स्वास्थ्यमुपैहीति धृतिः । कः खल्वित्यादिश्चिंतेतीत्यत्र बहुवक्तव्यमस्तीह तु रेखामात्रमेव दर्शितमिति । तत्र रीतीराह । तत्तद्रसोपकारिण्यस्तत्तद्देशसमुद्भवाः॥पद्येषु रीतयो गौडी वैदर्भी मागधी तथा ॥ गौडी समासभूयस्त्वाद्वैदर्भी च तदल्पतः ॥ अनयोः संकरो यस्तु मागधी सातिविस्तरा॥गौडीयैः प्रथमा मध्या वैदर्भैर्मैथिलैस्तथा ॥ अन्यैस्तु चरमा रीतिः स्वभावादेव सेव्यते ॥ तत्र गौडी यथा । उन्मीलन्मधुगंधलुब्धमधुपव्याधूतचूतांकुरक्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः ॥ नीयंते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षणप्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः ॥ वैदर्भीयथा । मनीषिताः संति गृहेषु देवतास्तपः क्व वत्से क्व च तावकं वपुः ॥ पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ॥ मागधी यथा।पाणौ पद्मधिया मधूककुसुमभ्रांत्या पुनर्गंडयोर्नीलेंदीवरशंकया नयनयोर्बंधूकबुद्ध्याधरे ॥ लीयंते कबरीषु बांधवजनव्यामोहजातस्पृहा दुर्वारा मधुपाः कियंति तरुणि स्थानानि रक्षिष्यसि ॥ जयदेवस्तु।पञ्चाली किञ्च लाटीया गौडी-

या च यथारसम् ॥ वैदर्भी च यथासंख्यं चतस्रो रीतयः स्मृता इत्याह।तत्र पंचषट्सप्तपदैः पञ्चाली अष्टादिपदैर्लाटीया समासबहुला गौडीया सर्वथा समासाभावे वैदर्भीति साहि रसानुकूला कार्या । यथा।शृंगारे वैदर्भी रौद्रवीरयोर्गौडीयाऽन्यत्र पांचाली लाटीया चेत्यर्थः ॥ तथा पञ्च वृत्तयोपि तेनैवोक्ता मधुराप्रौढापरुषाललिताभद्राभेदात् । मधुरायां समाक्रान्ता वर्गस्थाः पञ्चमैर्निजैः ॥ लकारश्च लसंयुक्तो ह्रस्वव्यवहितौ रणौ ॥ १ ॥ निजैः पञ्चमैर्यथाकाद्याश्चत्वारो ङकारेण चाद्या ञकारेण टाद्या णकारेण ताद्या नकारेण समाक्रांता निजपञ्चमयुक्तशिरसः संति । लश्च लकारेण युक्तस्तथा रणौ रकारणकारौ ह्रस्वेन व्यवहितौ च स्यातां मधुरायां वृत्तावित्यर्थः॥ प्रौढामाह॥रेफाक्रान्ता वर्ग्ययणाष्टवर्गात्पञ्चमाहते॥कयाक्रांतस्तवर्गःस्यात्प्रौढायां तः कमूर्द्धजः ॥ २ ॥ कादयो वर्गवर्णा यकारणकारौ च रेफाक्रान्ताः संति तत्र वर्गे षड्वर्गः पञ्चमो ङकारादिर्न रेफाक्रांतः टवर्गस्य णकारवर्जस्य निषेधो णकारस्य यणावित्युक्तेरुपादेयत्वात् । तवर्गः ककारपकाराभ्यामाक्रांतः स्यात् । तदधोवर्ती तकारश्च ककारस्य मूर्द्धनि स्यात्प्रौढायामित्यर्थः ॥ परुषामाह । सर्वैरूर्द्धैः सकारस्य सर्वे रेफस्य सर्वथा ॥ रहोर्द्वेधा तु संयोगः परुषायां शषौ स्वतः ॥ ३ ॥ सकारस्योपरि ककारादयः सर्वे सर्वेषामुपर्यधश्च रेफः रहो रकारहकारयोर्द्वेधा द्विधा तु पुनस्संयोगः उपर्यधश्चैकत्रोभयत्र च संयोगस्तथा शकारषकारौ केवलौ संयुक्तौ च कार्याविति ॥ स्वतः स्वतंत्रावित्यर्थः । परुषायां वृत्ताविति ॥ ३ ॥ अथ ललिताभद्रे चाह । लकारोऽन्यैरसंयुक्तो लघवो धभघारसाः॥४॥ अन्यैर्लकारेतरैरसंयुक्तः कार्यः।धकारभकारघकारेफसकाराश्च ललितायां लघवः कार्याः॥तथा भद्रायां शेषावृत्त्यंतराप्रयुक्ताः षकारादयः संयुक्ता असंयुक्ता वा कार्या इत्यर्थः ॥

क्रमेणोदाहरणम् । अङ्गभङ्गोल्लसल्लीला तरुणी स्मरतोरणम् ॥ तर्कचातुर्यपूर्णोक्तिप्राप्तोत्कर्षधियां वृथा ॥ वीप्सोत्सर्पन्मुखाग्रार्द्र वर्ही जह्ने कृशस्तृषम् ॥ ललना रभसं धत्ते घनाटोपे विहायसि ॥ २ ॥ तर्कशास्त्रस्य चातुर्येण कौशलेन पूर्णा या उक्तयस्ताभिः प्राप्तोत्कर्षा धीर्येषां तेषां स्मरस्य कामस्य तोरणं भूषणम् धोरणमिति पाठे वाहनमपि वृथा नानंदाय किन्तु परिशीलितसाहित्यानामेव सोपयुज्यत इति भावः । किंभूता । अंगानां भंगैरचनादिभिरुल्लसन्ती लीला यस्यास्सा तथा । हावादिनिपुणेत्यर्थः ॥ वीप्सया मुहुर्मुहुरुत्सर्पद्यन्मुखाग्रं तस्यार्द्रं यथा स्यात्तथा । वर्ही मयूरः कृश आतुरः तृषं तृष्णां जह्नेऽपाचक्रे । तथा ललना स्त्री रभसं पतिसंगेच्छावेगं धत्ते।क्व सति । घनानां मेघानामाटोपस्संभ्रमो यस्मिंस्तादृशि विहायस्याकाशे सतीत्यर्थः । तोरणमित्यंतं मधुरा । वृथेत्यंतं प्रौढा । षमित्यंतं परुषा । घनेत्यंतं ललिता । शेषा भद्रेति ध्येयं मनीषिभिरिति वृत्तयः ॥ अथालंकाराः । तत्र चमत्कारविशेषकारित्वमलंकारत्वमिति सामान्यलक्षणम् ॥ शब्दार्थनिष्ठत्वे सति चमत्कारकारित्वमिति विशेषलक्षणम् । परंपरया रसोपकारित्वमलंकारत्वमित्यन्ये। ते च शब्दालंकारभेदेन द्विधा । तत्र प्रथमानाह । चित्रवक्रोक्त्यनुप्रासगूढश्लेषप्रहेलिकाः ॥ प्रश्नोत्तरञ्च यमकमष्टालंकृतयो ध्वनौ ॥ तत्र कौतुकविशेषकारित्वं चित्रत्वम् । तच्च खड्गचक्रपद्मादिभेदेनानन्तम् । यदाह । सर्वतोभद्रधेन्वादि गोमूत्रीमुरजादि च ॥ गतप्रत्यागताद्याहुश्चित्रकाव्यं मुनीश्वराः॥किञ्चातच्चित्रं यत्र वर्णानां खड्गाद्याकृतिहेतुतेति॥ सन्निवेशविशेषेण यत्र न्यस्ता वर्णाः खड्गमुरजाद्याकारमुल्लासयंति तच्चित्रं काव्यम् ॥ कष्टं काव्यमेतदिति दिङ्मात्रं प्रदर्श्यते ॥ तत्र

खड्गबंधाकारमाह द्वाभ्याम् ॥ मारारिशक्ररामेभमुखैरासाररंहसा ॥ सारारब्धस्तवानित्यंतदार्त्तिहरणक्षमा ॥२॥ मातानतानांसंघट्टःश्रियां बाधितसंभ्रमा ॥ मान्याथ सीमा रामाणां शं मे दिश्यादुमाऽऽदिमा ॥ ॥ २ ॥ व्याख्या । मारारिःशिवः शक्र इंद्रः रामो भार्गवः इभमुखो गणेशः तैरासाराः धारासंपातास्तद्वद्रंहसा वेगेन सारः श्रेष्ठ आरब्धस्स्तवो यस्याः सा नित्यं तेषामार्त्तिः पीडा तस्या नाशे क्षमा समर्था । नतानां नम्राणां माता जननी श्रियां संपदां संघट्टः संगमस्थानम् । यद्वा संघट्टे युद्धे श्रीर्येषां युद्धरसिकानां बाधितसंभ्रमा निरस्तभया रामाणां स्त्रीणां सीमा मर्यादा आदिमा आदिभवा उमा मे शं सुखं दिश्याद्दद्यादित्यर्थः ॥ रचना त्वेवम् ।

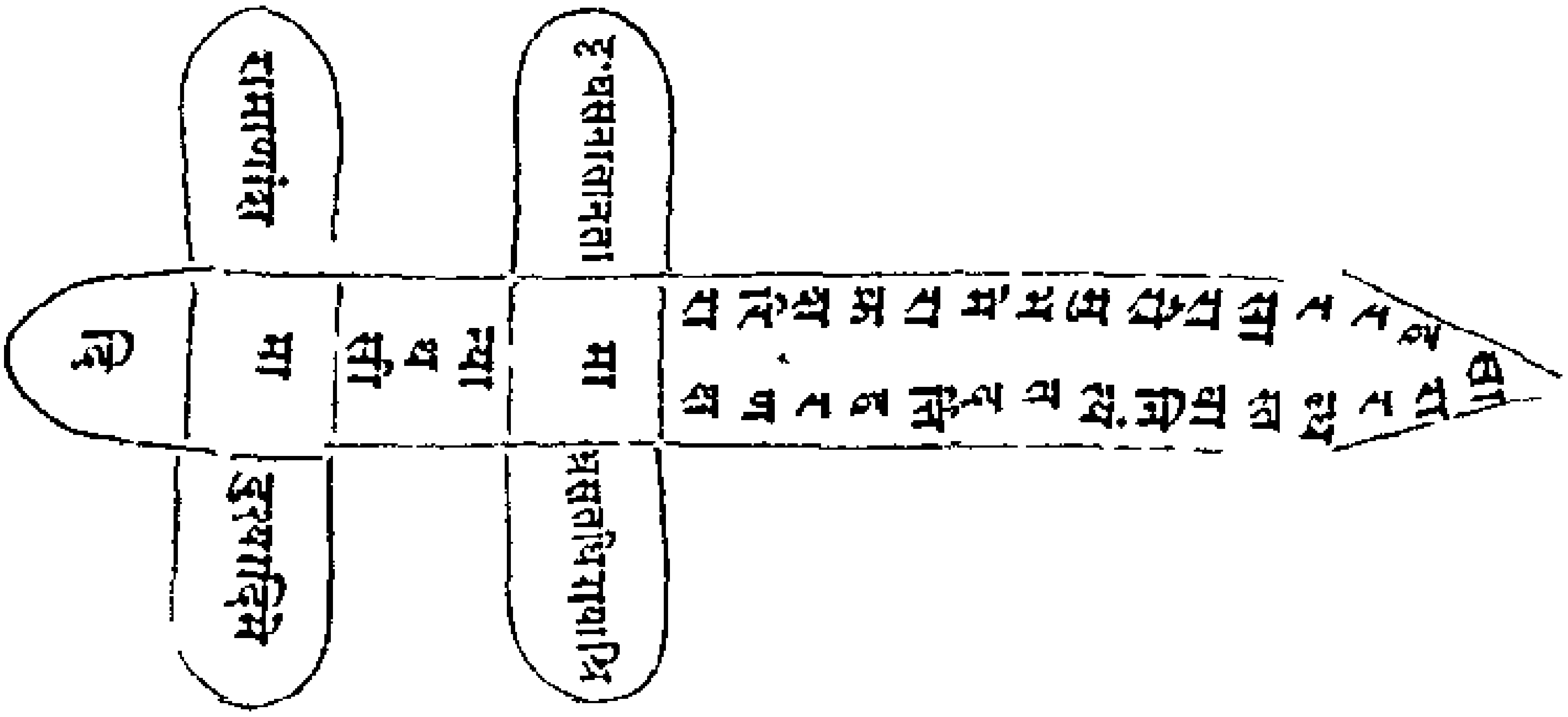

१ माशब्दं लिखित्वा तद्दक्षिणे स्ववामे वीर्षगूर्ध्वक्रमेण रादिहकारांतांश्चतुर्दशवर्णाल्लिखेदित्येका धारा मुष्टि सेति स्लिष्ट तदधो वामेऽधः क्रमेण रादिक्षांतांश्चतुर्दशवर्णाल्लिखेदित्यन्या धारा । माशब्द आद्यंतभूतः पुनस्तमेव माशब्दमादाय तद्दक्षिणे स्ववामे वादिहत्यंता वर्णा विलोमाः तद्वामे स्वदक्षिणे श्रीकारादिभ्रकारांताः सप्त वर्णा विलोमाः । माशब्दस्त्वाद्य एव तच्छेपः । पुनस्तमेव माशब्दमादाय तदधो न्यायशीतिवर्णत्रयं तदधो माइवि विलिख्य तद्दक्षिणे रादिशमित्यताश्चत्वारो वर्णा अनुलोमा वामेमे दिश्याद्युचत्वारो विलोमाः । माशब्दः स एव दिशब्दस्तदधो माशब्दः स एवेति खड्गबंधरचना ॥ १ ॥

पद्मबंधमाह । भासते प्रतिभासार रसाभाताहताविभा ॥ भाविता-
त्माशुभावादेदेवाभावत ते सभा ॥ १ ॥ हे प्रतिभया बुद्ध्या सार

पद्मबंधः ।

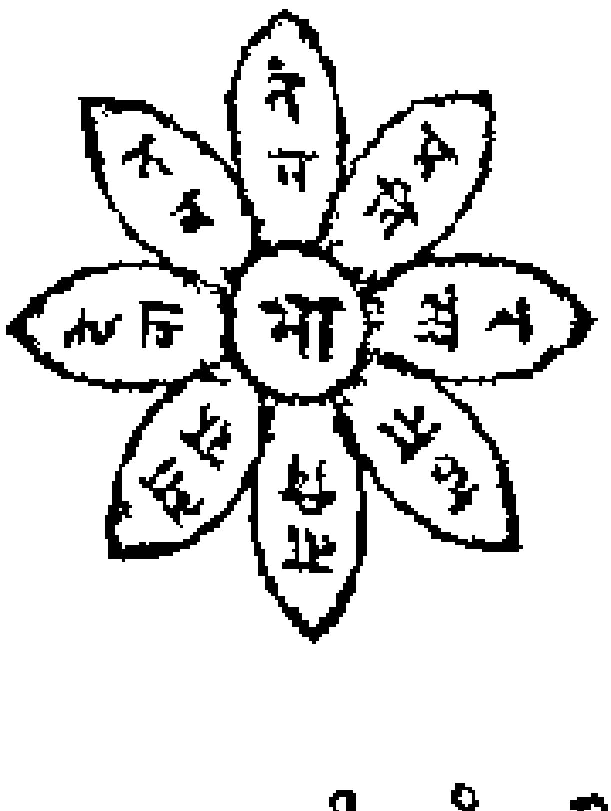


श्रेष्ठ ते तव सभा भासते शोभते । बत हर्षे
रसेनाभाता शोभिताहताऽविभाऽदीप्तिर्यस्या
स्सा । यद्वाऽविना मेषेण भातीत्यविभो
वह्निर्हतो निरस्तोऽविभो यया सा । भा-
वितो वशीकृतो ध्यातो वा आत्मा-

मुरजबन्धः ।

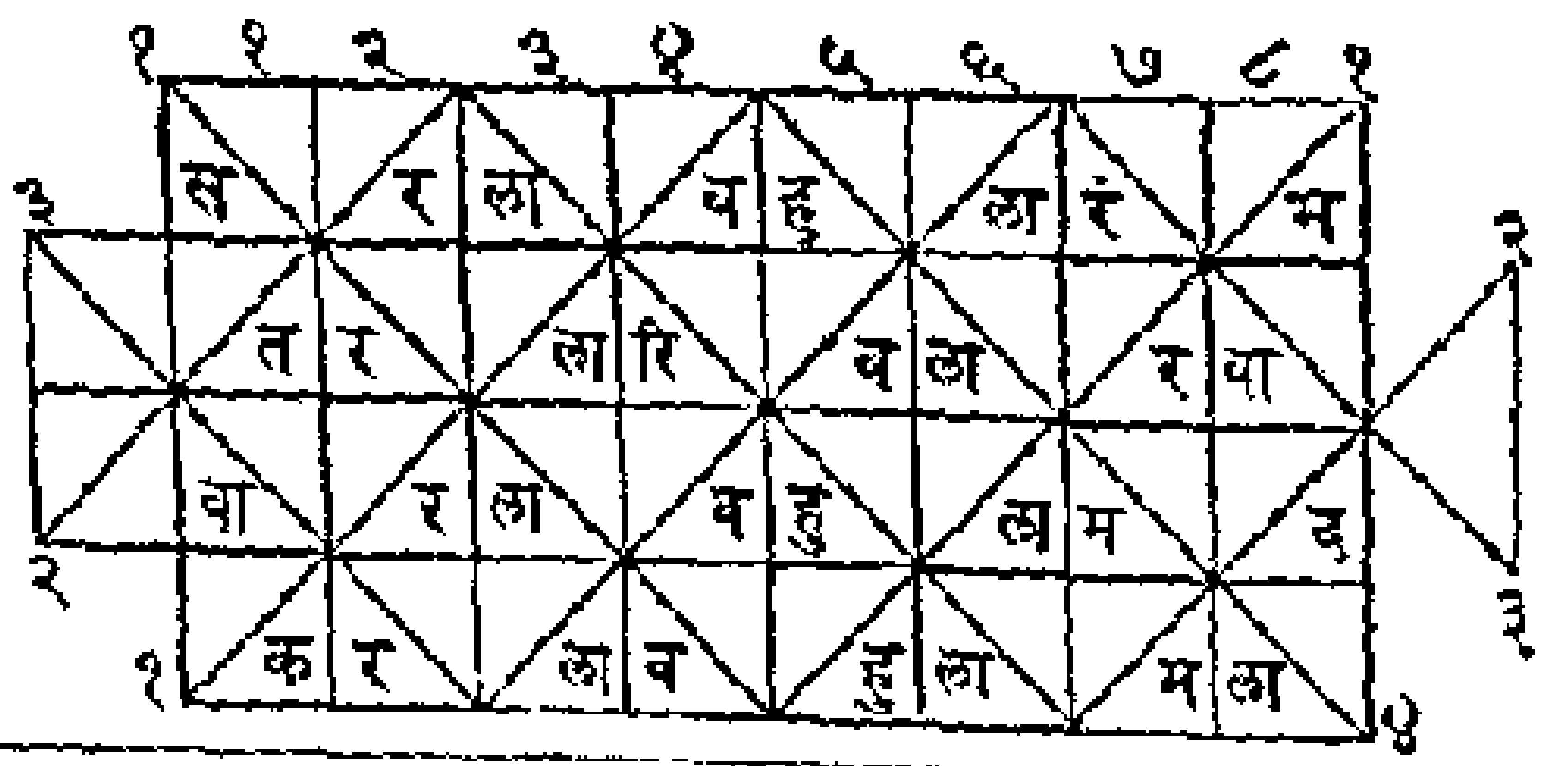


१ भाशब्दं कर्णिकायां न्यस्याष्टदलेषु भाशब्दं द्वौद्वौ वर्णौ निर्गमप्रवेशाभ्यां लिखेत् । भाशब्दो मध्यस्थो निर्गमे प्रवेशे सर्वत्रान्वेति । दिग्दलेषु ४ आरोहावरोहाभ्यां नाभा प्रवेशः विग्दिलेषु सकृदवरोहणनामैये ऐशाने च प्रति वते द्वौद्वौ वर्णौ नैर्ऋत्ये वायव्ये च हताऽत्माशु इति द्वौद्वौ वर्णौ सिद्धौ ॥ एवमष्टदलेषु कर्णिकायां सप्तदशवर्णैर्द्वात्रिंशर्णैर्निर्वादंते पूर्वदलांतान्मध्ये प्रवेशात्पद्मसिद्धिरिति पद्मबंधः ॥

२ मुरजबंधमाह । सरलाबहुलारंभतरलालिवलारवा ॥ वारलाबहुलामंदकरलाबहुलामला ॥ शरद्वर्णनम् । सरलाऽवक्रा शरोंलातीति शरला बहुल आरंभ उदयो यस्य सः तरलाना चपलानामलिवलानां द्विरेफसैन्यानां रवः शब्दो यस्यां सा वारला-भिर्हंसीभिर्बहुला: संकुला अमंदाः सोत्साहाः करौंलाति स्वीकुर्वंतीति करला राजानो यस्या सा अबहुलेन शुक्लपक्षेणामला बहुले कृष्णपक्षे नक्षत्रैरमला वा । अत्र पादचतुष्कपंक्तिचतुष्के विलिख्याद्यद्वितीयतृतीयपादे स्वा आद्यद्वितीयतृतीयान् चतुर्थपादे चतुर्थपंचमौ तृतीयद्वितीयाद्यानां षष्ठोपान्त्यांत्यवर्णैराद्यः पादः ॥ १ ॥ द्वितीयाद्यमाद्याद्द्वितीयतृतीयौ द्वितीयतृतीययोश्चतुर्थौ चतुर्थस्य तृतीयद्वितीयौ तृतीयस्याद्यवर्णो द्वितीयः पादः ॥ २ ॥ द्वितीयात्पमाद्यात्सप्तमषष्ठौ द्वितीययोः पंचमौ चतुर्थात्पष्ठसप्तमौ तृतीयोऽत्यश्चेति तृतीयः पादः ॥ ३ ॥ अंत्यस्तथा आद्यद्वितीयतृतीयैराद्याच्चतुर्थपंचमाभ्यां द्वितीयतृतीयात्यानां षष्ठसप्तमात्यैर्वर्णैश्चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥ इति मुरजसिद्धिः ॥ २ ॥

यया सा । वादे शुभा देवाभा देवतुल्या॥अस्योद्धारः। अथ सर्वतो-भद्रमाह।हे रसासार भूश्रेष्ठ। सारसं जलजं पक्षिभेदो वा, तद्वद्विशालनेत्रा। सातं न-ष्टम् अवातमज्ञातं यस्य । वा गतावित्यस्य ज्ञानार्थ-

सर्वतोभद्रश्च: ।

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| र | सा | सा | र | र | सा | सा | र |
| सा | य | ता | क्ष | क्ष | ता | य | सा |
| सा | ता | वा | त | त | वा | ता | सा |
| र | क्ष | त | स्त्व | स्त्व | त | क्ष | र |

रसासाररसा सारसायताक्षक्षतायसा ॥
सातावाततवातासाक्षतस्त्वस्त्वतक्षर ॥ १ ॥

त्वात् । तक्षस्तनूकरणं राति प्राप्नोतीति तक्षरः स न इत्यतक्षरः । अतनु अनल्पं राति ददातीत्यतक्षर इति वा तत्संबुद्धौ हेनृप रक्षतस्तव तु पुनः।रसा भूमिरस्तु।यद्वा।तव भूरीदृशी अस्तु। कीदृशी क्षतायसा क्षतोऽयः शुभावहो विधिर्येषां तानस्यति निरस्यति सा । यद्वा क्षतमायसं शस्त्रं यस्यां युद्धाभावात् । न विद्यते तासमुपक्षयो यस्याः साऽतासा । तसु उपक्षये धातुः । अयं प्रतिलोमानुलोमपादोऽपि चतुर्णां पादानामाद्यैरंत्यैश्चाद्यः पादः ॥ १ ॥ द्वितीयैरुपांत्यैश्च द्वितीयः ॥ २ ॥ तृतीयैः षष्ठैश्च तृतीयः ॥ ३ ॥ तुर्यैः पंचमैश्चतुर्थः ॥ ४ ॥ अंताद्विपर्ययो वेति सर्वतोभद्रः॥ चक्रगोमूत्रिकादयोऽन्येपि बंधभेदा बहवः संति ते च किरातार्जुनीय शिशुपालवधादौ वर्णिता इह दिङ्मात्रमेवादर्शि ॥ अथ वक्रोक्तिमाह।अन्याभिप्रायेणोक्तं वाक्यमन्येनान्यार्थकतया यद्योज्यते सा वक्रोक्तिः । एतदेव वाकोवाक्यमुच्यते । यथा । कोऽयं द्वारि हरिः प्रयाह्युपवनं शाखामृगेणात्र किं कृष्णोऽहं दयिते बिभेमि सुतरां कृष्णादहं वानरात् ॥ मुग्धेऽहं मधुसूदनो व्रज लतां तामेव पुष्पान्वितामित्थं निर्वचनीकृतो दयितया मुग्धो हरिः पातु वः ॥ अथानुप्रासः॥ वर्णसाम्यमनुप्रासः स च लाटानुप्रासच्छेकानुप्रासभेदाद्द्विधा । तत्रासकृदावृत्तवर्णो लाटानुप्रासः ॥ यथा । अनङ्गमङ्ग-

लगृहापाङ्गभङ्गितरङ्गितैः ॥ आलिङ्गितः स तन्वङ्ग्या कृतार्थ-यतु मानसम् ॥ अनेकस्य व्यंजनस्य सकृत्साम्यं छेकानुप्रासः । नितम्बगुर्वी गुरुणा प्रयुक्ता वधूर्विधातृप्रतिमेन तेन ॥ चकार सा मत्तचकोरनेत्रा लज्जावती लाजविमोक्षमग्नौ ॥ पदमेकं हृदा कृत्वा तदनुप्रासकाम्यया ॥ आदिक्षांतलिपौ कादिक्षांतशब्दं विचिंतये-दिति रहस्यम् ॥ गूढं क्रियागुप्तादि । क्रियादिकं स्थितं यत्र पदसंधानकौशलात् ॥ स्फुटं न लक्ष्यते तत्स्यात्क्रियागुप्तादिकं यथा ॥ राजन्नव घनश्यामनिस्त्रिंशाकर्षदुर्जय ॥ आकल्पंवसुधामे-नां विद्विषोद्य रणे बहून् ॥ अव द्येति द्वे क्रियापदे ॥ यथा । पुंस्को-किलकुलस्यैतैर्नितांतमधुरारवैः ॥ सहकारादुमारम्यावसंते कामपि श्रियम् ॥ अधुरत्र गुप्तमस्ति॥इदञ्च नाना यदाहुः । क्रियाकारकसं-बंधगुप्तान्यामंत्रितस्य च ॥ गुप्तं यथा समासस्य लिंगस्य वचनस्य च ॥ १ ॥ क्रियागुप्तं तूक्तम् ॥ नकरोतु नास रोषं न वदतु परुषं न हंत्वथो शत्रून् ॥ रक्षयति महीमखिलां तथापि वीरस्य धी-रस्य ॥ शरदिन्दुकुंदधवलं कृतनगनिलयं मनो हरं देवम् ॥ यैः सुकृतं कृतमनिशं तेषामेव प्रसादयाति ॥ ॥२॥क्रमेण धीर्मनश्चेति कर्तृगुप्तम् ॥ सीकराकरसंवाही सरोजवन-मारुतः ॥ प्रक्षोभयति पान्थः स्त्रीनिःश्वासैरिव मांसलः ॥ १ ॥ सुभग तवाननपङ्कजदर्शनसंजातनिर्भरप्रीतेः ॥ शमयति कुर्व-न्दिवसः पुण्यवतः कस्य रमणीयः ॥ २ ॥ इह क्रमेण सरः शञ्चे-ति गुप्तं कर्म । अयातिर्विवक्षावशतः परस्मैपद्यप्यस्ति, उदयति यदि भानुरित्यादिप्रयोगात् ॥ पूतिपंकमयेऽत्यर्थं कासारे दुःखि-ता अमी ॥ दुर्वारा मानसं हंसा गमिष्यंति घनागमे ॥ १ ॥ अहं महानसा यातः कल्पितो नृकरस्तव ॥ मया मांसादिकं भुक्तं भीमं जानीहि मां वक ॥ २ ॥ अत्र क्रमेण दुर्वारा दुष्टांबुना महा_

नसा महता शकटेनेति करणद्वयं गुप्तम् ॥ प्रसत्त्याद्युक्तमार्गस्थ तव संमानिताः श्रिताः॥ स्पृहयन्ति न के नाम गुणरत्नाकर प्रभो ॥ १ ॥ अंभोरुहमये स्नात्वा वापीपयसि भामिनी ॥ ददाति भक्तिसंपन्ना पुष्पं सौभाग्यकाम्यया ॥ २ ॥ इह क्रमेण प्रसत्त्यै अ ये चेति संप्रदानद्वयकं गुप्तम् ॥ शिलीमुखैस्त्वया वीर दुर्वारैर्नि-र्जितो रिपुः ॥ बिभेत्यत्यन्तमलिनो वनेऽपि कुसुमाकरे ॥ १ ॥ अलिबाणौ शिलीमुखावित्यमरादलिनो भ्रमरस्यापि भीहेतुत्वम् ॥ सरसीतोयमुद्धृत्य जनः कंदर्पकारकम् ॥ पिबत्यंभोजसुरभिस्व-च्छमेकान्तशीतलम् ॥ २ ॥ इहसरसीत इति गुप्तमपादानम् ॥ या कटाक्षच्छटापातैः पवित्रयति मानवम् ॥ एकान्ते रोपितप्रीतिरस्ति सा कमलालया ॥ १ ॥ विपद्यमानता सिद्धा सर्वस्यैव निरूष्म-णः ॥ तथा हि भस्म पादाभ्यां निर्वाणं हन्त्ययं जनः ॥ २३ ॥ इह क्रमेण एकारपदवाच्ये विष्णाविति विपदि विपत्ता-विति गुप्तमधिकरणद्वयम् ॥ निर्वाणं शीतं भस्माऽयं जनः पादा-भ्यां हंतीति योजना। निरूष्मणो निस्तेजसः॥ तूणीव मधुमा-सेऽस्मिन्रसालद्रुममंजरी ॥ इयमुद्भिन्नमुकुलैर्भाति न्यस्तशिलीमु-खा ॥ १ ॥ अस्यापत्यमिस्तस्य एः कामस्य तूणीव विकसित-कुड्मला परिभ्रमद्भ्रमराऽऽश्रवल्लरिः शोभते ॥ प्राप्तमदो मधुमासः प्रबलरुचिप्रयतमोऽपि दूरस्थः ॥ असतीयं सन्निहिता हा हत-शीला सखी नित्यम् ॥ २ ॥ चैत्रमासस्येदमतिप्रकृष्टतेजः प्राप्त-मिति योज्यमिह क्रमेण एर्मधुमास इति गुप्तसंबंधद्वयकम् ॥ सर्व-ज्ञेन त्वया वीर नास्त्यविज्ञातमीदृशम् ॥ इहेनेतिगुप्तमामंत्रितम्॥ कमले कमले नित्यं मधूनि पिबतस्तव ॥ भविष्यति न संदेहः कष्टं दोषाकरोदये ॥ १ ॥ हे अले कमले नित्यं मधूनि पिबतस्त-व कं सुखमस्ति तथापि चंद्रोदये कष्टं भविष्यति कमलसंकोचात् ॥

वटवृक्षो महानत्र मार्गमावृत्य तिष्ठति ॥ तावत्त्वया न गंतव्यं यावन्मार्गे स तिष्ठति ॥ इहापि क्रमेणाऽले वटो इति संबुद्धिर्गुप्ता कर्ता च गुप्तोऽस्ति॥२॥रामनाम सुधाधाम पवित्रं रस ना रसम्॥ कः कर्त्ता कर्म किश्चात्र के च संबोधनक्रिये॥ इह हे नः त्वं रामनाम रस आस्वादय। किंभूतं सुधाधामामृतस्थानं पुनः पवित्रं रसरूपञ्च। अत्र कर्तृकर्मसंबुद्धिक्रियाश्च गुप्ताः॥ विपादी भैक्ष्यमश्नाति सदारोगं न मुंचति ॥ क्रुद्धेनापि त्वया वीरशंभुनारिः समः कृतः ॥ १ ॥ इह विपादश्चेतसो भंगः सोऽस्यास्तीति विपादी विपमत्तीति वा सदारोगं शश्वद्व्याधिं सभार्यः अगं हिमाद्रिम् इह विपादी सदारइति च समासयोर्गुप्तिः॥ नित्यमाराधिता देवैः कंसस्य द्विपतस्तनुः॥ मंडलाग्रं गदां शंखं चक्रं जयति बिभ्रती ॥ २ ॥ इहापि नित्यं मा श्रीर्यस्यांसेति समासो गुप्तः मंडलाग्रं कौक्षेयकं खड्गमिति यादवः। इतिसमासगुप्तम् ॥ नितांतस्वच्छहृदयं सखिप्रेयान्समागतः ॥ त्वां चिरादर्शनप्रीत्या यः समालिंग्यरंस्यते ॥ १ ॥ इह स्वच्छहृदयमिति विशेषणक्रियाभ्रांत्याऽयमिति पुंल्लिङ्गमस्पष्टम् ॥ कलिकालमियं तावदगस्त्यस्य मुनेरपि॥ मानसं खंडयत्यत्र शशिखंडानुकारिणी॥ २॥ इयं लोपामुद्रा वक्रशीलतयाल्हादकतया च शशिखंडानुकारिणी अगस्त्यस्यापि मुनेश्चेतःकलिना प्रणयकलहेन कालं मलिनतामापन्नं खंडयति तथाऽगस्त्यस्य तरोरियं कलिका मुकुलं शशिखंडवत्कुटिला मुनेरपि मनःखंडयत्युद्दीपनविभावत्वात् । अत्र कलिकेति स्त्रीलिंगं गूढम् ॥ इति लिंगगुप्तम् ॥ प्रमोदं जनयत्येव सदारागृहमेधिनः ॥ यदि धर्मश्च कामश्च भवेतां संगताविमौ॥ १ ॥ इह रा इति सुवचनं गुप्तम् ॥ कस्मात्त्वं दुर्बलासीति सख्यस्तां परिपृच्छति॥त्वयि सन्निहिते तासु दद्यात्किं शुथयोत्त

रम् ॥ २ ॥ इह परिपृच्छतीति यङ्लुकि लट्प्रथमपुरुषवचनं गूढ-मस्तीतिअतिशयेन पुनःपुनः पृच्छतीत्यर्थः ॥ इति तिङ्वचन-गुप्तम् ॥ एकोच्चारणापह्नुतिभेदत्वं श्लेषत्वम् । स चाष्टधा वर्णपद-लिंगभाषाप्रकृतिप्रत्ययविभक्तिवचनानां भेदात्। क्रमेणोदाहरणम्॥ अलंकारः शंकाकरनरकपालः परिजनो विशीर्णांगो भृङ्गी वसुच वृष एको बहुवयाः ॥ अवस्थेयं स्थाणोरपि भवति सर्वामरगुरोर्विधौ वक्रे मूर्ध्नि स्थितवति वयं के पुनरमी ॥१॥ इह विधौ चंद्रे दैवे च वक्रे कुटिले विरुद्धे च मूर्ध्नि शिरसि सर्वोपरि च अत्र विधु-विधिशब्दयोरौकारांतं रूपं सप्तम्यां समानं तेन इउवर्णयोः श्लेषो-ऽयम् ॥ १ ॥ पदश्लेषमाह ॥ पृथु कार्त्तस्वरपात्रं भूषितनिःशेष-परिजनं देव ॥ विलसत्करेणुगहनं संप्रति सममावयोः सदनम् ॥ २ ॥ पृथूनि कार्त्तस्वरस्य हेम्नः पात्राणि यत्र तत् पक्षे पृथु-कानां बालानामार्तस्वरस्थानम् । भूषिता अलंकृता निःशेषा-स्सर्वे परिजनाः सम्बंधिनो यत्र पक्षे भुवि उषिताः शयिता इ-ति पूर्ववत् । बिलेषु सन्तो विलसत्काः । स्वार्थिकःकः । मूषिकास्ते-षां रेणुना गहनंदुःप्रवेशम् पक्षे विलसंतः प्रकाशंतो ये करेणवो ह-स्तिनस्तैर्गहनमिति॥२॥लिंगश्लेषमाह॥भक्तिप्रह्वविलोकनप्रणयिनी नीलोत्पलस्पर्द्धिनी ध्यानालम्बनता समाधिनिरतैर्नीतेहितप्राप्तये॥ लावण्यैकमहानिधी रसिकतां लक्ष्मीदृशोस्तन्वती युष्माकं कुरुतां भवार्तिशमनं नेत्रे तनुर्वा हरेः ॥ ३ ॥ हरेस्तनुर्नेत्रे च युष्माकं संसृतिक्लेशहानिं कुरुताम्। भक्तिनम्रविलोकने प्रणयः स्नेहो यस्या ययोर्वा तथा।पुनर्नीलोत्पलं स्पर्द्धितुं शीलं यस्या ययोर्वा पुनः समा-धिनिष्ठैर्ध्यानविषयतां नीता नीते वा । तनुपक्षे । ईहितस्याभी-ष्टस्य प्राप्तये । पक्षे हितस्य शोभनस्य । पुनः सौंदर्यैकस्थानं पुनर्लक्ष्मीनेत्रयोरानंदवत्तां वर्द्धयती। अत्र नेत्रतन्वोर्नपुंसकस्त्रीलिं-

गरूपसाम्याल्लिंगयोः श्लेषः।एकवचनद्विवचनयोः शब्दसाम्यवचन-श्लेषोऽपीत्यर्थः॥३॥अथ प्राकृतसंस्कृतभाषयोः श्लेषमाह।महदेसुरसं धम्मेतमवसमासंगमागमाहरणे॥हरबहुसरणं तंचित्तमोहमवसर उमे सहसा ॥ ४ ॥ मह्यं दद स्वरसं धर्मं तमोवशामाशांगमागमात्संसार रूपात् हर नः हे हरवधुशरणं त्वं चित्तमोहोऽपसरतु सहसा मे इति प्राकृतेऽर्थः । संस्कृते तु महदे उत्सवदात्रि उमे मे आगमाहरणे वेदोपादाने तं सुरसंधं देवेषु संधानं भक्तिमवरक्ष समासंगमासक्तिं हर अपनय बहु सरणं प्रसरणं यस्य तं चित्तमोहमवसरे समये उमे सहसा हरेत्यावृत्त्या योज्यम् ॥ ४ ॥ प्रकृतिश्लेषमाह । अयं सर्वाणि शास्त्राणि हृदि ज्ञेषु च वक्ष्यति ॥ सामर्थ्यकृदमित्राणां मित्राणां च नृपात्मजः ॥ ५ ॥ अयं सर्वाणि शास्त्राणि हृदि वहिष्यति ज्ञेषु विज्ञेषु जनेषु वदिष्यति । वहिवच्योर्लृटि वक्ष्यतीति समं रूपम् । अमित्राणां सामर्थ्यं कृंततीति मित्राणां सामर्थ्यं करोतीति । कृंततिकरोत्योः क्विप् । तेन प्रकृत्योः श्लेषः ॥५॥ प्रत्ययश्लेषमाह । रजनिरमण मौलेः पादपद्मावलोकक्षणसमयपराप्तापूर्वसंपत्सहस्रम्॥ प्रमथनिवहमध्ये जातुचित्त्वत्प्रसादादहमुचितरुचिः स्यान्नन्दिता सा तथा मे ॥ ६ ॥ चंद्रमौलेः पादपद्मावलोकेक्षण उत्सवस्तत्समये परातं प्राप्तं यदपूर्वमगोचरं संपदां सहस्रं यत्र तद्यथा स्यात्तथाहं जातुचित्कदाचित्तस्य चंद्रमौलेः प्रसादात् प्रमथाख्यगणमध्ये उचिता योग्या रुचिः प्रीतिर्दीप्तिर्वा यस्य तादृशो नंदिता-नंदकर्ता स्यां भवेयं तथा सति सा नंदिता नंदिनो गणस्य भावो नंदिता मे मम स्यादित्यर्थः । अत्र स्यां स्यादित्युत्तमप्रथमपुरुषयोर्नंदितेति तृच्लुटोः प्रत्यययोश्च श्लेषः ॥ ६ ॥ अथ सुप्तिङ्-भक्त्योः श्लेषमाह । सर्वस्वं हर सर्वस्य त्वं भवच्छेदतत्परः ॥ नयोपकारसांमुख्यमायासि तनुवर्त्तनम् ॥७॥ भो हर त्वं सर्वस्य सर्वस्वं

भवः संसारस्तन्नाशपरः नयो नीतिरुपकारश्च तयोः सांमुख्यमानुकूल्यं ततुः शरीरं तस्य जीवनं वर्त्तनं चायासि ग्रामोपि । पक्षे चोरं प्रत्युक्तिः।त्वं सर्वस्य सर्वस्वं हर छेदो ग्रंथेर्भित्तेर्वा तत्परो भव। उपकारसांमुख्यं नय त्यज । आयासि क्लेशयुक्तं वर्तनं तनु कुरु । अत्र हरभवनयायासितन्विति तिङन्तानि क्रियापदानि सुबन्तानि चेति सुप्तिङां श्लेषः॥७॥अथ प्रहेलिका।व्यक्तीकृत्य कमप्यर्थं स्वरूपार्थस्य गोपनात् ॥ यत्र वाक्यांतरादर्थः कथ्यते सा प्रहेलिका॥१॥ सा द्विधाऽऽर्थी च शाब्दी च विख्याता प्रश्नशासने ॥ आर्थी स्यादर्थविज्ञानाच्छाब्दी शब्दविभंगतः ॥ २ ॥ तरुण्याऽऽलिंगितः कंठे नितंबस्थलमाश्रितः ॥ गुरूणां सन्निधानेऽपि कः कूजति मुहुर्मुहुः ॥ ३ ॥ पानीयकुंभ इति मध्योऽर्थः । बाह्योऽर्थस्तु भर्त्ता ॥ आः पाण्डुपीनकठिनं वर्तुलं सुमनोहरम्॥ कैराकृष्यतेऽत्यर्थं किं वृद्धैरपि सस्पृहम् ॥ ४ ॥ बाह्योऽर्थः स्तनयुगम् । मध्योऽर्थः पक्वबिल्वफलम् । इत्यार्थी ॥ दुर्वारवीर्यसरुपि त्वयि या प्रसुता श्यामा सपत्नहृदये सुपयोधरा च ॥ तुष्टे पुनः प्रणतशत्रुसरोजसूर्ये सैवाद्यवर्णरहिता वद नाम का स्यात् ॥ ५ ॥ शस्त्री त्वयि सकोपे या शत्रुहृदये वर्णेन श्यामा अजातरजस्का मार्जितत्वात् सुष्टु जलधारिणी मध्ये निम्नत्वात् । पक्षे सुस्तनी प्रसुप्ता नम्रीभूता श्यामा षोडशवार्षिकाऽजातरजस्का निवृत्तरजस्का शस्त्री असिपुत्री स्त्री वनितेति॥सदारिमध्यापि न वैरियुक्ता नितांतरक्तापि सितैव नित्यम्। यथोक्तवादिन्यपि नैव दूतिका का नाम कांतेव निवेदयाऽऽशु ॥ सारिका पक्षिविशेषः द्यूतक्रीडनका वा। सदारिशब्दो मध्ये यस्याः सा न वैरियुक्ता । नितांतमत्यर्थं रक्ता मधुरा सितावद्धैव नित्यं यथोक्तं यथाधीतं वक्ति न दूतीति कांता कमनीया ककारान्ता चेति शाब्दी जातिः ॥ अलंकारशेखरे तु । प्रहेलिका सकृत्प्रश्नः

सा च षोढा च्युताक्षरा॥ दत्ताक्षरोभयाक्षराक्षरमुष्टिबिन्दुमत्यर्थवती-भेदात्॥सुशीलः स्वर्णगौराभः स्वर्णचंद्रनिभाननः॥सुगतः कस्य न प्रीतिं तनोति हृदि संस्थितः॥ १ ॥ इह सुगतम् इत्यत्र मध्ये गकारभ्रंशात्सुत इति सिध्यति इति च्युताक्षरा । इहाक्षरशब्देन मात्राविसर्गबिन्दुव्यंजनान्यपि ग्राह्याणि ॥ अन्योप्यर्थः स्फुटो यत्र मात्रादिच्युतकेप्यपि ॥ प्रतीयते विदुस्तज्ज्ञास्तन्मात्राच्युत-कादिकम् ॥ १ ॥ महाशयमतिस्वच्छं नीरं संतापशांतये ॥ खलावासादतिश्रान्ताः समाश्रयत हे जनाः ॥ १ ॥ अत्र नकार-स्यैकारमात्रायाश्च्यावने नरोऽपि भवति । तथा च नरनीरयोः कर्मणोः समाश्रयतेति क्रिययान्वयः । महान् आशयश्चित्तमाश्रयो वा यस्य तम्।अतिस्वच्छमकुटिलं निर्मलं च । संतापः आधिव्या-धिश्च । खलो दुर्जनो धान्यमर्दनभूश्च ॥ तुषारधवलः स्फूर्जन्महा-मणिधरोनघः ॥ नागराजो जयत्येकः पृथिवीधरणक्षमः ॥ २ ॥ इह नकारे आकारच्यावनान्नगराजो हिमाद्रिर्नागराजः शेषः ॥ इह यद्यपि । धूमे शंखे मणौ मांसे नेले भोज्ये गृहे पथि । गुरुमज्ज-नवैद्येषु संज्ञायां ब्राह्मणे तथा॥अश्लीलार्थाभिधायित्वान्महच्छब्दं न दापयेदिति वचनान्महामणिशब्दो लज्जाकरस्तथापि क्रीडाकाव्येषु न दोषो महामणिषु जातं मन्यसे त्वं महत्वमित्त्यादिप्रयोग-दर्शनात् ॥ मात्राच्युतकमिति । सुश्यामा चंदनवती कांता तिल-कभूषिता ॥ कस्यैषानंगभूः प्रीतिं भुजंगस्य करोति न ॥ १ ॥ अत्रानंगभूरित्यत्र बिंदुच्युत्या नगभूर्भवति सा चौचित्यान्मलयाद्रि-र्ज्ञेया।सुष्ठु श्यामला ऽजातरजाश्च।चंदनद्रुमवती चंदनांगरागवती च । कांता कमनीया वल्लभा च । तिलकैर्वृक्षैः पुंड्रेण च भूषिता। भुजंगः सर्पो विटश्च॥काले तडिल्लताजाले घनपीनपयोधरे॥कांतः सर्वगुणो-पेतो बालेंदुःखे न लभ्यते॥१॥ इहापि बालेंदुरिह बिंदुच्युतौ हे बाले

वर्पेतौ कांतो भर्ता दुःखेन लभ्यत इत्यर्थः॥इति विन्दुच्युतकम्॥महीरुहा विहंगानां मधुरैककलापिनाम् ॥ विरुतैर्नीरवाहाय स्वागतानीव कुर्वते ॥ १ ॥ मधुरैककलापिनामिह विसर्गच्युत्या मधुरैर्विरुतैश्शब्दैः मधुरमेवैककं लपितुं शीलं येषां तेऽत्रैकशब्दः स्वार्थिककांतो ज्ञेयः।पक्षे केन सुखेन युक्तः कलापः पुच्छभागो येषां तेषां मयूराणां मधुरैर्विरुतैरिति ॥ अगस्त्यस्य मुनेः शापाद्ब्रह्मस्पंदनमाश्रितः ॥ महासुखात्परिभ्रष्टो नहुषः सर्पतां गतः ॥२॥ इहापि महासुर्महाप्राणः खादाकाशाद्भ्रष्टो नहुषो विप्ररथस्थः सर्पतां गतः। पक्षे बृहत्सुखादिति विसर्गच्युतकम् ॥ भिक्षवो रुचिराः सर्वे सुरसाश्च जनप्रियाः ॥ क्षमायामपि संपन्ना दृश्यंते मगधे परम् ॥ १ ॥ भकारच्युताविक्षवः स्युः। इक्षुपक्षे स्पष्टोर्थः । भिक्षुपक्षे रुचिरा वपुर्वेषयुक्त्युक्तिभिर्दीप्ताः शृंगारादिरसाभिनायकत्वात्सुरसाः क्षमायां क्षांतावपि संपन्नाः परं केवलं मगधदेशे दृश्यंते । पक्षे क्षमायां भूमौ । इति व्यंजनच्युतकम् ॥ स्फोटयित्वाक्षरं किञ्चित्पुनरन्यस्य दानतः ॥ यत्रापरो भवेदर्थश्च्युतदत्ताक्षरं हि तत् ॥ १ ॥ सदागतिहतोच्छ्रायस्तमसोवश्यतां गतः ॥ अस्तमेष्याति दीनो यं विधुरेकः शिवास्थितः ॥ १ ॥ अयमेको विधुश्चंद्रः शिवास्थितो हरस्थो दीनः क्षीणः सदागत्या गमनेन हतोच्छ्रायो गतवृद्धिः। एकत्रावस्थित्या कुब्जीभूतांग इत्यर्थः । तमसो राहोरवश्यतामग्रसनीयतां गतोऽस्तमेष्याति । काका नैष्यतीत्यर्थः । तथाऽयं दीपः सदागतिना वायुना हतोच्छ्रायः ग्रास्तशिखः तमसोंधकारस्य वश्यतां गतोऽस्तमेष्यति विध्वस्तो भविष्यति यतो विधुरे विपदि कः शिवो निरुपद्रवः स्थितः। अत्र दीन इति नकारं स्फोटयित्वा पकारो दत्तः ॥ १ ॥ पूर्णचंद्रमुखी रम्या कामिनी निर्मलांबरा ॥ करोति कस्य न स्वांतमेकांतमदनातुरम् ॥ अत्रापि

कामिनीह ककारं निष्कास्य यकारदाने यामिनी रात्रिरिति। 'अंबरं व्योम्नि वाससी'त्यमरः।स्वांतं मनः पूर्वस्यालंबनविभावत्वादपरस्यो- द्दीपनविभावत्वाच्चेति च्युतदत्ताक्षरा॥प्रसंगात्स्थानच्युतकमप्याह॥ तनोतु ते यस्य फणी गरुत्मान्पाणौ मुरारिर्दयिता च शय्या॥नाभ्यां स्फुरन्भद्रमशुभ्रदेहः पद्मा गतिश्चक्रमसौ विरिञ्चिः ॥१॥असौ मुरारि- र्विष्णुस्ते तव भद्रं शुभं तनोतु। यस्य फणी शेषः शय्या।गरुत्मान् गतिर्वाहनम्। पाणौ चक्रं दयिता श्रीः नाभ्यां विरिञ्चिः स्फुरन्दी- प्यमानः। अशुभ्रदेहः श्यामांगः। अत्र व्युत्क्रमयोजनया स्थान- च्युतकत्वम् ॥ अथाक्षरमुष्टिमाह ॥ बहूनां यत्र वस्तूनामुक्तिराद्या- क्षरेण हि। प्रोच्यतेक्षरमुष्टिस्सा साहित्यनयकोविदैः ॥ अकचटत- पयशा यथा वर्गाष्टबोधकाः॥आचंकुराजशिबुकेशुनवग्रहबोधकाः ॥ एवम्। आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती। संगमे नहि भोक्तव्यं द्वादश्यां द्वादशक्षयादित्युक्तेरन्यथापि बोध्याक्षरमुष्टिः।स्वरेषु बिन्दु- युक्तेषु हलांयदवबोधनम्। तद्बिंदुमादितिप्राहुः केचिद्बिंदुमतीमिति ॥

िः ००००ु०ि०ंि००ंि००ोः००ुु ः ०ी०ि००ः।००ु००ि००ु००ि००ु००ुि००००ो००ि ः ः ॥

त्रिनयनचूडारत्नं मित्रं सिंधोः कुमुद्वती दयितः ॥ अयमुदयाति घुसृणारुणतरुणिमवदनोपमश्चन्द्रः ॥ १ ॥ घुसृणा कुंकुमम्। अर्थ- वती तु तरुण्यालिंगित इत्यादिना प्रागुक्तैव ॥ प्रश्नोत्तरं क्रमप्राप्त- माह ॥ बहिरंतर्भेदात्प्रश्नोत्तरं द्विधा । तत्र बहिः प्रश्नोत्तरं यथा। प्रायः कार्ये नियुज्यंते जनाः सर्वत्र कीदृशाः॥नाधेत्यय भवेच्छन्दो नौवाची वद कीदृशः ॥ १ ॥ सावधानाः अविकलेंद्रियाः। औकारेण सहितः सौ अधाना इति शब्देन रहितो नाधा इति शब्दो नौरिति भवेत्। यद्वा सौ अधानाः सौ सहौकारेणेति सौ तथा कृते नाधाश्शब्दो नाधौर्जायतेऽधानाः न विद्यतेऽधोयत्र सोऽधः न विद्यते

१ सावधाना इत्युत्तरम्।

आ आकारो यत्र सोऽना अधश्चानात्यधानाः धलोपे आलोपे च नका-रौकारयोर्योगे नौरिति सिद्ध्यति ॥१॥ अंतःप्रश्नोत्तरं यथा । पृथ्वी-संबोधनं कीदृक्कविना परिकथ्यते ॥ केनेदं मोहितं विश्वमत्रैवास्ति न बुध्यसे ॥ १ ॥ को इति पृथिवीसंबोधनम् । इना कामेनेदं मोहि-तमिति ॥ अथ यमकलक्षणम् ॥ अतुल्यार्थत्वे सत्यानुपूर्वीविशेष-विशिष्टनियतव्यंजनसमुदायो यमकम् । यथा । नवपलाशपलाश-वनं पुरः स्फुटपरागपरागतपंकजम् ॥ मृदुलतां तलतां तमलोक-यत्ससुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥ १ ॥ सुरभिर्वसंतः । तच्चेदं संक्षे-पेण सप्ताशीतिप्रकारमित्यलंकारशेखरः । काव्यप्रकाशे तु 'अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः । यमकं पादतद्भागवृत्ति तद्यात्यनेकताम् ॥समरसमरसोऽयमित्यादावेकेषामर्थवत्त्वेऽन्येषाम-नर्थवत्त्वे भिन्नार्थानामिति न युज्यते वक्तुमित्यर्थे सतीत्युक्तं सेति सरोरस इत्यादिवैलक्षण्येन तेनैव क्रमेण स्थितानां पादेति प्रथमो द्वितीयादौ द्वितीयस्तृतीयादौ तृतीयश्चतुर्थे प्रथमस्त्रिष्वपीति सप्त। प्रथमो द्वितीये तृतीयश्चतुर्थे इति प्रथमश्चतुर्थे द्वितीयस्तृतीयश्च इति द्वे तदेवं पादजं नवभेदम् ॥ अर्धावृत्तिश्श्लोकावृत्तिश्चेति द्वे । द्विधा विभक्ते पादे प्रथमपादादिभागः पूर्ववत् । द्वितीयतृतीयादि-पादादिभागेष्वंतभागांतभागेष्विति विंशतिभेदाः । श्लोकान्तरे नासौ भागावृत्तिः । त्रिखंडे त्रिंशच्चतुष्खंडे चत्वारिंशत् । प्रथम-पादादिगतान्त्यार्द्धादिभागो द्वितियपादादिगते ॥ अद्यार्द्धादिभागे यम्यत इत्याद्यन्वर्थतानुसरणेनानेकभेदमन्तादिकमाद्यंतिकं त-त्समुच्चयः मध्यादिकमादिमध्यमन्तमध्यं मध्यांतिकं तेषां समुच्चयः तस्मिन्नेव पादे आद्यादिभागानां मध्यादिभागेष्वनियतेऽवस्थाने आवृत्तिरिति प्रभूततमभेदं तदेतत्काव्यान्तर्गतमिति ना-

---

१ कविना इत्युत्तरम् ।

स्य भेदलक्षणं कृतं दिङ्मात्रमुदाह्रियते । अथास्य व्याख्या । अर्थे सतीति । अर्थभिन्नानां भिन्नार्थानां वाहिताग्न्यादिष्विति पूर्वनिपातः । तेनैकार्थे लाटानुप्रासेन प्रसंगः । एवं त्वर्थशून्यानां पुनः श्रुतौ यमकं न स्यादत आह । अर्थे सतीति । सा भिन्नक्रमा वर्णानां पुनःश्रुतिर्यमकमित्यर्थः । अत्र वर्णयमकभेदेऽपि श्रुतिसाम्ये यमकं भवत्येव । यथा माघे । भुजलतां जडतामवलाजन इति डलयोः साम्ये ॥ तदुक्तं डलयोरलयोश्चैव डरयोश्च समा श्रुतिरिति । नन्वर्थे सतीति व्यर्थमत आह । समरेति । समरे युद्धे समो रसो यस्य सः । अत्र द्वितीयसमरपदेऽर्थाभावान्न यमकं स्यादतोऽर्थे सत्युक्तम् । मूले सेति पदं व्यर्थमत आह । तेन तुल्यार्थशून्यानेकवर्णपुनःश्रुतिर्यमकं तच्च भिन्नार्थत्वेऽर्थाभावे च तुल्यं विशिष्टाभावस्य द्वेधासंभवादिति तत्त्वम् ॥ मूले सेति पदं व्यर्थमत आह । सर इति । सरसस्तडागस्य रस इत्यत्र वर्णाभेदेऽपि क्रमभेदान्न यमकमित्यर्थः । अस्य विंशतिभेदानाह । पादे यमकं द्वेधा पादवृत्तिस्तद्भागवृत्तिश्च । आद्यमेकादशधा प्रथमः पादो द्वितीयादौ द्वितीये तृतीये चतुर्थे च विकल्पेन यम्यत इत्यग्रेतनेन संबंधः । एवं साम्ये मुखम् १ संदेहः २ आवृतिश्चेति त्रयो भेदाः । द्वितीयः पादस्तृतीये चतुर्थे च सम इति गर्भसंदेशौ द्वौ तृतीयश्चतुर्थे इत्येकः पुच्छाख्यः प्रथमः पादस्त्रिष्वपि सम इति पंक्त्याख्यः । यथा । विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा इति । अत्र मुखयोगे युग्मकम् । गर्भावृत्त्योर्योगे परिवृत्तिः । अर्द्धावृत्तिः समुद्गकं श्लोकावृत्तिर्महायमकमेवं सप्तभेदाः । पादयमकस्येत्यर्थः प्रथम । इति । आद्ययोरंत्ययोश्च पादयोः साम्ये एकः । आद्यंतयोर्द्वितीयतृतीययोश्च साम्येऽन्य इति द्वौ तेन नव भेदाः । पादयमके इत्यर्थः । अर्द्धश्लोकयोः पादरूपत्वात्पादावृत्तावंतर्भावः । तद्भागेति मूलं व्याचष्टे । द्विधेति । श्लो-

कपादांश्चतुरो द्वेधा कृत्वाऽऽद्यभागस्य द्वितीयपादौ तृतीयचतुर्थादौ भागे साम्यम् । एवं द्वितीयाद्यभागः तृतीयाद्ये चतुर्थाद्ये च सम इति पञ्च । अंतभाग इति प्रथमपादांत्यभागो द्वितीयांत्ये तृतीयांत्ये चतुर्थांत्ये इति पञ्च । एवं भागावृत्तौ दश पूर्वोक्ताः । श्लोकावृत्तिं विना दशेति विंशतिरित्यर्थः । ननु श्लोकावृत्त्या सहैकविंशत्या भाव्यम्। कथं विंशतिभेदा इत्यत आह। श्लोकान्तरेति। भागावृत्तौ न श्लोकावृत्तिः । द्विव्यक्षरावृत्तावपि व्यवधाने चमत्काराभावादित्यर्थः । पादस्य त्रेधाभागे चतुर्द्धा भागे चान्यभेदानाह । त्रिखंडेति । त्रिखंडे चतुष्खंडे इत्यत्र पादे इत्यनुषंगः।आद्यपादभागो द्वितीयाद्ये इति पूर्ववद्योज्यम्।अन्वर्थता अनेकभेदं यमकमित्यनुषंगः । त्रिखंडचतुष्खंडादौ यमकभेदानाह।अंतादिकमिति । प्रथमांतस्य द्वितीयाद्यैक्येंतादिकं प्रथमादेर्द्वितीयांतैक्ये आद्यांतिकं प्रथमान्तद्वितीयांतयोरैक्ये तत्समुच्चयः।प्रथममध्यस्य द्वितीयाद्यैक्ये मध्यादिकं प्रथमादेर्द्वितीयमध्यसाम्ये आदिमध्यं प्रथमांतस्य द्वितीयमध्येन प्रथममध्यस्य द्वितीयांतेन साम्ये तत्संज्ञे प्रथमादिमध्यांतानां द्वितीयाद्यादौ समुच्चयः इत्यन्वर्थता ज्ञेया । एकपादेऽपि तद्भेदानाह।तथेति।आदिभागस्य मध्यंते वा नियमेन विकल्पेन संस्थितिरावृत्तिः।एवं द्वितीयादिपादेष्विति प्रभूतभेदं यमकमित्यन्वयः । गडुर्ग्रंथिः शब्दचित्रत्वेनाधमत्वादित्यर्थः । दिङ्मात्रं मार्गमात्रं पूर्णवचनाशक्तेरित्यर्थः ॥ पुनर्मूलम् ॥ सन्नारीभरणोमायमाराध्य विधुशेखरम् ॥ सन्नारीभरणोऽमायस्ततस्त्वं पृथिवीं जय ॥ विना यमेनोनयतासुखादिना विनाऽयमेनोनयताऽसुखादिना ॥ महाजनोऽदीयत मानसादरं महाजनोदीयतमानसादरम् ॥ स त्वारं भरतोऽवश्यमवऽलंबिततारवम् । सर्वदा रणमानैषीदवानलसमास्थितः ॥ पुनरयं श्लोकः ॥अनंतम-

हिमव्याप्तविश्वा वेधा न वेद याम् ॥ या च मातेव भजते प्रणते-
मानवे दयाम्॥यदानतोऽयदानतो न यात्ययं नयात्ययम् ॥ शिवेहि
तां शिवे हितां स्मरामितां स्मरामि ताम् ॥ समुच्चययमकम् । सर
स्वति प्रसादं मे स्थितिं चित्तसरस्वति ॥ सरस्वति कुरु क्षेत्रं कुरुक्षे
त्रंसरस्वति ॥ ससार साकं दर्पेणकंदर्पेण ससारसा ॥ शरन्नवाना वि-
भ्राणा नाविभ्राणा शरन्नवा ॥ मधुपराजिपराजितमानिनीजनमनः-
सुमनःसुरभिश्रियम् । अभृतवारिजवारिजविप्लुवं स्फुटितताम्रतता-
भ्रवणं जगत्॥एवं वैचित्र्यसहस्रैः स्थितमन्यदुन्नेयम्॥अथ व्याख्या॥
आद्यतृतीयपादसाम्ये आह । सन्नारीति । सन्ना नष्टा अरीणामिभा
गजा यत्रेदृशो रणो यस्य स त्वं सतीर्नारीर्विभर्ति पुष्णाति यो मा
गौरी तां याति यस्तं विधुशेखरं शिवम् । अमायमकपटं यथा
तथाराध्य ततो हेतोः पृथिवीं जयेत्यर्थः । पादावृत्तौ युग्मक-
माह । विनेति । यमरूपेण विना पक्षिणाऽयं महाजनः सज्जन ए-
नोऽपराधं विना यतमानानां प्रयत्नवतामपि सादं दुःखं रातिं ददा-
तीति सादरं यथा तथा । यद्वा । यतो दीर्घो मानो येषां तेषु सादरं
यथातथा । मानसाच्चित्तात्सरसश्चारमत्यर्थमदीयत अखंड्यत अमा-
र्येतेत्यर्थः । कीदृशेन यमेन नयता स्वस्थानं प्रापयताऽसून्प्राणा-
न्खादतीति खादी तेन । ऊनयता हानिं कुर्वता सुखादि ऊनयता
नाशयता अयन्ना पुमान् अखंड्यतेति संबंधः । महमुत्सवमजति
क्षिपतीति महाजः खलस्तं नुदतीति महाजनो ना पुरुषः ।
यद्वाऽयं शुभविधिं विना एनः पापं नयता जनयता महां-
तमजं छागं नुदाति ददातीति नोदी 'महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रिया-
योपकल्पयेत्' इत्युक्तेः ॥ श्लोकावृत्तिमाह । स त्वेति ॥ स तु भरतो
राजाऽवश्यं निश्चितमवलंबितमाश्रितं तारवं तरुसमूहो येन तदार-
मारिसमूहं सर्वदाऽनिशं रणमानैषीत्।अलसं यथाऽवान् न च श्वसन्।

अन प्राणने। अवान् निषेधे। त्वरावानित्यर्थः। अगच्छन्निति वा। वा गतौ। अस्थित स्यति क्षिपतीत्यस्थितः। अधातोरित्युक्तेर्धातुत्वान्नोपधादीर्घः। अर्थव्यत्ययेन क्रमेण वा पुनः पाठेऽयं श्लोकस्तदायमर्थः। सर्वं दारयाति नाशयतीति सर्वदारणः तं मानमिच्छतीति दावानलो दवाग्निस्तेन समं तुल्यं स्थितं यस्य सः सत्वेन गुणेन सामर्थ्येन वारंभेन कार्यारंभे रतः। अबलं सैन्यहीनं विततो विस्तीर्ण आरवश्शब्दो यस्य तं वश्यमनैषीदिति शेषः। यद्वाऽलसं मदम् आवान् गच्छन् ओ विष्णुस्तत्र स्थितः॥ द्विखंडे पादे भागात्संदष्टमाह। अनंतेति द्वाभ्याम्। वेधा ब्रह्माऽपि यां न वेद अनंतमहिम्ना व्याप्तं विश्वं यया या च प्रणते मानवे मातेव दयां भजते तां स्मरामीत्यग्रेऽन्वयः॥ एकपादे आद्यन्तयमकमाह। यदानत इति। यस्यामानतोऽयं जनोऽयस्य शुभविधेर्दानतो हेतोर्नैयस्य नतिरत्ययं नाशं न गच्छति। शिवेन रुद्रेणेहितां शिवे कल्याणे हितां स्मरेण कामेनामितां व्याप्तां गौरीं स्मरामीति द्वयोरन्वयः। पादभेदे आद्यंतयोः समुच्चयमाह। सरस्वतीति। क्षेत्रं शरीरं कुरुक्षेत्रं तीर्थं तत्र सरस्वति नदीरूपे वाग्देवि मे चित्तमेव सरस्वान्समुद्रः। सरस्वान्सागरोऽर्णव इत्यमरः। तत्र स्वति सुष्ठु सर गच्छ। स्थितिं प्रसादं च कुर्वित्यर्थः॥ द्वयोरर्थयोराद्यंतयोः समुच्चयमाह। ससारेति। ससारसा सारसपक्षिसहिता। सरसि भवं सारसं पद्मं वा शरदृतुःकंदर्पेण साकं सह। यद्वा कं ब्रह्माणं दर्पयति नाशयतीति कंदर्पः तेन दर्पेण कृत्वा ससार प्रवृत्तेत्यर्थः। किंभूता नवा नूतना शरं कांडं बिभ्राणा नवानां यूनामनः प्राणस्तद्रूपा वीनां पक्षिणां त्राणः शब्दो विभ्राणः नास्ति विभ्राणो यस्यां साऽविभ्राणा सा नेति नाविभ्राणा।नम्द्वयात्सशब्दा शरत्प्रवृत्तेत्यर्थः॥ चतुष्खंडे द्वितीयस्य तृतीये यमकमाह। मधुपेति। जगत्कर्तृ मधु-

पानां राज्या पंक्त्या पराजितं मानिनीजनमनो याभिस्ताः सुमनसः पुष्पाणि यत्र । स्त्रियः सुमनसः पुष्पमित्यमरः । स चासौ सुरभिर्वसंतस्तस्य श्रियम् । यद्वा तासां सुमनसां पुष्पाणां सुरभिः सुगन्धस्तस्य लक्ष्मीमभृत दधार । वारिजानि पद्मानि वारीणि च तज्जो विप्लवो विह्वलता यत्र । यद्वा वीनां पक्षिणां प्लवो गतिर्यत्र स्फुटितं विकसितं ताम्रं रक्तं ततं विस्तृतमाम्रवणं यत्र तत्तथेति । विशेषतो यमकोदाहरणानि तु नलोदयकाव्ये कालिदासेन प्रदर्शितान्यपेक्षा चेत्तत्र द्रष्टव्यानीत्युपरम्यत इति शब्दालंकारदिग्दर्शनम् ॥ अथार्थालंकारान्विभजते ॥ उपमा रूपकोत्प्रेक्षा समासोक्तिरपह्नुतिः । समाहितं स्वभावश्च विरोधः सारदीपकौ ॥ सहोक्तिरन्यदेशत्वं विशेषोक्तिविभावने । एवं स्युरर्थालंकाराश्चतुर्दश न चापरे ॥ अन्याः सर्वालंकृतय एष्वेवांतर्भवंति हीति । तत्र भेदे सति साधर्म्यमुपमा अधिकगुणवत्तया संभाव्यमानमुपमानं निकृष्टगुणवत्तया संभाव्यमानमुपमेयम् । ता विभजते ॥ वाक्यार्थातिशयश्लेषनिन्दाऽभूतविपर्ययाः । संशयो नियमः स्वश्च विक्रियेत्युपमा दश ॥ तत्र वाक्यार्थेनैव वाक्यार्थौ यत्रोपमीयते सा वाक्यार्थोपमा । सा च द्वयी प्रत्येकसादृश्यानपेक्षा तत्सापेक्षा च । आद्या यथा । कामिनीनयनकज्जलपंकादुत्थितो मदनमत्तवराहः । कामिमानसवनांतरचारी कंदमुत्खनति मानलतायाः ॥ अत्रोपमानस्य वराहादेर्मत्तत्वादर्मूर्त्तैर्मदनादिभिरुपमेयैरसादृश्यत्वेन न्यूनत्वात् ॥ यथा । त्वदाननमधीराक्षमाविर्दशनदीधिति ॥ भ्रमद्भृंगमिवालक्ष्य केशरं भाति पङ्कजम् ॥ २ ॥ इहोपमेयस्याननस्योपमानेन पंकजेन प्रत्येकं सादृश्यात् ॥ यत्रातिशयधर्मोपन्यासः साऽतिशयोपमा । यथा । कल्पद्रुमो न जानाति न ददाति बृहस्पतिः ॥ अयं च जगतीजानिर्जानाति च ददाति च ॥ पदश्लेषनिबंधनसाम्यं श्लेषोपमा यथा । तमालपत्राभरणा

राजते विलसद्वयाः । बालेवोद्यानमालेयं सालकाननशोभिनी ॥ अत्र तमालपत्राण्याभरणानि यस्याः सा तथा। तमालपत्राणि पुंड्रविशेषाणि पक्षे तापिच्छपत्राणि। विलसद्वयो यौवनं यस्याः। पक्षे विलासस्सद्वयसो युवानो यस्यां सा। अलकैः सहिता चासावाननेन मुखेन शोभिनी पक्षे सालकाननैः सालवृक्षविशेषैः शोभिनीति। सर्वत्र पदश्लेषः॥ यत्रोपमानस्य निन्दया प्रतिक्षेपस्सा निंदोपमा। यथा। नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैत्यात्कदलीविशेषाः। लब्ध्वाऽपि लोके परिणाहि रूपं जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्याः॥ अत्रोपमानयोरिभशुंडाकदलीस्तंभयोस्त्वक्कार्कश्यैकान्तशैत्याभ्यां निंदया प्रतिक्षेपः॥ यत्रासंसृष्टज्ञानेन संसर्गमारोप्य साम्यप्रसञ्जनं साऽभूतोपमा। यथा। उभौ यदि व्योम्नि पृथक्प्रवाहावाकाशगंगापयसः पतेताम्। तदोपमीयेत तमालनीलमामुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः॥ अत्र द्युगंगासंसर्गमज्ञात्वैव तत्संसर्गारोपेण समुक्ताहारवक्षसः साम्यतारोप्यते॥ यत्रोपमानस्यैवोपमेयता सा विपर्ययोपमा। यथा। अतिसुललितयोपिद्भ्रूलताचारुशार्ङ्गं रतिवलयपदांके चापमासज्य कंठे। सहचरमधुहस्तन्यस्तचूतांकुरास्त्रः शतमखमुपतस्थे प्रांजलिः पुष्पधन्वा॥ इहोपमानस्य शार्ङ्गस्यैवोपमेयता॥ यत्रोपमानोपमेययोः संशयकोटिता सा संशयोपमा। यथा। किमिंदुः किं पद्मं किमु मुकुरबिम्बं किमु मुखं किमब्जे किं मीनौ किमु मदनबाणौ किमु दृशौ। खगौ वा गुच्छौ वा कनककलशौ वा किमु कुचौ तडिद्वा तारा वा कनकलतिका वा किमबला॥ स्पष्टार्थः॥ यत्र तथाव्यावृत्त्या साम्यलाभस्सा नियमोपमा॥ यथा॥ कले पुरंदरादन्यः प्रतिमल्लो भविष्यति॥ ऋते सहस्रकिरणात्त्वत्प्रतापसमो हि कः॥ इहान्यव्यावृत्त्या पुरन्दरसूर्ययोरेववर्ण्यबलप्रतापसाम्यलाभः॥ यत्रोपमानांतरविरहतात्पर्येण स्वसाम्यं सा स्वोपमा।

यथा। आघूर्णितं पक्ष्मलमक्षियुग्मं प्रांतद्युतिश्वेत्यजितामृतांशुः॥ अ-स्या इवास्याश्चलदिन्द्रनीलगोलामलश्यामलतारतारम्॥ अभेदानु-मानवदिह भेदो द्रष्टव्यः॥ यत्रोपमेयमुपमानविकारतयोच्यते सा वि-क्रियोपमा। यथा। हरिणादथ तन्नयनादथ पद्मात्पद्मपत्राच्च॥ आहृत्य कांतिसारं विधिरसृजत्सुभ्रुवो दृष्टिम्॥ श्रीपादस्तु समभिव्याहारो-पमाप्यस्तीत्याह। सा यथा। प्रकृत्यैव मनोहारि वदनं हरिणीदृशः। चन्द्रे ह्लादकता कस्मात्पद्मः केन परिष्कृतः॥ अत्र सर्वत्र। न्यूनाधिकत्व शंका चेद्विभागेषु तदिष्यताम्॥ किंचिद्विशेषमादाय भेदोभेदश्च क-श्चन॥ काचित्समस्तान्वयिनी क्रियामात्रान्वयापरा॥ विशेषणान्व-या काचिदुपमा कापि तत्परा॥ अत्र च। न्यूनता साम्यमाधिक्यं य द्यदेवाभिधीयते॥ अहो वाक्यस्य माहात्म्यं समतैव प्रतीयते॥ तदाह राजशेखरः। समानमधिकं न्यूनं सजातीयं विरोधि च॥ सकुल्यं सो-दरं कुल्यमित्याद्याः साम्यवाचकाः॥ अलंकारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसंपदाम्॥ उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम॥ इत्युपमा॥ अतिसाम्यादपह्नुतभेदयोरुपमानोपमेययोरभेदप्रत्ययो रूपकम्॥ यदाह। तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोरिति॥ दंडी च। उपमैव तिरो-भूतभेदा रूपकमिष्यते। इति॥ तद्विभजते। विरुद्धञ्च समस्तं च व्यस्त-रूपकरूपकम्। श्लिष्टञ्च रूपकं तस्मात्संक्षेपात्पंचधा स्मृतम्॥ तत्रो-पमानविरुद्धोर्थस्तद्विरुद्धम्। यथा। दिवा न परिभूयते न च मनागपि क्षीयते न वा चरमवारिधेः पयसि लुप्तिमाविंदति। न च त्रिदश-सुभ्रुवां वदनकांतिभिर्जीयते यशस्तु हिनदीधितिर्जयति को पि भूमी-पतेः॥ अत्रोपमानश्चन्द्र उपमेयं यशस्तच्च चंद्राद्विरुध्यत्वेन वर्णि-तम्॥ समस्तं यथा। तस्या बाहुलता पाणिपद्मं चरणपल्लवम्। मुखेन्दुरक्षिभ्रमरौ सर्वस्वं पुष्पधन्वनः॥ अत्र बाहुरेव लता बाहु-लतेत्यादीनि पदानि समस्तानि॥ व्यस्तं यथा। भुजौ मृणाले

वदनं सुधांशुः कुंदानि दंताश्चरणौ सरोजे । स्मितं प्रसूनानि करौ प्रवाले पयोधरौ भूमिधरौ मृगाक्ष्याः ॥ अत्र सर्वाणि पदानि व्यस्तान्येव ॥ रूपकरूपकं यथा । मुखपंकजरङ्गेऽस्मिन्भ्रूलता नर्तकी तव । नरीनार्त्तिं लसत्स्वर्णकेतकीदललोचने ॥ अत्र प्रथमं मुखमेव पंकजं तदेव रंगस्तत्रेति रूपकेण रूपकम् ॥ श्लिष्टरूपकं यथा । राजहंसोपभोगार्हं भ्रमरप्रार्थ्यसौरभम् ॥ पुष्णाति सुषमां कांचिन्मुखपंकेरुहं तव ॥ अत्र राजैव हंस इति भ्रमरैः षट्पदैर्विटैश्च प्रार्थ्यं सौरभं यस्येति श्लेषत्वाच्छिष्टरूपकम् ॥ इदञ्च समस्तादिभेदादनंतम् । लक्षणाप्यत्रैवांतर्भवति ॥ उपमानोपमेययोरभेदप्रतिपत्तेरत्रापि सत्त्वात् । तदुक्तं रूपकं लक्षणादिकमिति । सा च द्विधा समस्तासमस्तभेदात् ॥ तत्राद्या यथा । उदयति कनकाचलयोरुपरि चलत्पङ्कजश्चंद्रः । तदुपरि घनांधकारः कस्य कृते धातुरीदृशी सृष्टिः ॥ इह कनकाचलयोरित्यादिसमस्तपदानां स्तननेत्रभ्रूलतासु लक्षणा । कस्य कृते कस्यार्थम् । कृत इति तादर्थ्येऽव्ययम् ॥ अंत्या यथा । तामरसे सालसता जलमुचि कश्चिद्विपर्यासः । निस्स्पंदता लतायां कथयति कस्यापि पुण्यानि ॥ इह तामरसेन नेत्रं जलमुचा च पतिर्लक्ष्यते । लतया देहः पुण्येनोपभोगश्च लक्ष्यते ॥ इति रूपकम् ॥ अनन्यनिमित्तके वस्तुन्यन्यनिमित्तकत्वारोपणमुत्प्रेक्षा ॥ यथा । गमनमलसयातैः कुंभलक्ष्मीं कुचाभ्यामविकलकरशोभामूरुकांडद्वयेन । यदियमहरदेषां हेतुनानेन नूनं निजवपुषि करींद्राः पांशुपूरं क्षिपन्ति ॥ अत्र निजांगधूलिक्षेपेऽनिमित्तभूतानामपि गत्यादिहरणानां निमित्तकल्पनयोत्प्रेक्षा । इयं च । सर्वालंकारसर्वस्वं कविकीर्त्तिविवर्द्धिनी ॥ उत्प्रेक्षा हरति स्वांतमचिरोढास्मितादिव ॥ शंके मन्ये ध्रुवं प्रायो नूनं जानामि तर्कये ॥ इवेत्यादिभिरुत्प्रेक्षा व्यज्यते काव्यवर्त्मनि ॥

इत्युत्प्रेक्षा ॥ अन्यदभिप्रेत्यान्याभिधानं समासोक्तिः सैव चान्यापदेश उच्यते यथा।त्वं पीयूषदिवोपि भूषणमसि द्राक्षे परीक्षेत को माधुर्यं तव विश्वतोपि विदिता माध्वीकसाध्वी कथा ॥ एतत्किंतु तवाप्यरुंतुदमिव ब्रूमो न चेत्कुप्यसे यः कांताधरपल्लवे माधुरिमा नान्यत्र कुत्रापि सः॥ इह कान्ताधराभिप्रायेणामृतादिकथनात्समासोक्तिः ॥ किञ्चिदपह्नुत्य यदन्यार्थप्रदर्शनं सापह्नुतिः ॥ यथा।शीत्कारं शिक्षयति व्रणयत्यधरं तनोति रोमाञ्चम् ॥ नागरिकः किमु मिलितो नहि नहि सखि हैमनः पवनः ॥ अत्र नागरिकमपह्नुत्य हैमनपवनप्रदर्शनादपह्नुतिः ॥ आरब्धानुकूलाकस्मिकसहकारिलाभः समाहितम् ॥ मानापनोदनविधौ मदिरेक्षणाया यावन्नमामि चरणावथ तावदेव। नीपस्खलन्नवसमीरपुरस्सराणि प्रादुर्बभूवुरचिराद्घनगर्जितानि ॥ सुरभिवातघनगर्जनादेरुद्दीपनविभावत्वेन सहकारित्वेन समाहितत्वमत्रेति ॥ यस्य वस्तुनो यत्स्वभावता तदाख्यानं स्वभावः स एव जातिरुच्यते यथा। चलति कथंचित्पृष्टा यच्छति वाचं कथंचिदालीनाम् ॥ आसितुमेव हि मनुते गुरुगर्भभरालसा सुतनुः ॥ स्पष्टार्थः ॥ विरोधो द्विविधः तत्राद्यः पारमार्थिकाविरोधेप्यौचित्येन विरोधिता प्रतीयते यत्र सः यथा। मनीषिताः सन्ति गृहेषु देव इत्यादौ। द्वितीयस्तु यथा । श्रुते विरोधसंधानेपि यत्राभिप्रेतमासाद्याविरोधः अयमेव विरोधाभास उच्यते । यथा। भक्तानां कामदो यस्तु रुषा कामं दहन्नपि ॥ अपिज्ञानमयःस्थाणुर्यस्तमीशं स्तुवीमहि ॥ स्पष्टम् ॥ उत्तरोत्तरं यत्र सारोत्कर्षः स सारः। यथा। विषयेषु तावदबलास्तास्वपि गोप्यः स्वभावमृदुवाचः। मध्ये तासामपि सा तस्या अपि साचि वीक्षितं किमपि ॥ सा राधा ॥ समस्तवाक्योपकारकत्वं दीपकत्वम् । तच्चाभिन्नं भिन्नं च तत्तत्कारकक्रियादिभेदादनन्तम् ॥ अभिन्नं

यथा। पाणौ पद्मा धियेत्यादौ ॥ भिन्नं यथा। नृत्यंति निचुलोत्संगे गायंति च कलापिनः। बध्नन्ति च पयोदेषु दृशो हर्षाश्रुगर्भिणीः ॥ इह कलापिन इत्यस्य नृत्यादिसर्वक्रियोपकारकत्वम् ॥ अत्र विस्तरभिया सर्वं नोदाह्रियते॥एतच्च मालादीपकादिभेदादनंतम्॥ अत्र पूर्वापरवाक्यार्थयोरुपकार्योपकारकत्वं मालादीपकम्। तत्रोत्तरस्य पूर्वोपकारकत्वं यथा ॥ चारुता वपुरभूषयदासां तामनूननवयौवनयोगः।तं पुनर्मकरकेतनलक्ष्मीस्तांमदस्तमपि वल्लभसंगः॥ स्पष्टम् ॥ पूर्वस्योत्तरोपकारकत्वं यथा। संग्रामाङ्गणमागतेन भवता चापे समासादिते देवाकर्णय येन येन सहसा यद्यत्समासादितम्। कोदंडेन शराः शरैरपि रिपुस्तेनापि भूमंडलं तेन त्वं भवता च कीर्तिरतुला कीर्त्या च लोकत्रयम्॥ स्पष्टम् ॥ समानकालोक्तिः सहोक्तिः सा द्वयी।उदासीनयोस्त्वराप्रतिपत्तये कार्यकारणयोरपि। आद्या यथा।सह दीर्घा मम श्वासैरिमाः संप्रति रात्रयः। समं मम शरीरेण क्षीयंते दिवसा अमी ॥ अन्त्या यथा। वर्द्धते सह पांथानां मूर्छया चूतमंजरी। पतंति च समं तेषामश्रुभिर्मलयानिलाः ॥ इहाम्रमंजरीमलयानिलयोरुद्दीपकत्वात्कारणत्वं पांथमूर्च्छाश्रूणां कार्यत्वम्। प्रयोज्यप्रयोजकयोर्वैयधिकरण्यमन्यदेशत्वम्। यथा। सा बाला वयमप्रगल्भवचसः सा स्त्री वयं कातराः सा पीनोन्नतिमत्पयोधरयुगं धत्ते सखेदा वयम्। साक्रांता जघनस्थलेन गुरुणा गंतुं न शक्ता वयं दोषैरन्यजनाश्रितैरपटवो जाताः स्म इत्यद्भुतम्॥ कारणे सत्यपि कार्याभावो विशेषोक्तिः ॥ यथा। आवाति वारिधरशीकरवारिवर्षी स्वैरं कदंबवनदुर्ललितः समीरः॥ अंगेऽर्पितानि नलिनीनवपल्लवानि तापस्तथापि सुदृशः शिथिलो न जातः ॥ इह तापशांतिहेतुके वृष्ट्यादौ सत्यपि तत्कार्यतापाभावः ॥ कारणं विना कार्योदयो विभावना। यथा।

नांगेषु रत्नाभरणानि संति निःश्वासहार्य्याण्यपिनांशुकानि॥ तथापि सा संप्रति सारसाक्षी दिने दिने कामपि कान्तिमेति ॥ निःश्वासहार्याण्यतीव मृदुसूक्ष्माणि । केचित्तु अन्यदेशत्वमेव विशेषोक्तिविभावनेऽधिकरणद्वयमादाय । अन्ये तु अनयोरेकेनापरस्याऽन्यथासिद्धिर्व्यतिरेकमादायेति। गोवर्द्धनस्त्वन्यथा सिद्ध्याऽन्यदेशत्वमेव निराचकार। व्यतिरेकालंकारस्त्वतिरिच्यत इत्येके । स च यथा । कादाचित्कीं द्युतिं धत्ते कलंकी क्षीयतेऽन्वहम् । दोषाकरः कथंकारं त्वदाननसमः प्रिये ॥ एकेनाप्रस्तुतस्य सिद्धिराक्षेपः । सोऽपि पृथगित्यपरे ॥ यथा । इंद्रेण किं स यदि कर्णनरेंद्रसूनुरैरावतेन किमसौ यदि तद्द्विपेन्द्रः । दंभोलिनाऽप्यलमयं यदि तत्प्रतापः स्वर्गोऽप्ययं ननु मुधा यदि तत्पुरीयम्॥ आनंत्यादेवालंकाराणामिह दिङ्मात्रमेवादर्शि।विशेषापेक्षा त्वलंकारसर्वस्वादिपरिशीलनत एव शाम्यतीति ॥ अथालंकारिकाभिमतव्यंजनावृत्तिर्हि तार्किकादिभिर्नाङ्गीक्रियतेऽधुनाकाव्यप्रकाशोक्तवर्त्मना तां साधयामः॥ गतोऽस्तमर्क इत्यादौ नानार्थप्रतीतिसिद्धिर्हि व्यंजनामंतरा न संभवतीति वदन्तं प्रत्याह। रामोऽस्मि सर्वंसह इह दुःखसहिष्णुत्वम् । रामेण प्रियजीवितेन तु कृतं प्रेम्णः प्रियेनोचितमिह निःस्नेहत्वम् । रामोसौ भुवनेषु विक्रमगुणैः प्राप्तः प्रसिद्धिं परामित्यत्रोत्कृष्टत्वं च। तेन लक्षणीयार्थोपि नानात्वं भजते विशेषव्यपदेशहेतुश्च भवति। तदवगमश्च शब्दार्थायत्तः प्रकरणादिसव्यपेक्षश्चेति कोयं नूतनः प्रतीयमानो नाम। अस्यार्थः। विशेषव्यपदेशोर्थांतरसंक्रमितवाच्यत्वादिस्तद्धेतुस्तद्विषयस्तदवगमो लक्ष्यावगमः लक्षणायाः शब्दवृत्तित्वात्तदायत्तत्वं शक्यसम्बन्धापेक्षणाच्चार्थायत्तत्वम्। प्रकरणादीति। तस्यैव तात्पर्यग्राहकत्वात्तात्पर्यानुपपत्तेश्च लक्षणामूलत्वादित्यर्थः। नूतनो व्यंग्यनानात्वादिधर्मोर्हि व्यंग्यसिद्धिस्तवा-

भिप्रेता ते च लक्ष्येपि संतीति तत्रैव व्यंग्यस्यांतर्भावोस्त्विति भावः ॥ अथ मूलम् ॥ उच्यते ॥ लक्षणीयार्थस्य नानात्वेप्यनेकार्थशब्दाभिधेयवन्नियतत्वमेव न खलु मुख्येनार्थेनानियतसंबंधो लक्षयितुं शक्यते । प्रतीयमानस्तु प्रकरणादिविशेषबलेन नियतसंबंधोऽनियतसंबंधः संबंधश्च द्योत्यते ॥ न च ' अत्ता एत्थ णि मज्ज इ एत्थ अहं दियसण्यलोएहि मा पहिअ रतिअंधसिज्जाण मह णिमज्जिहिसि इत्यादौ विवक्षितान्यपरवाच्ये ध्वनौ मुख्यार्थबाधः । तत्कथमत्र लक्षणा । लक्षणायामपि व्यंजकमवश्यमाश्रयितव्यमिति प्रतिपादितम् ॥ व्याख्या ॥ उत्तरमाह ॥ उच्यते इति ॥ न हि नानात्वाल्लक्ष्यत्वं नानार्थेति प्रसक्तेरित्यर्थः ॥ नियतत्वं सर्वपुरुषगम्यत्वं प्रतीयमानो व्यंग्यः । गतोऽस्तमर्क इत्यादौ नियतानियतपरंपरासंबंधगम्यार्थप्रतीतेरित्यर्थः ॥ मुख्यार्थबाधाभावादपि न लक्षणेत्याह । न चेति । श्वश्रूरत्र निमज्जति अत्राहं दिवसे विलोकये मा पथिक रात्र्यंधशय्यायां मम निमंक्ष्यसि निमज्जति वृद्धत्वान्निस्पंदं शेते ॥ ननु न मुख्यार्थबाधो लक्षणाबीजं किंतु तात्पर्य्यानुपपत्तिः सा चात्ता एत्थेत्यत्रास्त्वेवात आह । लक्षणायामपीति । अयं भावः । पावनत्वादिप्रतीतेरावश्यकत्वात्तत्र च वृत्त्यंतराभावादवश्यं व्यंजनांगीकार्या । न च तत्रापि लक्षणा सा हि तन्निरूढा प्रसिद्ध्यभावात् । न प्रयोजनवती प्रयोजनस्य विषयत्वाभावादित्युक्तं द्वितीयोल्लासे ॥ किं च व्यंग्ये लक्षणा न पदवृत्तिः । वाच्यस्यापि व्यंजकत्वात् । पदैकदेशवर्णादौ तत्वाच्चं न वाक्ये पदत्वं तदेकदेशादौ सत्वात् । न च शब्दवृत्तिरर्थस्य व्यंजकत्वादित्यादिवैधर्म्ये मुख्यार्थबाधाभावेऽपि तात्पर्यज्ञानं विनापि वक्तृबोद्धव्यादिसहकारेण यान्यार्थधीः सा व्यंजनां साधयतीति । मूलम् यथा च समयसव्यपेक्षाभिधा तथा मुख्यार्थबाधादित्रयसमयस-

व्यपेक्षालक्षणाऽत एवाभिधा पुच्छमित्याहुः। न च लक्षणात्मकमेव ध्वननं तदननुगमनेन तस्य दर्शनात्। न च तदनुगतमेव अभिधावलंबनेनापि तस्यभावात्। न चोभयानुसार्येव अवाचकवर्णानुसारेणापि तस्य दृष्टेः। न च शब्दानुसार्येव अशब्दात्मकनेत्रविभागावलोकनादिगतत्वेनापि तस्य प्रसिद्धेरित्यभिधातात्पर्यम्। लक्षणात्मकव्यापारानुवर्ती ध्वननादिपर्यायो व्यापारो नापह्नवनीय एव॥ व्याख्या। किञ्चाभिधावल्लक्षणापि संकेतापेक्षा। न च व्यंग्ये तदस्तीत्याह। यथा चेति। समयः संकेतः। यद्यपि तद्रूपत्वादभिधानतत्सापेक्षा तथापि संबंधाभिप्रायः समयशब्दः। यद्वाभिधानजन्यं ज्ञानं संकेतापेक्षा ज्ञानापेक्षेत्यर्थः। मुख्यार्थबाधस्तद्योगः प्रयोजनं चेति त्रयमित्यर्थः। ननु तर्ह्यभिधातो भेदो न स्यादत आह। अत एवेति। यतः संकेतापेक्षाऽतस्तत्सापेक्षा च लक्षणाशक्यसंबंधात्तस्याः। अतः परम्परया लक्षणापि संकेतापेक्षेत्यभिधा तत्पुच्छभूतेत्यर्थः। लक्षणाव्यंजनयोर्भेदकांतरमाह। न चेति॥ तस्य ध्वननस्य असिद्धिं निरस्यति। नचेति॥ अभिधेति। नानार्थव्यंजनाया भद्रात्मन इत्यादावित्यर्थः। उभयं लक्षणाभिधा। अवाचकेति। अबोधकवर्णा गतोस्तमर्क इत्यादावित्यर्थः॥ वस्तुतस्तु एकैकदूषणेनैवोभयदूषणाद्रसादेरपूर्वत्वेन तत्र शक्तिग्रहाभावाच्छक्यसंबंधाग्रहणाच्चेति। तत्त्वं नेत्रविभागः कटाक्षः। आदिपदादभिनयादितात्पर्यं वाक्यस्य तदर्थं॥ मूलम्। तत्र च अत्तारात्थेत्यादौ नियतसंबंधः। कस्सवणेत्यादावनियतसंबंधः। विपरीयरए लच्छी वंहंड दूण णाहिकमलत्थं। हरिणो दाहिणणणं रसाउला जत्ति ढक्केइं॥ इत्यादौ संबंधसंबद्धः। अत्र हि हरिपदेन दक्षिणनयनस्य सूर्यात्मता व्यज्यते। तन्निमीलने सूर्यास्तमयस्तेन पद्मसंकोचनं तेन च ब्रह्मणः स्थगनं तत्र च सति गोप्यांगस्यादर्शनेऽनियंत्रणं

निधुवनविलसितम्।अखंडबुद्धिनिर्ग्राह्यो वाक्यार्थ एव वाच्यार्थो वाच्यमेव वाचकमिति येऽप्याहुस्तैरप्यविद्यापदपतितैः पदपदार्थकल्पना कर्त्तव्यैवेति।तत्पक्षेप्यवश्यमुक्तोदाहरणादौ विध्यादिर्व्यंग्य एव । ननु वाच्यादसंबद्धं तावन्न प्रतीयते।यतः कुतश्चिद्यस्य कस्यचिदर्थस्य प्रतीतिप्रसंगात् ॥ व्याख्या । अत्ता एत्थेति नियतत्वं वाच्यव्यंग्यप्रतीत्योरेकाधिकरणत्वं द्वयोः पांथनिष्ठत्वात् । कस्सवणेत्यादावनियतत्वं सखीकांताद्यनेकनिष्ठत्वात् ॥ विपरीयेति । विपरीतरते लक्ष्मीर्ब्रह्माणं दृष्ट्वा नाभिकमलस्थं हरेर्दक्षिणनयनं रसाकुला झटिति स्थगयति संबंधसंबद्धं विवृणोति ॥ अत्रहीति । ततस्तेन संकोचेनेत्यर्थः ॥ तत्र चेति । स्थगने सतीत्यर्थः ॥ अनियंत्रणं निर्लज्जं निधुवनं सुरतमत्र परंपरया व्यंग्यधीरित्यर्थः ॥ अखंडवाक्यस्य वाक्यार्थे शक्तिरिव व्यंग्येपि शक्तिरिति वेदांतिमतं शंकते । अखंडबुद्धीति । एकमेवाद्वितीयंब्रह्मेत्यादिश्रुतयः शक्यं बोधयन्ति । तथा व्यंग्योपि वाच्य इत्यर्थः ॥ तदुक्तम्।अनवयवमेव वाक्यमनाद्यविद्योपदर्शितालीकवर्णपदविभागमस्या निमित्तमिति अस्या बुद्धेरन्यत्रापि अविशिष्टमर्यादयानेकशब्दप्रकाशितम् ॥ एकं वेदान्तनिष्णातास्तमखंडं प्रपेदिर इति तैरपीति तत्त्वतश्चेद्वाक्यमप्यलीकमिति कस्य वाचकत्वम्।अविद्यादशायां तु व्यवहारे भट्टनयांगीकारादावापोद्वापाभ्यां पदपदार्थविभागोंगीकार्य एव अन्यथा साध्वसाधुव्यवहारो न स्यात् । न स्याच्च वाक्ये तत्तत्पदार्थतत्तत्संबंधधीः।तत्र चोक्तदिशा व्यंग्येऽभिधायसंभवात्सिद्धा व्यंजनेति भावः॥ उक्तेति । निश्शेषेत्यादौ तदंतिकं गतासीति विधिरित्यर्थः॥ अनुमानाद्व्यंग्यधीरिति व्यक्तिविवेककारमहिमभट्टमतशंकते । नान्विति । तत्पदेन व्यंजनावादिनोऽपीदं तुल्यमिति सूचितम् ॥ मूलम् । एवं च संबंधाद्व्यंग्यव्यंजकभावो भवति प्रतिबंधेऽवश्यं न भवती-

ति व्याप्तत्वेन नियतधर्मनिष्ठत्वेन च त्रिरूपाल्लिंगाल्लिंगिज्ञानमनुमानं यत्तद्रूपः पर्यवस्यति ॥ तथाहि । भमधम्मिअवीसत्थो सो सुणहो अज्ज ओमाईदेण गोलाणईकत्थकुंडंगवासिणा दरीयसीहेण ॥ अत्र गृहेश्वनिवृत्त्या भ्रमणं विहितं गोदावरीतीरे सिंहोपलब्धेरभ्रमणमनुमापयति॥व्याख्यासंबन्धसामान्येऽप्यतिप्रसंगस्तुल्योऽत आह॥प्रतिबंधेति।प्रतिबंधो व्याप्तिः॥पक्षधर्मतामाह।द्वंद्वान्ते श्रुतस्य त्वशब्दस्य प्रत्येकमन्वयः।नियतत्वेन धर्मिनिष्ठत्वेन चेत्यर्थः ॥ विपक्षासत्त्वेन सपक्षसत्त्वेन चेत्यर्थः। अत एवोक्तं त्रिरूपादिति । पक्षसत्त्वसपक्षसत्त्वविपक्षासत्त्वधर्मत्रययुतादित्यर्थः ॥ अबाधितत्वस्य सर्वप्रमाणसाधारण्यादसत्प्रतिपक्षत्वस्य स्वार्थानुमानेऽनुमानाच्च नाभिधानम् । अत्रानुमानपदं भावव्युत्पत्त्यानुमितिपरं तद्रूप इति । अनुमित्यात्मको व्यंग्यव्यंजकभाव इति पूर्वेणान्वयः ॥ भमधम्मीति । भ्रमणधार्मिकविश्वस्तः स श्वा अद्य मारितस्तेन गोदानदीकच्छकुंजवासिना दृप्तसिंहेन पुष्पावचयार्थं स्वसंकेतस्थलं गोदानिकुंजं गच्छंतं विघ्नकारिणं प्रति कस्याश्चिदियमुक्तिः । गोदातीरे सिंहोपलक्षितभयहेतोः सत्त्वाद्गृह एव तिष्ठ मा गा इति तात्पर्यार्थः।अनुमानप्रकारमाह । अत्रेति । गृहे भ्रमणमभ्रमणमनुमापयतीत्यन्वयः। यद्यपि गृहे भ्रमणं गोदातीरे न भ्रमणाभावमनुमातुमीष्टे व्यधिकरणत्वात्तथापि व्याप्तिग्रहोपयिकत्वेनेदमुक्तं श्वनिवृत्त्या गृहे विहितं भ्रमणं तद्धेतुकं कल्पते।तेनैवं व्याप्तिः।यद्यद्भीरुभ्रमणं तत्तद्भयकारणाभावज्ञानपूर्वकमिति । गोदेति । अत्र हेतुः सिंहोपलब्धे इति । एवं च प्रयोगः। गोदातीरं भीरुभ्रमणयोग्यं भयकारणवत्त्वात्सिंहादिमत्त्वाद्वा यन्नैवं तन्नैवं यथा गृहमिति भ्रमणाभावानुमितिः ॥ मूलम् ॥ यद्यद्भीरुभ्रमणं तत्तद्भयकारणानिवृत्त्युपलब्धिपूर्वकं गोदातीरे सिंहोपलब्धेरिति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः ।

अत्रोच्यते । भीरुरपि गुरोः प्रभोर्वा निदेशेन प्रियानुरागेणान्येन चैवंभूतेन हेतुना सत्यपि भयकारणे भ्रमतीत्यनैकांतिको हेतुः । शुनो बिभ्यदपि वीरत्वेन सिंहान्न बिभेतीति विरुद्धोऽपि गोदावरीतीरे सिंहसद्भावः प्रत्यक्षादनुमानाद्वा न निश्चितोऽपि तु वचनात्। न च वचनप्रामाण्यमस्ति । अर्थेनाप्रतिबंधादित्यसिद्धश्च तत्कथमेवंविधाद्धेतोः साध्यसिद्धिः । तथा निःशेषच्युतेत्यादौ गमकतया यानि चंदनच्यवनादीन्युपात्तानि तानि कारणांतरतोऽपि संभवंतीति । अतश्चात्रैव स्नानकार्यकारित्वेनोक्तानीति नोपभोग एव प्रतिबद्धानीत्यनैकान्तिकत्वं व्यक्तिवादिनाधमपदसहायानामेव व्यंजकत्वमुक्तं न चात्राधमत्वं प्रमाणप्रतिपन्नमिति कथमनुमानं तत्कथमेवंविधादर्थादेवंविधोऽर्थ उपपत्त्यनपेक्षितत्वे सति प्रकाशत इति व्यक्तिवादिनः पुनरदूषणम् ॥ व्याख्या ॥ व्याप्तिं दर्शयितुमाहायद्यदिति । व्यापकविरुद्धेति । भीरुभ्रमणस्य व्यापिकाभयकारिकारणाभावोपलब्धिस्तद्विरुद्धं भयकारणं तदुपलब्धिरित्यर्थः । तेन व्यतिरेकव्याप्तिमुक्तां दूषयति । उच्यते इति । एवं हि परस्य व्याप्तिरभिमता यत्र भीरुभ्रमणायोग्यत्वाभावः किं तु भीरुभ्रमणयोग्यत्वं तत्र भयकारणाभाव इति सा चायुक्ताबलात्प्रभुनिदेशादिना भीरुभ्रमणस्य भयकारणेऽपि दर्शनेन व्यभिचारादिति भावः । अन्येन निधिलाभादिनेत्यर्थः । शुनो बिभ्यदिति स्पर्शदोषाद्बिभ्यादित्यर्थः । यदि धार्मिकः शूरोऽभिप्रेतस्तत्र गोदातीरं शूरभ्रमणायोग्यं भयहेतुमत्त्वात्सिंहवत्त्वाद्वेत्युच्येत तदा साध्याभावव्याप्तत्वाद्विरुद्धतेति भावः । यदि तु भयकारणवत्त्वं सिंहवत्त्वं वा पुंश्चल्या प्रयुज्येते तदा स्वरूपासिद्धिरपीत्याह । गोदावरीति । अर्थेनेति ॥ अप्रतिबंधादव्याप्तत्वात् । न हि सर्वं वाक्यमर्थसत्तया व्याप्तं प्रतारकवाक्यस्यापि दर्शनात् । अतः संदिग्धासिद्धिरपीत्यर्थः ।

स्थलांतरेऽपि व्यभिचारादनुमानं निरस्यति। तथेति॥ कारणं संभोगभिन्नं स्नानादि तस्मादित्यर्थः। प्रतिबद्धानि व्याप्तानि तर्हि व्यभिचारे व्यंजनापि कथं तत्राह । व्यक्तीति ॥ व्यक्तिर्व्यंजना । अस्तु ममाप्यधमपदसहकारेणानुमानमत आह । न चेति ॥ ततश्च पूर्ववत्संवित्सिद्धिरिति भावः। ननु व्यंजनापक्षेऽप्येष दोषोऽत आह। एवमिति। तत्र व्याप्तेरनंगत्वेन संभावनामात्रादेव तत्प्रतीतेर्न चातिप्रसंगः। वक्त्रादिवैशिष्ट्यस्य नियामकत्वात्। यस्त्वर्थसंदेहे व्यंग्यधर्मिणीति तत्त्ववासनया प्रतीतिकलहे एव विश्राम्यतीति तत्त्वमिति व्यंजनावृत्तिसाधनम् ॥ अथ संक्षेपतो वक्ष्ये समस्यापूरणे विधिम् । अत्रादौ विशदाः पंच प्रोच्यंते कारिका यथा ॥ कल्पादिसिंधुलघुभिर्गुरुता युगान्तदूरावलोकगुरुभिर्लघुता विधेया । विष्णोरधोमुखतया प्रतिबिंबतश्च स्याद्वैपरीत्यमुदकादिषु जन्मता च ॥ अयमर्थः । कल्पस्यादिः कल्पादिः सृष्टिसमयः । सिंधुः समुद्रः । लघुः क्षुद्रपदार्थः । एतैर्हेतुभूतैर्वस्तुनो गुरुता विधेया कल्पनीया । सृष्टौ हि स्रष्टा महावयववानेव निर्मिमीते स्म पदार्थान् । कालक्रमेण सर्वे दुर्बला अभूवन् । सामुद्रिकद्रव्येषु शाश्वतिक एवातिरेकः । लघ्वपेक्षया ततोऽधिकस्यापि महिमा नियोज्यः । युगान्तादिहेतुभिर्लघुता कल्पनीया । युगान्तसमये हि सर्वं लघु भवति । दूरे दृश्यमानाः पदार्था अतिक्षोदीयांस इव भासंते । गुर्वपेक्षयाऽप्येवमाकलनीयम् ॥ उदाहरणानि यथा । कल्पादिकाले गुरुदेहदेश्या पिपीलिका राजति शैलतुल्या । तदा लघीयानपि गंडशैलः श्रीखंडशैलस्य तुलां तनोति॥ सिंधुना यथा । अहो पयोराशिनिवासियादो पिपीलिका राजति शैलतुल्या । सदा जनानां महतां हि संगो धत्ते लघूनामपि गौरवाणि॥ माहात्म्यं तस्य पाथोधेर्व्याख्यातुं शक्यते कथम् । सीमायंत्र विभात्यंभः कीटिका

कुंभिसन्निभा ॥ स्थले स्थिता यावन्तो जीवास्तावंतो जले निवसंतीति बोध्यम् ॥ ते ते च सर्वे निर्वासितखर्वभावाः स्वभावादेव ॥ लघुभिर्यथा । कृमिप्रमाणेन महत्तमांगी पिपीलिका राजति शैलतुल्या ।यस्मादधोधः परिदर्शनेन सदा लघूनामपि गौरवाणि ॥ लिक्षालक्षाग्रतः कीटकोटिः करिवरायते । विंध्याद्रिमुद्रामाधत्ते मत्तेभः कलभाग्रतः ॥ अथ गुरुपदार्थस्य युगांतेन दूरावलोकनेन च गुरुभिर्लघुता विधेया । यथा । कल्पांतकालकवलीकृतसर्वगात्रो गोत्रो बिभर्ति सुतरां परमाणुरूपम् ॥ संवर्त्तपूर्वसमये बिभरांबभूव यो जातरूपधरणीधरसन्निभत्वम् । विश्वम्भरास्थितपदार्थसमीक्षणोत्कस्वर्लोकमार्गचरखेचरकामिनीनाम् ॥ अभ्यागतो नयनवर्त्म महाचलोऽयं सत्यं बिभर्त्ति परमाणुसमानरूपम् ॥कल्पांतकालधरणीधरणप्रवृद्धलोकाधिराजतनुमानविलोकनेन ॥ शैलो बिभर्ति परमाणुसमत्वमेव सर्वस्य लाघवमहो गुरुसन्निधौ स्यात् । परमाणुतनोरग्रे कीटिका वारणायते ॥ वारणोऽतिसुवर्णाद्रिमानतः कीटिकायते । महाद्रिशिखरस्थायी वारणः कीटिकायते ॥ साधुचित्तानुमानेन महाद्रिः कीटिकायते ॥ इत्यादिगुरुतरपदार्थेन गुरुपदार्थस्य लघुता विधेया ॥ विष्णोरधोमुखतया वैपरीत्यं यथा । कालि याहि ग्रहव्यग्रे यमुनायां जगन्निधौ । झंपयाधोमुखं जातं विपरीतं जगत्रयम् ॥ अपरेणापि प्रकारेण विपरीते कृते कृते । तदुदरवर्तिजगत्रयमध्यास्थितः सर्वोऽपि पदार्थो विपरीतो भवति ॥ प्रतिबिंबतो वैपरीत्यं यथा । तडागे दर्पणप्राये प्रतिबिंबादजायत । जलशय्याकृतः कृष्णप्रासादः कलशोपरि । हन्त स्वल्पाब्धिसंक्रांता धूपवर्तिरधोमुखी । भाति यांतीव पातालं पवित्रयितुमुज्ज्वला॥ उदकादौ युग्मत्वं यथा । रात्रौ चंद्रोदये तोयप्रतिबिंबितविग्रहः । लोकैरेकोऽपि कोकोऽयं सद्वितीयः समीक्ष्यते ॥ पूर्वाद्रौ रत्नभित्त्य-

न्तजर्ताकप्रतिबिंबतः । शंक्यते शत्रुकांताभिः किमुदेति रविद्वयम् ॥
चंद्रांधकाररविकीर्तिकुकीर्तिसंध्यारागाभिसंगकृतवर्णविपर्ययेण ।
दृष्टांतवद्द्वयदिशब्दतया पुराणैर्वात्सल्यशोकमधुघातवियोगमादौ ॥
स्वप्नेंद्रजालकमतिभ्रमचित्रमायामंत्रौषधीमणितपःपदभंगभावात् ।
शौर्यस्त्रवांछितमनोगतिपुण्यदेवप्रश्नोत्तरक्षयसमासविभिन्नसाध्यात् ।
श्रीहाटकेश्वरजगत्प्रलयप्रहास्तपाथोधिमंथसमयप्रतिबिंबभावैः संग्रा
मलक्ष्यपुरचंदनशस्त्रपातैश्चंडीशपद्मगुरुताभिरथोपमानैः ॥ यद्दुर्घटं
भवति तत्प्रकटं पदीयानौचित्यचिंतितपदं परिहृत्य कुर्यात् ॥ पूर्वो-
क्तपथ्यगदितैरुपदेशभावैरेतैरिति स्म कविकल्पलताकृदाह ॥
अथोदाहरणानि ॥ रक्तकृष्णादयो वर्णाश्चंद्रेण श्वेताः क्रियंते । य-
था । उल्लसत्तुहिनज्योतिर्द्युतिविद्योतितोऽभितः । कैलासशैलसंका-
शः कासते विंध्यभूधरः ॥ जपापुष्पं जातिसमं सुवर्णं रजतप्रभम् ॥
सुधाकरकरस्पर्शाद्भाति चंदनवन्मसी ॥ अंधकारेण यथा । कैलासो
विंध्यसंकाशः कर्पूरः कज्जलप्रभः । जपा तापिच्छगुच्छश्रीस्तमसा
भाति लिम्पता ॥ कृष्णश्वेतादयो वर्णा बालार्केण प्रथमं रक्तास्तद-
नु पीताः क्रियन्ते । यथा । कज्जलं कुंकुमच्छायं जातीपुष्पं जपा-
समम् । सुवर्णं पद्मरागश्रि प्रभातार्कप्रभावृतम् ॥ इत्यमन्यत्रापि
वर्णविपर्ययः कार्य्यः ॥ यदा पुनश्चंद्रादीनामेव वर्णविपर्ययश्चिकी-
र्षितस्तदा कीर्त्त्यादिभिरेव तेषामपि वर्णविपर्ययः कार्यः । स्वर्धु-
नीसलिलसंनिभस्फुरत्तावकीनघनकीर्त्तिमंडलैः । विस्तृतैस्त्रिजगति
क्षमापते शीतरश्मिरिव लक्ष्यते रविः ॥ अन्यवस्तूनां यथा । मे-
दिनीदयित तावकैर्यशःसञ्चयैरुपचितैः समंततः । क्षीरनीरनिधि-
सोमकोमलैर्जायते रजतकांतिकज्जलम् ॥ हिमाद्रिसदृशो मेरुर्भाति
कुंकुमबिंदुवत् । भूमीधर भवत्कीर्त्या शुभ्रिते भुवनत्रये ॥ कुकीर्त्या य-
था ॥ भूमिपाल भवदीयविद्विषन्मेदिनीपतिकुकीर्त्तिपंक्तिभिः । प्रावृषे-

ण्यजलवाहकांतिभिश्श्यामलो जयति यामिनीपतिः ॥ अन्यवस्तू-
नामपि यथा॥मेदिनीदयित तावकद्विषत्प्रोन्मिषद्बहुलतरायशःशतैः ।
अंधकारनिकरैरिवोद्धतैः कुंकुमं मृगमदायतेतराम् ॥हिमाद्रिविन्ध्य-
बंधुश्रीः स्वर्णं मरकतप्रभम् । धराधर तव द्वेषि कुकीर्तिप्रसरैर्विभो॥
संध्ययोर्यथा ॥ पूर्वभूधरशिरस्तटीचरः सांध्यरागपटलैः परीवृतः ।
दृश्यतामिह विभावरीमुखे विद्रुमप्रतिनिधिः सुधानिधिः ॥ विद्रुमा-
रुणबिंबौष्ठप्रभापाटलितद्युतिः । वदने तव तन्वंगि कर्पूरः कुंकुमाय-
ते ॥ कांतकाथपरवामलोचनालोचनांतविततारुणद्युतौ । सांध्यरा-
गपटले सति क्षणं कज्जलं जयति कुंकुमोपमम् ॥ रूप्यं सिन्दूरपूरा-
भं कर्पूरं पद्मरागरुक् ॥ जपाकुसुमसंकाशैः सांध्यरागभरैरभूत् ॥ व-
र्णांतरसंगाद्यथा ॥ शशिमुकुटललाटे शैलजागंडपालीविगलितमृ-
गनाभिव्यक्तघर्मांबुसिक्तः । समजनि नरकारिश्श्यामलो यामिनीशो
जगति मलिनसंगात्को न मालिन्यमेति ॥ मसृणघुसृणपंकप्रक्रिया-
भंगिजाग्रत्कुचकलशविलासैः कुंदचंद्रोज्ज्वलोऽपि । अगमदरुणभा-
वं कामिनीकंठहारो जगति भवति रागो रागिसंगान्न कस्य॥ क्षिति-
धरपतिपुत्रीमौक्तिकव्यक्तभंगीनिलयवलयमालाकांतिजालावलीढः
हिमरुचिरुचिरासीन्नीलकंठस्य कंठो भवति विमलयोगान्निर्मलत्वं
न कस्य ॥ अत्रोच्चैः स्फूर्जदभ्रंलिहगृहवडभीविर्यवैदूर्यनिर्यज्ज्यो-
तिर्जातप्रयातव्यतिकरविधुरीभूतशोभाभिभूतः । कालिंदीकाल-
कांतिः समजनि रजनीजीवितस्याधिनाथो धत्ते को वा कलावा-
नपि न हि मलिनासंगतः कज्जलत्वम् ॥ अहो राहुग्रहग्रस्तसमस्तो-
ज्ज्वलमंडलः । इंदुः कज्जलबिंदुश्रीम्लानिः कस्य न विप्लवे ॥ दृष्टां-
तवद्व्यादिशब्दतया यथा॥प्रतीच्यां यदि मार्त्तण्डः समुदेति स्फु-
रत्करः । तदा संजायते नूनमग्निस्तुहिनशीतलः ॥ पुराणैः पुरा-
णचरितैर्लक्षणं यथा ॥ अगस्त्यमुनिनिष्पीतनिःशेषजलमंडलात् ।

अहर्पतिमहःशुष्कात्सागराद्धूलिरुत्थिता ॥ अतुच्छवत्सवात्सल्य-पिच्छलीभूतचेतसा॥जनन्या मन्यतेऽत्यर्थं व्याघ्रः सौम्यवपुः क्षमी॥ शोकेन मधुनाघाते न वियोगे न मादने ॥ नवा समस्या पूर्य्यंते शोकादिभिर्व्याप्तचेता हि विपरीतमाचरति। शोकव्याप्तचेता वा आत्मानं मन्यते मृतम्।मद्यपा मदिरामेव गंगां वदति मानवः। शस्त्राघातयुतो भूमिमाकाशमिव मन्यते ॥ वियोगार्त्तो जनः स्थाणुं मानुषत्वेन पश्यति । मत्तो नग्नोऽप्यनग्नमात्मानं मन्यते भृशम् ॥ इति स्वप्नेऽघटमानमपि घटते भोज्याभिषेककलाकुशलस्वप्ने दृष्टमिदं त्वं विचारयेत्यादि कल्पनीयम् । इंद्रजालेन मतिभ्रमेण चित्रेण चाद्भुतमपि भोश्चित्रकर ईदृग्दृष्टं चित्रं लिखेति वाक्यं । रचनीयं माययापि विसदृशं भाव्यं मणिमंत्रमहौषधीनां च प्रभावेण सर्वसाध्यं यस्मादचिंत्यो हि महिमा मणिमंत्रमहौषधीनां तपसापि सर्वं साध्यते यतः। सर्वं हि तपसा साध्यं तपश्च दुरतिक्रमम् ।पदभंगेन यथा॥ मृगार्त्तिसहः पलायते॥मृगमत्तीति विशेषणं पलाय मांसाय ते तव अयं मृगः समायातिमृगार्त्तिसहः पलायते। ततो वेगात्पलायस्व त्वरितस्त्वरितैः पदैः॥शौर्येण स्वेन वांछितेन मनोगत्या पुण्येन दुर्घटमपि घटते देवप्रसादेनासाध्यमपि साध्यते॥ यथा॥ निःश्रीकोऽपि विभो विभातसमये पश्यत्यवश्यं पुमान्यस्ते पद्मसमानमाननमसौ स्यादिन्दिरामन्दिरम् । देवोल्लासि किमु स्तुमस्तव पदं यस्य प्रसादाज्जनो मूको जल्पति संशृणोति बधिरः पंगुर्नरीनृत्यते ॥ १ ॥ प्रश्नोत्तरेण यथा ॥ कस्तूरी जायते कस्मात्को हंति करिणां कुलम्। किं कुर्यात्कातरो युद्धे मृगार्त्तिसहः पलायते ॥ समस्यायां यत्साध्यं पदं तत् क्षयसमासेन भिन्नं क्रियते समासस्य क्षयः क्षयसमासस्तेन समासं निवर्त्य भिन्नं क्रियत इत्यर्थः ॥ यथा ॥ कर्पूरपूरच्छविवादविद्यासंवावदूकद्युतिशुभ्रि-

ताभ्रे ॥ इंदोर्नृप द्वेपितमोवितानसूर्योदये रोदिति चक्रवाकी ॥ कर्पूरस्य पूरः पुंजस्तस्य च्छव्या सह वादविद्यासंवावदूका प्रतिभटाऽर्थात्तादृशी या द्युतिस्तया शुभ्रितानि श्वैत्यं नीतान्यभ्राणि येन तस्मिन् । इन्दोरुदये सूर्यानवोढा चक्रवाकी कोकी हे नृप द्वेपिण एव तमांसि तेषां विगतस्तानो विस्तारो येन हे एतादृश रोदिति वियोगभीतेः हाटकेश्वरनमस्कारेण स्वर्गलोकावतारः जगतः प्रलयेन मर्त्यलोकावतारः । ग्रहास्तेन नभोलोकावतारः ॥ यथा ॥ हाटकेश्वरयात्रायां शिवरात्रिमहोत्सवे । सुरेन्द्रादिभिरायातैः स्वर्गः पातालमाययौ ॥ जगत्प्रलयकालेऽसौ पृथ्वी पातालमाययौ । संहारघोरचंडीशकोपाटोपादुद्त्वरत् ॥ कदाचिच्चारभेदेन क्रमादस्तमुपागतैः । ग्रहैः संभाव्यते सम्यग्ययौ व्योम रसातलम् ॥ पाथोधिमथनारंभसंभेदाद्देवनागयोः। पृथिव्यां स्वर्गपाताले दृश्येते स्म समागते ॥ दर्पणप्रतिमोल्लासिपयःपूरे सरोवरे । प्रतिबिंबच्छलादेतद्भुवि व्योम समागतम् ॥ संग्रामधीरवीराणां विलोकनकुतूहलात् । समायातैः सुरेन्द्राद्यैः स्वर्गो नभसि दृश्यते ॥ आकाशान्तरसञ्चारि हरिश्चंद्रपुरच्छलात् । भूपस्य मिलनायैव जगाम धरणीं नभः । श्रीरामरावणरणे कपिमंडलेन शस्त्रीकृतैर्मलयजद्रुमचक्रवालैः । रिङ्गद्भुजङ्गमकुलैः परितः स्फुरद्भिः संभाव्यते नभसि सर्पपुरं प्रसर्पत् ॥ श्रीकण्ठकण्ठदोर्दण्डजटाश्रोत्राहिमंडलैः । अहो पाताललोकोऽयं स्वर्लोककलिताश्रयः॥ अभ्रंलिहगृहव्यूहचंद्रशालाविलासिभिः । नरनारीगणैरेव मर्त्यलोको द्युलोकगः ॥ सुमेरुशिखरप्रांतस्फुरद्दिव्यवधूमुखैः । परितः स्फुरितैः शंके शतचंद्रं नभस्तलम्॥युद्धक्रुद्धभटच्छिन्नकुंभिकुंभस्थलोद्गतैः। मुक्ताफलशतैः शंके दिवा तारकितं नभः ॥ यदेतन्मयकाकारिकारिकारत्नपंचकम् । कुरुतानवगीतेन तेन श्रवणपूरणम्॥इह विस्तर-

भिया वहु नोद्धाट्यते इत्यलम् ॥ अथ च नीतिशास्त्रमपि मन्वादि-भिः सूत्रितं कामंदकादिभिः प्रणीतं तत्संधिविग्रहादिभेदैरनेकधा । संधिश्च विग्रहं चैव यानमासनमेव च । द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणां-श्चितयेत्सदेति श्रीमानवोक्तेः।तत्रोभयानुग्रहार्थं हस्त्यश्वरथहिरण्या-दिनिवंधनेनावाभ्यामन्योन्यस्योपकर्त्तव्यमिति नियमवंधः संधिः । विग्रहं वैरम्।यानं शत्रुं प्रति गमनम्।तदुपेक्षणमासनम्। स्वार्थसिद्धये स्ववलस्य द्विधाकरणं द्वैधीभावः। शत्रुपीडितस्य प्रवलतरराजां-तराश्रयणं संश्रयः । गुणानुपकारकान्सदा चिंतयेत् । यद्गुणाश्रय-णे सत्यात्मन उपचयः परस्यापचयस्तं गुणमाश्रयेदिति भावः । ए-षां भेदास्तु श्रीमनुना सप्तमाध्याये प्रपंचितास्ते चात्र विस्तर-भिया नोक्ताः ॥ अथ लेशेन राजनीतिमपि वदामः॥धार्मिकं पालन-परं सम्यक्परपुरंजयम् ॥ राजानमभिमन्यंते प्रजापतिमिव प्रजाः ॥ १ ॥ पर्जन्य इव भूतानामाधारः पृथिवीपतिः ॥ विकलेऽपीह प-र्जन्ये जीव्यते न तु भूपतौ ॥ २ ॥ प्रजां संरक्षति नृपः सावर्द्धयति पार्थिवम् ॥ वर्द्धनाद्रक्षणं श्रेयस्तन्नाशेन सदप्यसत्॥३॥आत्मानं प्र-थमं राजा विनयेनोपपादयेत् ॥ ततोऽमात्यांस्ततो भृत्यांस्ततः पुत्रांस्ततः प्रजाः ॥ ४ ॥ राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः ॥ लोकास्तदनुवर्त्तंते यथा राजा तथा प्रजाः ॥ ५ ॥ नृपाणां च नराणां च उभयोस्तुल्यमूर्तिता॥ आधिक्यं तु क्षमा धैर्य माज्ञा दानं पराक्रमः ॥ ६ ॥ सदानुरक्ताकृतिश्च प्रजापालनतत्परः॥ विनीतात्मा हि नृपतिर्भूयसीं श्रियमश्नुते ॥ ७ ॥ प्रजा न रंजयेद्यस्तु राजा रक्षादिभिर्गुणैः ॥ अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ ८॥ अजामिव प्रजां हन्याद्यो मोहात्पृ-थिवीपतिः ॥ तस्यैव जायते तृप्तिर्द्वितीयस्य कथञ्चन ॥ ९ ॥ प्रजापीडनसंतापात्समुद्भूतो हुताशनः ॥ राज्ञः कुलं श्रियं प्राणान्नाऽ-

दग्ध्वा विनिवर्त्तते ॥१०॥ यथा बीजांकुरः सूक्ष्मः प्रयत्नेनाभिवर्द्धितः॥ फलप्रदो भवेत्काले तद्वल्लोकः सुरक्षितः ॥ ११ ॥ हिरण्यधान्यरत्नानि स्त्रियश्च गजवाजिनः ॥ तथान्यदपि यत्किञ्चित्प्रजाभ्यः स्यान्महीपतेः ॥ १२ ॥ उत्खातान्प्रतिरोपयन्कुसुमितांश्चिन्वँल्लघून्वर्द्धयन्नत्युच्चान्नमयन्पृथूंश्च लघयन्विश्लेषयन्संहितान् ॥ क्षुद्रान्कंटकिनो बहिर्नियमयन्स्वात्रोपितान्पालयन्मालाकार इव प्रयोगनिपुणो राजा चिरं तिष्ठति ॥ १३ ॥ अकृत्वा निजदेशस्य रक्षां यो विजिगीषते ॥ स नृपः परिधानेनावृतमौलिः पुमानिव ॥ १४ ॥ अनंतरमरिं विद्यादरिसेविनमेव च ॥ अरेरनंतरं मित्रमुदासीनं तयोः परम् ॥ १५ ॥ विजिगीषोर्नृपस्यानन्तरितं चतुर्दिशमप्यरिप्रकृतिं जानीयात्तथा तत्सेविनमप्यरिमेव विद्यात् । अरेरनन्तरं विजिगीषोर्नृपस्यैकानन्तरं मित्रप्रकृतिं विद्यात्तयोररिमित्रयोः परं विजिगीषोरुदासीनं प्रकृतिं विद्यादित्यर्थः॥तान्सर्वानभिसंदध्यात्सामादिभिरुपक्रमैः॥व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च पौरुषेण नयेन च ॥ १६ ॥ निर्विषोऽपि यथा सर्पः फटाटोपो भयंकरः ॥ तथाडंबरवान्राजा न परैरभिभूयते ॥ १७॥ पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः। जये भवति संदेहः प्रधानपुरुषक्षयः ॥ १८ ॥ भूमिर्मित्रं हिरण्यं वा विग्रहस्य फलत्रयम् ॥ नास्त्येकमपि यद्येषां न तत्कुर्यात्कथंचन ॥ १९ ॥ सामैव हि प्रयोक्तव्यमादौ कार्यं विजानता ॥ साम्ना सिद्धानि कार्याणि विक्रियां यांति न क्वचित् ॥ २० ॥ न विश्वसेदमित्रस्य मित्रस्यापि न विश्वसेत् ॥ विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृंतति ॥२१॥ शपथैः संधितस्यापि न विश्वासं व्रजेद्रिपोः ॥ राज्यलोभोद्यतो वृत्रः शक्रेण शपथैर्हतः ॥२२॥ उपकारगृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत् ॥ पादलग्नं करस्थेन कंटकेनेव कंटकम् ॥ २३ ॥ नोपेक्षितव्यो विद्वद्भिरामयोऽरिरवज्ञया॥वह्निरल्पोऽ-

पि संवृद्धः कुरुते भस्मसाद्वनम् ॥ २४ ॥ कौर्मं संकोचमास्थाय प्रहारानपि मर्षयेत्॥कालेकाले च मतिमानुत्तिष्ठेत्कृष्णसर्पवत्२५॥ तावद्भयाद्धि भेतव्यं यावद्भयमनागतम् ॥ आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्त्तव्यमभीतवत् ॥ २६ ॥ परोऽपि हितवान्बंधुर्बंधुरप्यहितः परः ॥ अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम् ॥ २७॥ यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रासं ग्रसितं परिणमेच्च यत् ॥ हितं च परिणामे स्यात्तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥ २८॥ मा तात साहसं कार्षीर्विभवैर्गर्वमागतः॥स्वगात्राण्यपि भाराय भवंति हि विपर्यये॥२९॥मा त्वं तात बले स्थित्वा बाधिष्ठा दुर्बलं जनम्॥न हि दुर्बलदग्धानां कुले किंचित्प्ररोहति ॥ ३० ॥ यानि मिथ्याभिभूतानां पतंत्यश्रूणि रोदताम् ॥ तानि संतापकान्घ्नन्ति सपुत्रपशुबांधवान्॥३१॥ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु जातिषु गोषु च ॥ वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र पतंति ते ॥ ३२ ॥ देवब्रह्मस्वपुष्टानि सैन्यानि पृथिवीपतेः ॥ युद्धकाले विशीर्य्यन्ते सैकतास्सेतवो यथा॥३३॥प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥ एवं विद्वानविद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ॥३४ ॥ अदेवं दैवतं कुर्युर्दैवतं चाप्यदैवतम्॥ ब्राह्मणा लोकपालांश्च सृजेयुश्चातिकोपिताः॥३५॥युगे युगे च ये धर्म्मास्तेषु धर्मेषु ये द्विजाः॥ तेषां निंदा न कर्तव्या युगरूपा हि वै द्विजाः ॥ ३६ ॥ आक्रम्य ब्राह्मणैर्भुक्तं परिक्षीणैश्च बांधवैः ॥ गोभिश्च नृपशार्दूल राजसूयाद्विशिष्यते ॥ ३७ ॥ गतश्रीर्गणकान्द्वेष्टि गतायुश्च चिकित्सकान् ॥ गतश्रीश्च गतायुश्च ब्राह्मणान्द्वेष्टि भारत ॥ ३८ ॥ बुद्धौ कलुषभूतायां विकारे प्रत्युपस्थिते ॥ अनयोऽनयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति ॥ ३९ ॥ न कालः खड्गमुद्यम्य शिरः कृंतति कस्यचित् ॥ कालस्य बलमेतावद्विपरीतार्थदर्शनम् ॥ ४० ॥ जानन्नपि नरो दैवात्प्रकरोति विगर्हितम् ॥ न कर्म कस्यचिल्लोके गर्हितं रोचते कृतम् ॥४१॥ मा तात

संपदामग्रमारूढोऽस्मीति विश्वसीः ॥ दूरारूढपरिभ्रंशविनिपातोऽ-
तिदारुणः॥४२॥कितवा यं प्रशंसंति यं प्रशंसंति चारणाः॥यं वेश्या
यं नटा मल्लाः स पार्थ पुरुषाधमः॥४३॥राजानो यं प्रशंसंति यं प्र-
शंसंति वै द्विजाः ॥ साधवो यं प्रशंसंति स पार्थ नृप उच्यते॥४४॥
प्रज्ञागुप्तशरीरस्य किं करिष्यंति संहताः ॥ गृहीतच्छत्रहस्तस्य वा-
रिधारा इवारयः॥४५॥ बहूनामप्यसाराणां समुदायोऽस्ति दारुणः॥
राज्ञा भृत्याः प्रकर्त्तव्या ये हि सर्वक्रियाक्षमाः ॥ ताडितोऽपि दुरु-
क्तोऽपि खंडितोऽपि महीभुजा॥४६॥न चिंतयति यः पापं स भृत्योऽ-
र्हो महीभुजाम् ॥ योऽनाहूतः समभ्येति द्वारे तिष्ठति सर्व-
दा॥ पृष्टः सत्यं मितं ब्रूयात्स भृत्योऽर्हो महीभुजाम्॥ ४७॥ साल-
स्यं मुखरं क्रूरं स्तब्धं व्यसनिनं वशम् ॥ असंतुष्टमभक्तं च त्यजे-
द्भृत्यं नराधिपः ॥ ४८ ॥ रिक्ताः कर्मणि पटवस्तृप्तास्त्वलसा भ-
वन्ति ये भृत्याः ॥ तेषां जलौकसामिव पूर्णानां रिक्तता कार्या
॥ ४९ ॥ क्रूरं व्यसनिनं लुब्धमप्रगल्भमथाकुलम् ॥ मूर्खमन्यायक-
र्त्तारं नाधिपत्ये नियोजयेत्॥५०॥नियोगिभिर्विना राज्यं नास्ति भूपे
हि केवले ॥ तस्मादमी विधातव्या रक्षितव्याः प्रयत्नतः ॥ ५१ ॥
वेदवेदांगतत्त्वज्ञो जपहोमपरायणः ॥ आशीर्वादपरो नित्यमेष राज-
पुरोहितः ॥ ५२ ॥ क्रमागतो हितमतिः सर्वभावपरीक्षकः॥धीरो य-
थोक्तवादी च एष दूतो विधीयते ॥ ५३ ॥ प्रवीणो वाक्पटुर्धीमा-
न्स्वामिभक्तश्च नित्यशः ॥ अलुब्धः सत्यवादी च एष शासनले-
खकः ॥ ५४ ॥ मेधावी वाक्पटुर्धीरो लघुहस्तो जितेंद्रियः ॥ शस्त्र-
शास्त्रपरिज्ञाता एष लेखक उच्यते॥५५॥इंगिताकारतत्त्वज्ञो बलवा-
न्प्रियदर्शनः ॥ समयज्ञः स्वामिभक्तः प्रतीहारः स उच्यते ॥ ५६ ॥
शूरोऽर्थशास्त्रनिपुणः कृतशस्त्रकर्मा संग्रामकेलिचतुरश्चतुरङ्गयुक्तः॥
भर्तुर्निदेशवशगोऽभिमतश्च तंत्रे सेनापतिर्नरपतेर्विजयागमाय५७॥

काणाः कुब्जाश्च पण्ढाश्च तथा वृद्धाश्च पंगवः ॥ एते स्वांतःपुरे नित्यं नियोक्तव्याः क्षमाभृता ॥ ५८ ॥ सिद्धान्नमिव राजेंद्र सर्वसाधारणाः स्त्रियः ॥ परोक्षे च समक्षे च रक्षितव्याः प्रयत्नतः ॥ ५९ ॥ सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसंगेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या हि सर्वदा॥ द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ ६० ॥ धर्मशास्त्रार्थ-कुशलाः कुलीनाः सत्यवादिनः ॥ समाः शत्रौ च मित्रे च नृपतेः स्युः सभासदः ॥ ६१ ॥ न सा सभा यत्र न संति वृद्धा न ते वृद्धा ये न वदंति धर्मम् ॥ नासौ धर्मो यत्र नैवास्ति सत्यं न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम् ॥ ६२ ॥ सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं नासमंजसम् ॥ अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरः किल्बिषम भुते ॥ ६३ ॥ तस्मात्सभ्यः सभां गत्वा रागद्वेषविवर्जितः ॥ वचस्तथाविधं ब्रूयाद्यथा न नरकं व्रजेत् ॥ ६४ ॥ पिता माता गुरुर्भ्राता भार्या पुत्रः पुरोहितः ॥ नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति स्वधर्मे यो न तिष्ठति ॥ ६५ ॥ अवध्यो ब्राह्मणो बालः स्त्री तपस्वी च रोगवान् ॥ क्रियन्ते व्यंगिता ह्येते ततो दोषैर्न लिप्यते ॥ ६६ ॥ न तु हन्यान्महीपालो दूतं कस्यांचिदापदि ॥ दूतान्हत्वा तु नरक-माविशेत्सचिवैः सह ॥ ६७ ॥ विशोधयेन्महीपालो मंत्रशालामशे-षतः ॥ अयुक्तो नार्हति स्थातुमस्यां मंत्ररहस्यवित् ॥ ६८ ॥ मंत्रतंत्रार्पितप्रीतिर्देशकालोचितस्थितिः ॥ यश्च राज्ञि भवेद्भक्तः सोऽमात्यः पृथिवीपतेः ॥ ६९ ॥ अन्तःसारैरकुटिलैः सुस्निग्धैः सुपरीक्षकैः ॥ मंत्रिभिर्धार्यते राज्यं सुस्तंभैरिव मंदिरम्॥७०॥ नर-पतिहितकर्त्ता द्वेष्यतां याति लोके जनपदहितकर्त्ता मुच्यते पार्थि-वेन्द्रैः॥इति महति विवादे वर्त्तमाने समाने नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्त्ता॥७१॥षट्कर्णो भिद्यते मंत्रश्चतुष्कर्णः स्थिरो भवेत्॥द्विक-र्णस्य तु मंत्रस्य ब्रह्माऽप्यंतं न गच्छति॥७२॥षट्कर्णेषु न कर्तव्यो न

कर्त्तव्यः कदाचन ॥ षट्कर्णेषु च करणाद्भूपोऽभूद्भिक्षुकः पुरा ॥७३॥
अत्रेयमाख्यायिका ॥ कश्चिन्नृप एकेन निजपरमसेवकेन योगिसमीपं गत्वा परकायावेशविधिं योगिनं ययाचे। योगिना सेवाप्रीतेन त्वमेतं निजभृत्यमितो निष्कास्य शृण्विति वहुधोक्तोऽपि तेन सहैव शुश्राव। तावुभावेव समं तद्विधिं विजज्ञतुः। एवं स्थिते कदाचित्तत्पट्टराज्ञीपालितः कीरो मृतिमाप। सा च वहुधा विललाप। तद्रात्रौ तेन भृत्येन सार्द्धमेव नृपोंतःपुरमाप। ताञ्चाह कीरमृतिविह्वलामितोऽपि पटुतरं कीरसहस्रं ते दास्याम्यतः कः शोकावसरः। सा च दैवेनमेव मह्यं पूर्वदर्शितयोगविद्यया मुहूर्त्तं जीवय पुनरेतु मृतिमित्युक्तो नृपस्तां बोधयन्नपि बोधयितुं न शशाक। ततो निजदेहं त्यक्त्वा कीरे प्रविश्य तं जीवयामास। तदा तूर्णमेव राज्यभोगलोभेन नष्टविवेको नृपदेहं स भृत्यो विवेश। शुकश्च पंजराद्विससर्ज। राजा तत्रैव विधवापुत्रं विप्रं मृतं दृष्ट्वा तन्मातरमतीव शोकाकुलां दृष्ट्वा कीरदेहं त्यक्त्वा विप्रात्मजवपुः प्रविश्य तं जीवयामास। राजदेहप्रविष्टेन तद्भृत्येन सर्वत्र शुकमारणमज्ञापि। तदा राज्ञ्या मंत्र्यादयश्च विरुद्धचेष्टं मत्वा नायं नृप इति मेनिरे। राज्ञोऽन्वेषणार्थं स्वपुरे पुरांतरेषु च सत्राणि कृतानि। तत्र च समागतविदेशिजनवृत्तलेखनार्थं लेखका अपि न्यस्तास्तद्वृत्तं च पट्टराज्ञी नित्यं शृणोति स्म। एकदा नृपतिरेव विप्रांगापिहितात्मा सत्रमाप्य षट्कर्णेषु न कर्त्तव्य इत्यादिश्लोकं पपाठ। लेखकस्तं राज्ञ्यै श्रावयामास। पुना राज्ञी श्रुत्वा झटिति स्त्रीवेषिणं तं विधाय मत्पार्श्वमानयेति लेखकं प्रोवाच। स तथैव कृतवान्। सा च पूर्ववदेकं चटकेंद्रं मारयित्वा शुशोच। तत्रागतस्तां सांत्वयितुमशक्तस्तदर्थनया स्वदेहं त्यक्त्वा चटकेंद्रांगे विवेश स च स्त्रीवेषी विप्रः कृतपूर्वसंविज्झटिति निजांगमाविश्य विप्रदाहायौर्ध्वदेहिकार्थमाज्ञाप्य

चटकं ममहेति शिष्टाः ॥ अथ प्रकृतमनुसरामः ॥ हन्यादेकं न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता ॥ बुद्धिर्बुद्धिमता क्षिप्ता हंति राज्यं सनायकम् ॥ ७४ ॥ न तद्रथैर्न नागेन्द्रैर्न हयैर्न च पत्तिभिः ॥ कार्यं संसिद्धिमभ्येति यथा बुद्ध्या प्रसाधितम् ॥ ७५ ॥ दुर्योधनः समर्थोऽपि दुर्मंत्री प्रलयं गतः॥राज्यमेकं चकारोच्चैस्सुमंत्री चंद्रगुप्तकः ॥७६॥ अशृण्वन्नपि बोद्धव्यो मंत्रिभिः पृथिवीपतिः॥ तथा स्वदोषनाशाय विदुरेणांबिकासुतः ॥ ७७ ॥ पृष्टो ब्रूते मितं ब्रूते परिणामे सुखावहम् ॥ मंत्री चेत्प्रियवक्ता स्यात्केवलं स रिपुः स्मृतः ॥ ७८ ॥ सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ॥ अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता सुदुर्लभः ॥ ७९ ॥ दुर्गाणि राज्ञा कार्याणि सजलान्निदृढानि च ॥ द्रव्यमन्नं च तेष्वेव स्थापनीयं प्रयत्नतः ॥ ८०॥ दुर्गं बहुविधं ज्ञेयं पर्वतस्य जनस्य च॥प्राकारस्य वनस्यापि भूमेरपि भवेत्क्वचित् ॥८१॥ न गजानां सहस्रेण न लक्षेणैव वाजिनाम्॥तथा सिध्यन्ति कार्याणि यथा दुर्गप्रभावतः॥८२॥ विषहीनो यथा सर्पो मदहीनो यथा गजः ॥ सर्वेषां वश्यतां याति दुर्गहीनस्तथा नृपः ॥८३ ॥ शतमेको वशं धत्ते दुर्गस्थो हि धनुर्धरः ॥ तस्माद्दुर्गं प्रशंसंति नीतिशास्त्रविदो जनाः ॥ ८४ ॥ एकः शतं योधयते प्राकारस्थो धनुर्द्धरः ॥ शतं सहस्राणि तथा सहस्रं लक्षमेव च ॥ ८५ ॥ त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः ॥ नियोजयेत्तथैवैतांस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥ ८६ ॥ तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनम्॥अर्द्धराज्यहरं भृत्यं यो न हन्यात्स हन्यते॥८७॥ निर्विशेषं यदा राजा समं भृत्येषु तिष्ठति ॥ तत्रोद्यमसमर्थानामुत्साहः परिहीयते ॥ ८८ ॥ प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधो यस्य निरर्थकः ॥ न तं भर्त्तारमिच्छंति षण्ढं पतिमिवाबलाः ॥ ८९ ॥ त्यजेत्स्वामिनमत्युग्रमत्युग्रात्कृपणं त्यजेत् ॥ कृपणादविशेषज्ञं तस्मा-

च्च कृतनाशकम् ॥ ९० ॥ सद्वनमसुजनशासनमाश्रितभरणं मही-
पचिह्नानि ॥ छत्रचमरवाद्यानि मृतजनमपि केऽपि कुर्वंति ॥ ९१ ॥
आश्रितान्पालयेन्नित्यं पारंपर्य्यगतान्ध्रुवम् ॥ यश्चाश्रितपरित्यागी
स राजा केन कथ्यते ॥ ९२ ॥ आश्रितास्त्रिविधाः प्रोक्ता भृत्या वि-
प्राश्च बंधवः ॥ न तांस्त्यजेद्विपन्नोऽपि ब्राह्मणांश्च विशेषतः ॥९३॥
अविवेकिनि भूपाले नश्यंति गुणिनां गुणाः ॥ प्रवासरसिके कांते
यथा वध्वास्स्तनोन्नतिः॥चित्तोत्साहः पुरंध्रीणां सति पत्यौ नपुंसके
॥ ९४ ॥ शास्त्रश्रवणपाठादिहीनो नरपतिस्तु यः ॥ सोऽविवेकीति
संप्रोक्तः पाखंडनिरतस्तु यः ॥ ९५ ॥ वेदाः सांगाः पुराणानि भा-
रतं चागमानि च ॥ रामायणं धर्मशास्त्रं यदन्यच्छ्रुतिसंमतम्॥९६॥
एतच्छास्त्रमिति प्रोक्तमशास्त्रं यदतोऽन्यथा ॥ यद्वृत्तं न हि वेदोक्तं
तत्पाखंडमितीरितम्॥९७॥पाखंडिनः स्वीयराज्याद्राजा निर्वासये-
त्सदा ॥ तेनैहिकं सुखं भुक्त्वा राजेंद्रपदमश्नुते ॥ ९८ ॥ किंशुके
किं शुकाः कुर्युः फलितेऽपि बुभुक्षिताः ॥ अदातारि समृद्धेऽपि किं
कुर्युरुपजीविनः ॥ ९९ ॥ सेवया धनमिच्छद्भिस्सेवकैः पश्य यत्कृ-
तम् ॥ स्वातंत्र्यं यच्छरीरस्य मूढैस्तदपि हारितम् ॥ १०० ॥
वाचा सत्यं सदा ब्रूयात्प्रतिश्रुत्य न वै चलेत् । वाचा विचलितं येन
सुकृतं तेन हारितम्॥१०१॥ माता पिता च तस्यैव जातिद्वयसम-
न्विते॥विज्ञेयो यो न मनुते शास्त्रमपि पृथग्जनः ॥ १०२ ॥ विप्रांश्च
देवतान्वृद्धाञ्छास्त्राणि यो न मानयेत् ॥ नैवात्र संशयः कश्चित्स
भवेद्वर्णसंकरः ॥ १०३ ॥ वरं वनं फलं भैक्ष्यं वरं भारोपजीवनम्॥
पुंसां विवेकहीनानां सेवया न धनार्जनम् ॥ १०४ ॥ जीवन्तोऽपि
मृताः पञ्च व्यासेन परिकीर्त्तिताः ॥ दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी
नित्यसेवकः ॥ १०५ ॥ न कश्चिच्चंडकोनामात्मीयो नाम च भूभु-
जाम् ॥ होतारमपि जुह्वंतं दहत्येव हि पावकः ॥ १०६ ॥ गृध्राका-

रोऽपि सेव्यः स्याद्धंसाकारैः सभासदैः ॥ हंसाकारोऽपि संत्याज्यो गृध्राकारैः सभासदैः ॥ १०७ ॥ चक्रं सेव्यं नृपः सेव्यो न सेव्यः केवलो नृपः ॥ यस्य चक्रस्य माहात्म्यं मृत्पिंडः पात्रतां गतः ॥ ॥ १०८ ॥ गंतव्या राजसभा द्रष्टव्या राजपूजिता लोकाः ॥ यद्यपि न भवंत्यर्थास्तथाप्यनर्था विनश्यंति ॥ १०९ ॥ अत्यासन्ना विनाशाय दूरतश्चाफलप्रदाः ॥ मध्यभावेन सेव्यंते राजा वह्निगुरुस्त्रियः॥११०॥आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुष्यं विद्याविहीनमकुलीनमसंगतं वा॥प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च यः पार्श्वतो भवति तं परिवेष्टयंति ॥१११॥ यस्मिन्नेवाधिकं चक्षुरारोपयति पार्थिवः ॥ कुलीनो वाऽकुलीनो वा स श्रियो भाजनं भवेत् ॥ ११२ ॥ धवलान्यातपत्राणि वाजिनश्च मनोरमाः ॥ सदा मत्ताश्च मातंगाः प्रसन्ने सति भूपतौ ॥ ११३ ॥ राजमातरि देव्यां च कुमारे मुख्यमंत्रिणि ॥ पुरोहिते प्रतीहारे समं वर्तेत राजवत् ॥ ११४ ॥ यत्राहवेषु युद्ध्यंते स्वाम्यर्थमपराङ्मुखाः ॥ विकटैरायुधैर्यांति ते स्वर्गं योगिनो यथा ॥ ११५ ॥ पदानि क्रतुभिस्तुल्यान्याहवेष्वनिवर्त्तिनाम् ॥ राजा सुकृतमादत्ते हतानां विपलायिनाम् ॥११६॥ तत्राहं वादिनं क्लीबं निहंति परसंगतम् ॥ न हन्याद्विनिवृत्तञ्च युद्धे प्रक्षीणतां गतम् ॥ ११७ ॥ द्विजा अपि न गच्छंति यां गतिं नैव योगिनः ॥ स्वाम्यर्थं संत्यजन्प्राणांस्तां गतिं यांति सेवकाः॥११८॥ राजा तुष्टो हि भृत्यानां मानमात्रं प्रयच्छति ॥ तेऽपि संमानमात्रेण प्राणैः प्रत्युपकुर्वते ॥ ११९ ॥ सारासारपरिवेत्ता स्वामी भृत्यस्य दुर्लभः ॥ अनुकूलः शुचिर्दक्षः प्राणैर्भृत्योऽपि दुर्लभः ॥१२०॥ अतितेजस्व्यपि नृपः पानासक्तो न साधयत्यर्थान्॥ तृणमपि दग्धुमशक्तो वडवाग्निः पिबन्नब्धिम्॥१२१॥पानमक्षास्तथा नार्यो मृगया गीतवादिके॥एतानि युक्त्या सेवेत प्रसंगो ह्यत्र दोषवान् ॥ १२२ ॥

नृपः कामासक्तो गणयति न कार्यं न च हितं यथेष्टं स्वच्छं-दश्चरति किल मत्तो गज इव ॥ ततो मानाध्मातः पतति तु यदा शोकगहने तदामात्ये दोषान् क्षिपति न निजं वेत्त्यविनयम् ॥१२३॥गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यजातं परिणतिरवधार्या यत्नतः पंडितेन ॥ अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्तेर्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥ १२४ ॥ आयाच्चतुर्थभागेन व्ययकर्म प्रवर्त्तयेत् ॥ प्रभूततैलदीपो हि चिरं भद्राणि पश्यति ॥ १२५ ॥ अर्थानामर्जनं कार्यं वर्द्धनं रक्षणं तथा ॥ भक्ष्यमाणो निरायैश्च सुमेरुरपि हीयते ॥ १२६ ॥पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥ धर्माय यशसेऽर्थाय आत्मने स्वजनाय चेति ॥ १२७ ॥ कर्मणा मनसा वाचा चक्षुषा च चतुर्विधम् ॥ प्रसादयति लोकं यस्तं लोकोऽनुप्रसीदति ॥ १२८ ॥ संभोजनं संकथनं संप्रश्नोऽथ समागमः ॥ ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन ॥ १२९ ॥ संहतिः श्रेयसी राजन्विगुणेष्वापि बंधुषु ॥ तुषेणापि परित्यक्ता न प्ररोहंति तंडुलाः ॥ १३० ॥ मृदोः परिभवो नित्यं वैरं तीक्ष्णस्य नित्यशः ॥ उत्सृज्य तद्द्वयं तस्मान्मध्यां वृत्तिं समाश्रयेत् ॥ १३१ ॥ अबुद्धिमाश्रितानां च क्षंतव्यमपराधिनाम् ॥ न हि सर्वत्र पांडित्यं सुलभं पुरुषे क्वचित् ॥ १३२ ॥ तेजस्विनि क्षमोपेते नातिकर्कशमाचरेत् ॥ अतिनिर्मथनादग्निश्चंदनादपि जायते ॥ १३३ ॥ किमप्यसाध्यं महतां सिद्धिमेति लघीयसा ॥ प्रदीपो भूमिगेहान्तर्ध्वांतं हंति न भानुमान् ॥ १३४ ॥ अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते ॥ छेत्तुमप्यागते छायां नोपसंहरते द्रुमः ॥ १३५ ॥ हंतुमेवोपसरति मृगेंद्रः संकुचन्नपि ॥ बुद्धिमन्तः सहंते च निधाय हृदि किंचन ॥ १३६ ॥ व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवंति मायाविषु ये न मायिनः ॥ प्रविश्य हि घ्नंति शठा-

स्तथाविधा न संवृतांगान्निशिता इवेषवः ॥ १३७ ॥ कोऽहं कौ देशकालौ समविषमगुणाः केऽरयः के सहायाः का शक्तिः कोऽभ्युपायः फलमिह च कियत्कीदृशी दैवसंपत् ॥ संपत्तौ को निबंधः अविदितवचनस्योत्तरं किं नु मे स्यादित्येवं कार्यसिद्धाववहितमनसां सम्पदो हस्तसंस्थाः ॥ १३८ ॥ धर्मः प्रागेव चिंत्यः सचिवगतमती सर्वदालोचनीये प्रच्छाद्यौ रागरोषौ मृदुकठिनरसौ योजनीयौ च काले ॥ ज्ञेयं लोकानुवृत्तं वरचरनयनैर्मण्डलं वीक्षणीयमात्मा यत्नेन रक्ष्यो रणशिरसि पुनः सोऽपि नापेक्षणीयः ॥ १३९ ॥ क्रतौ विवाहे व्यसने रिपुक्षये यशस्करे कर्मणि मित्रसंग्रहे ॥ प्रियासु नारीष्वधनेषु बंधुषु धनव्ययस्तेषु न गण्यते बुधैः ॥ १४० ॥ स्वाम्यमात्यश्च राज्यञ्च कोशं दुर्गं बलं सुहृत् ॥ एतावदुच्यते राज्यं सत्वबुद्धिव्यपाश्रयम् ॥ १४१ ॥ संधिविग्रहयानानि संस्थातिः संश्रयस्तथा ॥ द्वैधीभावश्च भूपानां षड्गुणाः परिकीर्तिताः ॥ १४२ ॥ उत्साहस्य प्रभोर्मंत्रस्यैवं शक्तित्रयं जगुः ॥ आत्मनः सुहृदश्चैव तन्मित्रस्योदयास्त्रयः ॥ १४३ ॥ सामदानभेददंडा इत्युपायचतुष्टयम् ॥ हस्त्यश्वरथपादाताः सेनांगं स्याच्चतुष्टयम् ॥ १४४ ॥ दुष्टाविनीतशत्रूणां भयकृद्दंधुसन्निभम् ॥ शस्त्रधारणमौजस्यं रक्षोविद्युद्ग्रहापहम् ॥ १४५ ॥ वर्षानिलरजोधर्महिमादीनां निवारणम् ॥ राज्यलक्ष्मीगृहं वर्ण्यं चक्षुष्यं छत्रधारणम् ॥ १४६ ॥ चामरं श्रीकरं दिव्यं राज्यशोभाकरं परम् ॥ सिंहासनं सुखैश्वर्यकरं लोकानुरंजनम् ॥ १४७ ॥ सुमनोंबररत्नानां धारणं दिव्यरूपकृत् ॥ पापालक्ष्मीप्रशमनं चंदनाद्यनुलेपनम् ॥ १४८ ॥ स्नानं नाम मनःप्रसादजननं दुःस्वप्नविध्वंसनं शौचस्यायतनं मलप्रकृपणं संवर्द्धनं तेजसाम् ॥ रूपोद्योतकरं मदप्रशमनं कामस्य चाप्यायनं नारीणां च मनोहरं श्रमहरं स्नाने दशैते गुणाः ॥ १४९ ॥

तांबूलं मुखरोगनाशनिपुणं संवर्द्धनं तेजसो नित्यं जाठरवह्निवृद्धि-जननं दुर्गंधदोषापहम् ॥ वक्त्रालंकरणं प्रहर्षजननं वृद्धनृ-पाग्रे रणे कामस्यायतनं समुद्भवकरं लक्ष्म्याः सुखस्यास्प-दम् ॥ १५० ॥ देवतातिथिविप्राणां पूजनं पापनाशनम् ॥ लोकद्वयेऽपि सुखकृद्दानधर्मयशस्करम् ॥ १५१ ॥ सुतभृत्यसुहृद्वै-रिस्वामिसद्गुरुदैवते ॥ एकैकोत्तरतो वृद्ध्या श्रीशब्दा यत्र मूर्द्धनि ॥१५२॥ अनुगंतुं सतां वर्त्म कृत्स्नं यदि न शक्यते ॥ स्वल्पमप्य-नुगंतव्यं मार्गस्थो नावसीदति ॥ १५३ ॥ प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्च-रितमात्मनः ॥ किन्नु मे पशुभिस्तुल्यं किन्नु सत्पुरुषैरिति॥१५४॥ सद्भिरेव सहासीत सद्भिः कुर्वीत संगतिम् ॥ सद्भिर्विवादं मैत्रीं च ना-सद्भिः किंचिदाचरेत् ॥१५५॥ न द्विषंति न याचंते परनिंदां न कु-र्वते ॥ अनाहूता न गच्छंति तेनाश्मानो हि देवताः ॥ १५६ ॥पठ-तो नास्ति मूर्खत्वं जपतो नास्ति पातकम्॥मौनिनः कलहो नास्ति न भयं चास्ति जाग्रतः॥ १५७॥ गतेऽपि वयसि ग्राह्या विद्या सर्वा-त्मना बुधैः॥यद्यपि स्यान्न फलदा सुलभा साऽन्यजन्मनि ॥१५८॥ यदीच्छसि वशीकर्त्तुं जगदेकेन कर्मणा ॥ परापवादसस्येभ्यो गां चरंतीं निवारय ॥१५९॥ वाङ्माधुर्याद्याति लोके प्रियत्वं वाक्पा-रुष्याद्याति लोकेऽप्रियत्वम ॥ किं तद्द्रव्यं कोकिलेनोपनीतं को वा लोके गर्द्दभस्यापराधः ॥ १६० ॥ यस्य चाप्रियमन्विच्छेत्तस्य कुर्यात्सदा प्रियम् ॥ व्याधा मृगवधं कर्त्तुं गीतं गायंति सुस्वरम् ॥ १६१ ॥ प्रहरिष्यन्प्रियं ब्रूयात्प्रहृत्यापि प्रियोत्तरम् ॥ अपि चा-स्य शिरश्छित्त्वा रुद्याच्छोचेत्तथापि च ॥ १६२ ॥ नालसाः प्राप्नु-वन्त्यर्थान्न शठा न च मायिनः ॥ न च लोकरवाद्भीता न च शश्व-त्प्रतीक्षिणः ॥ १६३॥ उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवं प्रमाण-मिति कापुरुषा वदन्ति ॥ दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मयोगं यत्ने

कृतेऽपि न हि सिध्यति कोऽत्र दोषः ॥ १६४॥ उद्यमेनैव सिध्यंति कार्याणि न मनोरथैः ॥ न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशंति मुखे मृगाः ॥ १६५ ॥ उत्थाय हृदि लीयंते ह्यलसानां मनोरथाः ॥ बालवैधव्यदग्धानां कुलस्त्रीणां कुचा इव ॥ १६६ ॥ नोदन्वानर्थितामेति न चांभोऽपि प्रपूर्य्यते ॥ आत्मा तु पात्रतां नेयः पात्रमायाति संपदः ॥ १६७ ॥ विद्यते न स हि कश्चिदुपायः सर्वलोकपरितोषकरो यः ॥ सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः ॥ १६८ ॥ काकतालीययोगेन यदनात्मवति क्षणम् ॥ करोति प्रणयं लक्ष्मीस्तदस्यास्स्त्रीत्वचापलम् ॥ १६९ ॥ यो यमर्थं प्रार्थयते तदर्थं घटते च यः॥अवश्यं तदवाप्नोति न चेच्छान्तो निवर्त्तते ॥ १७० ॥ मित्रस्वजनबन्धूनां बुद्धेर्धैर्यस्य चात्मनः ॥ आपन्निकषपाषाणे नरो जानाति सारताम् ॥ १७१ ॥ दुःस्थैरपि निजैरेव प्रावृतं शोभतेऽखिलम् ॥ जीर्णाबरेणापि वृतं हट्टे कार्प्पटमर्हति ॥ १७२ ॥ चिंतनीया हि विपदामादावेव प्रतिक्रिया। न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे ॥ १७३ ॥ वरं दारिद्र्यमन्यायप्रभवाद्विभवादिह ॥ कृशताभिमता देहे पीनता न तु शोफतः ॥ १७४ ॥ गावो दूरप्रचारेण हिरण्यं लाभलिप्सया ॥ स्त्री विनश्यति रूपेण ब्राह्मणो राजसेवया ॥ १७५ ॥ अतिदानाद्बलिर्बद्धो नष्टो मानात्सुयोधनः ॥ विनष्टो रावणो लौल्यादति सर्वत्र वर्जयेत् ॥ १७६ ॥ हास्येन यादवा नष्टा हास्येनैव च कौरवाः ॥ हास्येन रावणो नष्टस्तस्माद्धास्यं विवर्जयेत् ॥ १७७ ॥ धनमस्तीह वाणिज्ये किञ्चित्तत्कर्षणेऽपि च ॥ सेवया किञ्चिदस्तीह भिक्षायां नैव किंचन ॥१७८॥ स्पृशन्नपि गजो हंति जिघ्रन्नपि भुजंगमः ॥ हसन्नपि नृपो हन्ति मानयन्नपि दुर्जनः ॥ १७९ ॥ जानन्ति पशवो गंधाद्वेदाज्जानंति वाडवाः ॥ चाराज्जानंति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे ज-

नाः ॥ १८० ॥ सपक्षो लभते काको वृक्षस्य विविधं फलम् ॥ पक्षहीनो मृगेन्द्रोऽपि भूमिसंस्थो निरीक्षते ॥ १८१ ॥ सपक्षो लभते लक्ष्यं गुणमुक्तोऽपि मार्गणः ॥ न लक्ष्यं हि विपक्षश्चेद्गुणैरापूर्य्यते यदि ॥ १८२ ॥ युक्तियुक्तं प्रगृह्णीयाद्बालादपि विचक्षणः ॥ रवेरविषये वस्तु किन्न दीपः प्रकाशयेत् ॥ १८३ ॥ कठिनं वा मधुरं वा प्रस्तुतवचनं मनोहारि ॥ वामे गर्दभनादश्चित्तप्रीत्यै प्रयाणेषु ॥ १८४ ॥ समयप्रोक्ता वाणी गुणगणरहिताऽपि शोभते पुंसाम् ॥ रतिसमये रमणीनां भूषाहानिस्तु भूषणं भवति ॥ १८५ ॥ वृथा वृष्टिं समुद्रेषु वृथा तृप्तस्य भोजनम् ॥ वृथा दानं धनाढ्यस्य वृथा षंढे विभूषणम् ॥ १८६ ॥ अजायुद्धमृषिश्राद्धं प्रभाते मेघडंबरम् ॥ दंपत्योः कलहश्चैव परिणामे न किंचन ॥ १८७ ॥ सप्तैतानि न पूर्य्यंते पूर्य्यमाणान्यपि क्वचित् ॥ ब्राह्मणोऽग्निर्यमो राजा समुद्रमुदरं गृहम् ॥ १८८ ॥ वस्त्रं गां च बहुक्षीरां जलपात्रमुपानहौ ॥ औषधं बीजमाहारं संक्रीणीत यथासुयात् ॥ १८९ ॥ अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ॥ मानं चैवापमानञ्च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥ १९० ॥ अवृत्तिकं त्यजेद्देशं वृत्तिं सोपद्रवां त्यजेत् ॥ त्यजेन्मायाविनं मित्रं धनं प्राणहरं त्यजेत् ॥ १९१ ॥ सौहृदेन परित्यक्तं निस्स्नेहं खलवत्त्यजेत् ॥ सोदरं भ्रातरमपि किमुतान्यं पृथग्जनम् ॥ १९२ ॥ यन्निमित्तं भवेल्लोके त्रासो वा दुःखमेव वा ॥ आयासो वा यतो मूलं तदेकांगमपि त्यजेत् ॥ १९३ ॥ त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ॥ ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ १९४ ॥ चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन पंडितः ॥ नासमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ॥ १९५ ॥ न गणस्याग्रतो गच्छेत्सिद्धे कार्ये समं फलम् ॥ यदि कार्यविपत्तिः स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते ॥ १९६ ॥

पंच यत्र न विद्यंते न तत्र दिवसं वसेत् ॥ धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पंचमः ॥ १९७ ॥ अनायके न वस्तव्यं न वसेद्बहुनायके ॥ आत्मनः शांतिमन्विच्छन्न वसेद्बालनायके ॥ १९८ ॥ गुरुलाघवमर्थानां प्रारंभे कर्मणां फलम् ॥ यथावद्यो न जानाति स बालः प्रोच्यते बुधैः ॥ १९९ ॥ जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्काराच्च द्विजो भवेत् ॥ वेदाभ्यासाच्च विप्रः स्यात्त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते ॥२००॥ सर्वे यत्र विनेतारः सर्वे पंडितमानिनः ॥ सर्वे महत्त्वमिच्छंति तद्वृंदमवसीदति ॥ २०१ ॥ नहीदृशं च संवलं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ दया मैत्री च भूतेषु दानं च मधुरा च वाक्॥२०२॥विवादो धनसंबंधो याचनं स्त्रीषु संगतिः ॥ आदानमग्रतः स्थानं मैत्रीभंगस्य हेतवः ॥ २०३ ॥ बालसखित्वमकारणहास्यं स्त्रीषु विवादमसज्जनसंगम् ॥गर्दभयानमसंस्कृतवाचं विजहि पंडितॉल्लघुताहेतून् ॥ २०४॥ दर्शितानि कलत्राणि गृहे सुप्तमशंकितम्॥कथितानि रहस्यानि सौहृदं किमतः परम् ॥२०५॥ न मातरि न दायादे न सोदर्येषु बंधुषु ॥ विश्रंभस्तादृशः पुंसां यादृङ्मित्रे निरंतरम् ॥ २०६ ॥ शोकदुःखारातित्राणं प्रीतिविश्रंभभाजनम् ॥ केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ॥ २०७ ॥ दुःखेन श्लिष्यते भिन्नं श्लिष्टं दुःखेन भिद्यते ॥ मित्रश्लिष्टा तु या प्रीतिः सा दुःखैकप्रदायिनी ॥ २०८ ॥ ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलम् ॥ तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥२०९॥ चिबुके यस्य रोमाणि न वक्षसि न गंडयोः ॥ तेन मैत्री न कर्त्तव्या यदि निर्मानुषं जगत् ॥ २१० ॥ सरलयोः सखिसख्यमुदाहृतं तरलयोर्घटनैव न जायते ॥ यदि भवेत्तरले सरलेन वा न चिरमस्ति धनुःशरयोरिव ॥ २११ ॥ दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रथितं यशः ॥ विद्यायामर्थलाभे वा त-

स्य जन्म निरर्थकम् ॥ २१२ ॥ परोपकारशून्यस्य धिङ्मनुष्यस्य जीवितम् ॥ जीवंति पशवो येषां चर्माप्युपकरिष्यति ॥ २१३ ॥ यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितैर्मनुष्यैर्विज्ञानविक्रमयशोभिरभग्नमानम्॥ तन्नामजीवनफलं प्रवदंति संतः काकोऽपि जीवति चिरं बलिमेव भुंक्ते ॥ २१४ ॥ अधिकारपदं प्राप्य नोपकारं करोति यः ॥ अकारस्तत्र लुप्येत ककस्य द्वित्वं प्रजायते ॥ २१५ ॥ किं तेन जातु जातेन मातुर्यौवनहारिणा ॥ आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रं ध्वजो यथा ॥ २१६ ॥ अजातमृतमूढेभ्यो मृतोऽजातः सुतौ वरम् ॥ यतस्तौ स्वल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत् ॥ २१७ ॥ न पुत्रः पितरं द्वेष्टि स्वभावात्स्वस्य रेतसः ॥ ब्राह्मणानां हि विद्वेषी जायतेऽन्यस्य रेतसः ॥ २१८ ॥ यस्सुतः पितरं द्वेष्टि तं विद्यादन्यरेतसः ॥ यस्तु नारायणं द्वेष्टि तं विद्यादन्यरेतसः ॥२१९॥ किं कुलेन विशालेन शीलमेवात्र कारणम् ॥ कृमयः किं न जायंते कुसुमेषु सुगंधिषु ॥ २२० ॥ न पुत्रत्वेन पूज्यंते गुणैरासाद्यते पदम् ॥ रवेर्व्यापारमादत्ते प्रदीपो न पुनः शशी ॥ २२१ ॥ अधमा मातुलैः ख्याताः श्वशुराच्चाधमाधमाः ॥ उत्तमा आत्मना ख्याताः पित्रा ख्यातास्तु मध्यमाः ॥ २२२ ॥ ज्येष्ठो भ्राता पितृसमो मृते पितरि सर्वदा ॥ सर्वेषां वृत्तिदाता स्यात्स ह्येतान्परिपालयेत् ॥ २२३ ॥ कनिष्ठास्तं नमस्येरन्सर्वे छंदानुवर्तिनः ॥ तमेव पुत्रा जीव्येरन्यथैव पितरं तथा ॥ २२४ ॥ विभागे च समानास्ते पितुर्द्रव्यस्य केवलम् ॥ लयोः पूर्वतरो यस्तु गुरुः स हि निगद्यते ॥ २२५ ॥ ऋणशेषश्चाग्निशेषः शत्रुशेषस्तथैव च ॥ पुनः पुनः प्रवर्धेत तस्माच्छेषं न रक्षयेत् ॥२२६॥ कुभोज्येन दिनं नष्टं कुकलत्रेण शर्वरी ॥ कुपुत्रेण कुलं नष्टं तन्नष्टं यन्न दीयते ॥ २२७ ॥ चतुरः सृजताः पूर्वमुपायांस्तेन वेधसा॥न सृष्टः पंचमः कोऽपि गृह्यं-

ते येन योपितः ॥२२८॥ स्त्रियस्तु यः कामयते सन्निकर्षं च गच्छ-
ति ॥ ईपत्प्रकुरुते सेवां तं तमिच्छंति योपितः ॥ २२९ ॥ यदैव
भर्त्ता जानीयान्मंत्रमूलपरां स्त्रियम् ॥ उद्विजेत तदैवास्याः सर्पाद्वे-
श्मगतादिव ॥ २३० ॥ जल्पंति सार्द्धमन्येन पश्यंत्यन्यं सविभ्रम-
म् ॥ हृदये चिंतयन्त्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः ॥ २३१ ॥ नाग्नि-
स्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ॥ नांतकः सर्वभूतानां न
पुंसां वामलोचना ॥ २३२ ॥ स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति
प्रार्थयिता नरः ॥ तेन नारद नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥ २३३ ॥
सुवेपं पुरुपं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम् ॥ योनिः क्लिद्यति नारीणां
सत्यं सत्यं हि नारद ॥२३४॥ सा भार्या या प्रियं ब्रूते स पुत्रो यत्र
निर्वृतिः ॥ तन्मित्रं यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीविका ॥ २३५ ॥
लक्ष्म्या परिपूर्णोऽहं न भयं ते मोहनिद्रैपा ॥ परिपूर्णस्यैवेंदोर्भवति
भयं सिंहिकासूनोः ॥२३६॥ अतिपरिचयादवज्ञा संततगमनादनाद-
रो भवति ॥ लोकः प्रयागवासी कूपे स्नानं समाचरति ॥ मलये
भिल्लपुरंध्रिश्चंदनतरुमिंधनं कुरुते ॥ २३७ ॥ इति वा ॥ सन्निकर्षो
मनुष्याणामनादरणकारणम् ॥ गांगं हित्वा यथान्यांभस्तत्रत्यो
याति शुद्धये ॥ २३८॥ व्रजत्यधः प्रयात्युच्चैर्नरःस्वैरेव चेष्टितैः ॥
अधः कूपस्य खनक ऊर्ध्वं प्रासादकारकः॥ २३९ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते
पुरुषस्त्यजेन्निद्रामतंद्रितः॥ नरं प्रातः प्रबुद्धं हि श्रयति श्रीर्गुणाश्रया
॥२४०॥नोत्तरस्यां प्रतीच्यां च कुर्वीत शयने शिरः॥शय्याविपर्यया
द्गर्भो दितेः शक्रेण दारितः॥ २४१ ॥ न कुर्यात्परदारेच्छां विश्वासं
स्त्रीषु वर्जयेत्॥हतो दशास्यः सीतार्थे हतः पत्न्या विदूरथः॥२४२॥
न मद्यव्यसनक्षीवः कुर्याद्वार्त्तादिविप्लवम् ॥ वृष्णयो हि ययुः क्षीवा-
स्तृणप्रहरणैः क्षयम्॥ २४३॥ दानं न त्वाश्रिते दद्यान्न पश्चात्ताप
वान्भवेत् ॥ बलिनात्मार्पितो बंधे दानशेपस्य शुद्धये ॥ २४४ ॥

ब्राह्मणान्नावमन्येत ब्रह्मशापोऽतिदुःसहः ॥ तक्षकाग्नौ गतः कोपा-
द्ब्राह्मणस्याभिमन्युजः ॥ २४५॥ दंभारंभोद्यतं कर्म नाचरेदिह नि-
ष्फलम् ॥ ब्राह्मणादंभलब्धास्त्रविद्या कर्णस्य निष्फला ॥ २४६ ॥
न स्त्रीजितः प्रमूढः स्याद्गाढरागवशीकृतः ॥ पुत्रशोकाद्दशरथो जीवं
जायाजितोऽत्यजत् ॥ २४७ ॥ क्षिपेद्वाक्यशरान्घोरान्न पारुष्य-
विषप्लुतान् ॥ वाक्पारुष्यरुषा चक्रे भीमः कुरुकुलक्षयम् ॥ २४८॥
परेषां क्लेशदं कुर्यान्नपैशुन्यं प्रभुप्रियम् ॥ पैशुन्येन गतौ राहोश्चं-
द्रार्कौ भक्षणीयताम् ॥ २४९ ॥ कुर्यान्नीचजनाभ्यस्तां न याच्ञां
मानहारिणीम् ॥ बलेः प्रार्थनया प्राप लघुतां पुरुषोत्तमः ॥२५०॥
क्रूरैः क्रूरतरैर्लुब्धैर्न कुर्यात्प्रीतिसंगतिम् ॥ वसिष्ठस्याऽहरद्धेनुं
विश्वामित्रो निमंत्रितः ॥ २५१ ॥ तीव्रे तपसि लीनानामिन्द्रियाणां
न विश्वसेत् ॥ विश्वामित्रोऽपि सोत्कंठो मेनकावशमागतः ॥ २५२ ॥
भक्तं रक्तं सदासक्तं निर्दोषं न परित्यजेत्॥रामस्त्यक्त्वा सतीं सीतां
शोकशल्याकुलोऽभवत् ॥२५३॥न क्रोधात्तु विधानस्य भीमाच्छिक्षे
द्विधेयताम् ॥ निपीतभ्रातृरुधिरः प्रपानिंदां वृकोदरः ॥ २५४ ॥
वर्जयेदिंद्रियजये निर्जने जननीमपि॥ पुत्रीकृतोऽपि प्रद्युम्नः कामितः
शंबरस्त्रिया ॥ २५५ ॥ प्रभुप्रसादे विश्वासं न कुर्यात्स्वप्नसंनिभे॥
नंदेन मंत्री निक्षिप्तः शकटो लोहबंधने ॥ २५६॥ न लोकायतवादेन
नास्तिकः स्याददैवतः ॥ हरिर्हिरण्यकशिपुं जघान स्तंभनिर्गतः
॥ २५७ ॥ अत्युन्नतपदारूढः पूज्यान्नैवापमानयेत् ॥ नहुषः शक्र-
तां प्राप्य च्युतोऽगस्त्यापमानतः ॥२५८॥ हितोपदेशं शृणुयात्कु-
र्वीत च यथोदितम् ॥ विदुरोक्तमकृत्वाभूत्कौरवः शोकभाजनः
॥ २५९ ॥ न पुत्रायत्तमैश्वर्यं कुर्यादार्यः कथंचन ॥ पुत्रार्पितप्रभु-
त्वेन धृतराष्ट्रस्तृणोपमः॥२६०॥ श्रुतिस्मृत्युक्तमाचारं न त्यजेत्सा-
धुसेवितम्॥दैत्यानां श्रीवियोगोऽभूत्सत्यधर्मक्रियामुचाम् ॥२६१॥

नदीनां च नखीनां च शृंगिणां शस्त्रपाणिनाम् ॥ विश्वासो नैव कर्त-
व्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥ २६२ ॥ न कुर्यादभिचारेच्छां वश्या-
दिकुहककियाम् ॥ लक्ष्मणेनेंद्रजित्कृत्याभिचारसमये हतः
॥ २६३ ॥ व्याकुलेऽपि महोत्पातैः स्मरेद्विष्णुं सदा हृदि ॥ शरत-
ल्पगतो भीष्मः सस्मार गरुडध्वजम् ॥ २६४ ॥ संदेहो वैष्णवे मा-
र्गे न कार्योऽन्यैः कुदर्शनैः ॥ रामप्रभावमद्यापि पाथोधौ पश्य से-
तुताम् ॥ २६५ ॥ अध्वा जरा मनुष्याणामनध्वा वाजिनां जरा ॥
असंभोगो जरा स्त्रीणां मालिन्यं वसनज्वरा ॥ २६६ ॥ अविधेयो
भृत्यजनः शठानि चित्राण्यदायकः स्वामी॥अविनयवती च भार्या
मस्तकशूलानि चत्वारि ॥ २६७ ॥ दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्य-
ति यतिः संगात्सुतो लालनाद्विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनया-
च्छीलं खलोपासनात् ॥ मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्स्नेहः प्रवा-
साश्रयाद्धीर्धर्मोह्यनवेक्षणादपि कृषिस्त्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥२६८॥
कोऽर्थान्प्राप्य न गर्वितो विषयिणः कस्यापदोऽस्तंगताः स्त्रीभिः
कस्य न खंडितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः ॥ कः कालस्य
न गोचरांतरगतः कोर्थी गतो गौरवं को वा दुर्जनवागुरानिपतितः
क्षेमेण जातः पुमान् ॥ २६९ ॥ क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्त्वचिंता सर्पे
क्षांतिः स्त्रीषु कामोपशांतिः ॥ काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं राजा
मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ॥ २७० ॥ मांसं मृगाणां दशनं गजानां
मृगद्विषां चर्म फलं द्रुमाणाम् ॥ स्त्रीणां हि रूपञ्च नृणां हिरण्यमेते
गुणा वैरिकरा भवन्ति ॥ २७१ ॥ स्तब्धस्य नश्यति यशो वि-
षमस्य मैत्री नष्टक्रियस्य कुलमर्थपरस्य धर्मः ॥ विद्याफलं व्यस-
निनः कृपणस्य सौख्यं राज्यं प्रमत्तसचिवस्य नराधिपस्य॥२७२॥
शाठ्येन मित्रं कपटेन धर्मः परोपतापेन समृद्धिभावम् ॥ सुखे सु
विद्यां पुरुषेण नारीं वांछंति ये व्यक्तमपंडितास्ते ॥ २७३ ॥ धातु

याते च वित्ताशा मोक्षाशा कौलिके मते ॥ जामातरि च पुत्राशा त्रयमेतन्निरर्थकम् ॥ २७४ ॥ राजा घृणी ब्राह्मणः सर्वभक्षी स्त्री चावश्या दुष्टबुद्धिः सहायः ॥ प्रेष्यः प्रतीपोऽधिकृतः प्रमादी त्याज्या इमे यश्च कृतं न वेत्ति ॥ २७५ ॥ वैद्यं पानरतं नरं कुपठितं स्वाध्यायहीनं द्विजं युद्धे कापुरुषं हयं गतरयं मूर्खं परिव्राजकम् ॥ राज्यं बालनृपं च मंत्ररहितं मित्रं छलान्वेषि यद्भार्यां यौवनगर्वितां पररतां मुञ्चंति ये पंडिताः ॥ २७६ ॥ वृक्षं क्षीणफलं त्यजंति विहगाः शुष्कं सरः सारसा निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजंति गणिका भ्रष्टं नृपं मंत्रिणः ॥ पुष्पं पर्युषितं त्यजंति मधुपा दग्धं वनांतं मृगाः सर्वः कार्यवशाज्जनोऽभिरमते कः कस्य वा वल्लभः ॥ २७७ ॥ त्यजति भयमकृतपापं मित्रं च शठः प्रमादिनं विद्या ॥ ह्रीः कामिनमलसं श्रीः क्रूरं स्त्री दुर्जनं लोकः ॥ २७८ ॥ द्वाविमौ पुरुषौ लोके सुखिनौ न कदाचन ॥ यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ॥ २७९ ॥ द्वाविमौ पुरुषौ लोके स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ॥ प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रतापवान् ॥ २८० ॥ द्वाविमौ पुरुषौ लोके न भूतौ न भविष्यतः ॥ प्रार्थितो यश्च कुरुते यश्च नार्थयते नरम् ॥ २८१ ॥ द्वाविमौ पुरुषौ लोके शिरःशूलकरौ परौ॥गृहस्थो यो निरारंभो यतिश्च सपरिग्रहः ॥ २८२॥ द्वाविमावंभसि क्षेप्यौ गाढं वद्धा गले शिलाम् ॥ धनिनं चाप्रदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ॥ २८३ ॥ संतश्चेदमृतेन किं यदि खलः सत्कालकूटेन किं दातारो यदि कल्पशाखिभिरलं यद्यर्थिनः किं तृणैः ॥ किं कर्पूरशलाकया यदि दृशोः पंथानमेति प्रियः संसारेऽपि सतींद्रजालमपरं यद्यस्ति तेनापि किम् ॥ २८४ ॥ लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किम्पातकैः सत्यं चेत्तपसाऽपि किं शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ॥ सौजन्यं यदि किं गुणैः

स्वमहिमा यद्यस्ति किं मंडनैः सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्य-
स्ति किं मृत्युना ॥ २८५ ॥ मित्रं स्वच्छतया रिपुं नयबलैर्लुब्धं
धनैरीश्वरं कार्येण द्विजमादरेण युवतीं प्रेम्णाऽतितीव्रं स्तवैः ॥
बंधुं क्षांततया गुरुं प्रणतिभिर्मूर्खं कथाभिर्बुधं विद्याभी रसिकं रसेन
सकलं शीलेन कुर्याद्वशम् ॥ २८६ ॥ वाजी चारुगतिः शशांकध-
वलं छत्रं प्रियाः पृष्ठतः प्रोत्तुंगस्तनमंडला विजयिनो भृत्याः पुरः
पंचपाः ॥ तांबूलं प्रचुरं सखा स चतुरः संपद्यते चेत्पथि प्राड्वुस्त-
त्कटकप्रयाणमितरत्प्राणप्रयाणं बुधाः ॥ २८७ ॥ जवो हि सप्तेः
परमं विभूषणं त्रपाऽङ्गनायाः कृशता तपस्विनः॥द्विजस्य विद्या नृ-
पतेरपि क्षमा पराक्रमः शस्त्रबलोपजीविनाम् ॥ २८८ ॥ वासः शुभ्र-
मृतुर्वसंतसमयः पुष्पं शरन्मालती धानुष्कः कुसुमायुधः परिमलः
कास्तूरिकोऽस्त्रं धनुः ॥ वाणी तर्करसोज्ज्वला प्रियतमा श्यामा
वयो नूतनं मार्गः शांभव एव पञ्चमलया गीतिः कविर्बिह्लणः
॥२८९॥शत्रुर्दहति संयोगे वियोगे मित्रमप्यहो॥उभयोर्दुःखदायित्वं
को भेदः शत्रुमित्रयोरित्यलम् ॥ एवमश्वशास्त्रं गजशास्त्रं शिल्प-
शास्त्रं सूपकरणशास्त्रं चतुःषष्टिकलाशास्त्रं चेतिनानाशास्त्रं शालिहो-
त्रादि नानामुनिभिः प्रणीतं तस्य च सर्वस्य लौकिकतत्तत्प्रयोजन-
भेदो द्रष्टव्यः ॥ एवमष्टादश विद्यास्त्रयीशब्देनोक्तास्तथा सांख्यशा-
स्त्रं भगवता कपिलेन प्रणीतम् ॥ अथ त्रिविधदुःखात्यंतनिवृत्तिर-
त्यंतपुरुषार्थ इति षडध्यायम्।तत्र प्रथमेऽध्याये विषया निरूपिताः।
द्वितीयेऽध्याये प्रधानकार्याणि। तृतीये विषयेभ्यो वैराग्यम्।चतुर्थेऽ-
ध्याये विरक्तानां पिंगलाकुररादीनामाख्यायिका। पंचमे परपक्ष-
निर्जयः।षष्ठे सर्वार्थसंक्षेपः।प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञानं सांख्यशास्त्रप्रयो-
जनम्। तथा योगशास्त्रं भगवता पतंजलिना प्रपंचितमथ योगानु-
शासनमित्यादिपादचतुष्टयात्मकम् ॥ तत्र प्रथमे पादे चित्तवृत्ति-

निरोधात्मकः समाधिरभ्यासवैराग्यरूपश्च तत्साधनं निरूपितम्। द्वितीयेपादे विक्षिप्तचित्तस्य समाधिसिद्ध्यर्थं यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टांगानि निरूपितानि। तृतीयपादे योगविभूतयश्चतुर्थेपादे कैवल्यमिति॥ विजातीयप्रत्ययस्यैव निरोधद्वारेण निदिध्यासनसिद्धिः प्रयोजनम्। तथा पाशुपतं शास्त्रं भगवता पशुपतिना पशुपाशविमोक्षणायाथातः पाशुपतं योगविधिं व्याख्यास्यामइत्यादिपंचाध्यायैर्विवेचितम्॥ तत्राध्यायपंचकेनापि कार्यरूपो जीवः पशुः कारणं पशुपतिरीश्वरो योगः पशुपतौ चित्तसमाधानं विधिर्भस्मना त्रिषवणस्नानादिर्निरूपितो दुःखांतसंज्ञको मोक्षश्च प्रयोजनम् ॥ एत एव कार्यकारणयोगविधिदुःखांता इत्याख्यायंते ॥ एवं वैष्णवं नारदादिभिः कृतं पंचरात्रम् ॥ तत्र वासुदेवसंकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाश्चत्वारः पदार्था निरूपिताः ॥ भगवान्वासुदेवः परमेश्वरः सर्वकारणं तस्मादुत्पद्यते संकर्षणाख्यो जीवस्तस्मान्मनःप्रद्युम्नस्तस्मादनिरुद्धोऽहंकारः सर्वे चैते भगवतो वासुदेवस्यांशभूतास्तदभिन्ना एवेति भगवतो वासुदेवस्य मनोवाक्कायवृत्तिभिरभिध्यानं कृत्वा कृतकृत्यो भवतीति निरूपितम् ॥ एवं वैष्णवं मंत्रशास्त्रमखिलमपि पञ्चरात्रांतर्गतमेव ॥ वामागमन्तु शास्त्रबाह्यमेव ॥ तदेवं दर्शितः प्रस्थानभेदः सर्वेषां संक्षेपेण त्रिविध एव प्रस्थानभेदस्तत्रारंभवाद एकः परिणामवादो द्वितीयः विवर्त्तवादस्तृतीयः पार्थिवाप्यतैजसवायवीयाश्चतुर्विधाः परमाणवो द्व्यणुकादिक्रमेण ब्रह्मांडपर्यंतं जगदारभंतेऽसदेव कार्यं कारणव्यापारादुत्पद्यते इति तार्किकाणां प्रथमः। मीमांसकानां च सत्वरजस्तमोगुणात्मकं प्रधानमेव महदादिक्रमेण जगदाकारेण परिणमते। पूर्वमपि सूक्ष्मरूपेण सदेव कार्यं कारणव्यापारेणाभिव्यज्यते इति द्वितीयः पक्षः। सांख्ययोगपाशुपतानां ब्रह्मणः परिणामो जगदिति

वैष्णवाः। स्वप्रकाशपरमानंदाद्वितीयं ब्रह्म स्वमायावशान्मिथ्यैव जगदाकारेण कल्पते इति तृतीयपक्षो ब्रह्मवादिनां सर्वेषां प्रस्थानकर्तॄणांच। विवर्तवादेच पर्यवसानेनाद्वितीये परमेश्वर एव वेदान्तप्रतिपाद्ये तात्पर्यं न हि ते मुनयो भ्रान्ताः सर्वज्ञत्वात्तेषां किन्तु वहिर्विषय एव प्रवणानामापाततः परमपुरुषार्थे प्रवेशो न संभवतीति नास्तिक्यनिवारणाय तैः प्रस्थानभेदा दर्शितास्तत्र तेषां तात्पर्यमबुद्ध्वा वेदविरुद्धेऽप्यर्थे तेषां तात्पर्यमुत्प्रेक्षमाणास्तत्तन्मतमेवोपादेयत्वेन गृह्णन्तो जना ऋजुकुटिलपथजुषो भवंतीति न सर्वेषामृजुमार्ग एव प्रवेशो न वा पर्यवसानेऽपि परमेश्वरप्राप्तिरंतःकरणशुद्धिवशेन पश्चादृजुमार्गाश्रयणादेव तत्प्राप्तिः। ऋजुमार्गस्तु भागवतधर्माश्रयणमेव सध्रीचीनो ह्ययं पंथा इति श्रीशुकोक्तेः। एष एवहि लोकानां शिवः पंथाः सनातनः॥ यं पूर्वे चानुसंतस्थुर्यत्र देवो जनार्दन इति भागवतोक्तेश्च॥यानास्थाय नरो राजन्न स्खलेन्न पतेदिहेति योगेश्वरोक्तेश्च॥तथा च सर्वेषां मार्गाणां साक्षात्परंपरया वा परमात्मैव यथा ऋजुकुटिलपथजुषां सरितां समुद्र एव गम्य इति। यथा ऋजुपथजुषां गंगानर्मदादीनां साक्षादेव समुद्रो गम्यः कुटिलपथजुषां यमुनासरय्वादीनां गंगाद्वारा समुद्र एव गम्य इति। एवं वेदांतवाक्यश्रवणादिनिष्ठानां साक्षात्त्वंगम्योऽन्येषां तु सांख्यानुयायिनां तार्किकाणां चतुर्विंशतितत्त्वद्रव्यादिसप्तपदार्थविविक्तात्मज्ञानेन मीमांसाधर्म्मशास्त्रेतिहासपुराणानुयायिनां तत्तच्छास्त्रोदितकर्मानुष्ठायिनामन्तःकरणशुद्धिद्वारा कामशास्त्रानुयायिनां तु विषयानुभवविरक्तानां वैराग्यद्वाराऽऽयुर्वेदस्य तु तपोयज्ञार्चनादिष्वारोग्यस्यैव योग्यत्वेन तत्संपादनद्वारा धनुर्वेदस्य निजधर्मत्वात्क्षत्रियाणामंतःकरणशुद्धिद्वारा शिल्पनीत्यादिविद्यानुयायिनामपि यथाकथंचिदंतःशुद्धिद्वारैव शाक्तसौरगाणपतादीनां तु 'तेऽपि मामे-

व कौन्तेय भजन्तेऽविधिपूर्वकम् 'इति गीतोक्तद्वारा परंपरया वैष्णवत्वद्वारेणैव घंटाकर्णादिषु दृष्टत्वात् ॥ वैष्णवानां तु साक्षादेव नंदनंदने परानुरागरूपाद्वैतनिष्ठानां साक्षादेव परमात्मा गम्यस्तथैव प्रह्लादादिषु दृष्टत्वात् ।साहित्यनिष्ठानामप्युज्ज्वलनीलमण्युक्तप्रकारेण परमात्मैव गम्योऽस्तीति ॥ अत एवोक्तं शिवरहस्योक्तमहिम्नाख्यस्तवे पुष्पदन्तेनापि 'त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ॥ रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥' इति कृतं प्रपंचेन ॥ प्रकृतमनुसरामः । मातृकागतवर्णघटितशब्दस्मृत्यैव ब्रह्मणापि सर्वा सृष्टिरुत्पादिता । तदुक्तं मनुस्मृतौ । सर्वेषाञ्च समानानि कर्माणि च पृथक्पृथक् । वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥ इति । अस्यार्थः । स परमात्मा हिरण्यगर्भरूपेणावस्थितः सर्वेषां नामानि गोजातेर्गौरिति अश्वजातेरश्व इति कर्माणि ब्राह्मणस्याध्ययनादीनि क्षत्रियस्य प्रजारक्षादीनि पृथक् पृथक् यस्य पूर्वकल्पे यान्यभूवन् आदौ सृष्ट्यादौ वेदशब्देभ्य एवावगम्य निर्मितवान्।भगवता व्यासेनाऽपि वेदमीमांसायां वेदपूर्वकैव जगत्सृष्टिर्व्युत्पादिता । तथा च शारीरकसूत्रम् । शब्द इति चेन्नातः प्रभवात्प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् । अस्यार्थः । देवानां विग्रहवत्त्वे वैदिके वस्वादिशब्दे देवतावाचिनि विरोधः स्याद्वेदस्यादिमत्त्वप्रसंगादिति चेन्नास्ति विरोधः । कस्मादतः शब्दादेव जगतः प्रभवादुत्पत्तेः । प्रलयकालेऽपि सूक्ष्मरूपेण परमात्मनि वेदराशिः स्थितः स इह कल्पादौ हिरण्यगर्भस्य परमात्मन एवं प्रथमदेहिमूर्त्तमनस्यवस्थांतरमनापन्नः सुप्तप्रबुद्धस्येव प्रादुर्भवति । तेन प्रदीपस्थानीयेन सुरनरतिर्यगादिप्रविभक्तं जगत् अभिधेयभूतं निर्मिमीते । कथमिदं गम्यते प्रत्यक्षानुमानाभ्यां

श्रुतिस्मृतिभ्यामित्यर्थः । प्रत्यक्षं श्रुतिरनपेक्षत्वात् । अनुमानं स्मृतिरनुमीयमानश्रुतिसापेक्षत्वात् । तथा च श्रुतिः । एत इति वै प्रजापतिर्देवानसृजतासृग्रमिति मनुष्यानिंदव इति पितॄंस्तिरः पवित्रमिति ग्रहानाशव इति स्तोत्रं विश्वानीति शस्त्रमिति अतिसौभगेत्यन्याः प्रजा इति तथा स मनसा वाचं मिथुनं समभवदिति।अस्यार्थः। एते असृग्रमिंदवस्तिरः पवित्रमाशवः विश्वान्यभिसौभगेत्येतन्मंत्रस्थपदैर्देवादीन्स्मृत्वा ब्रह्मा ससर्ज तत्रैतच्छब्द इंद्रियाधिष्ठातृदेवस्मारकः असृग्रशब्द असृक्शब्दवाच्यरुधिरप्रधानदेहरमणमनुष्यस्मारकः । इंदुमंडलमध्यवर्त्तिपितृस्मारक इन्दुशब्दः । पवित्रं सोमं स्वमध्ये तिरस्कुर्वतां धारयतां ग्रहाणां तिरःपवित्रशब्दः स्मारकः । ऋचोऽश्नुवतां स्तोत्राणां गानस्वनरूपाणामाशवः शब्दः स्मारकः। विश्वदेवशंसनशस्त्राणां विश्वशब्दः स्मारकः । अभिसौभगेतिशब्दो निरतिशयसौभाग्यवाचकः॥ प्रजानां स्मारक इति सप्रजापतिर्मनसा सह वाचं मिथुनभावं समभवत्समभावयत् । तत्प्रकाशितां सृष्टिं मनसालोचितवानिति यावत् । स्मृतिस्तु सर्वेषां तु सनामानीत्यादिका मन्वादिप्रणीतैव पृथक्संस्थाश्चेति लौकिकीश्चव्यवस्थाः ॥ कुलालस्य घटनिर्माणं कुविंदस्य पटनिर्माणमित्यादिका विभागेन निर्मितवानित्यर्थः । चमत्कारचंद्रिकायां तु पंचभूतग्रहादिसृष्टिरपि मातृकात एवोक्ता पद्यनिर्माणप्रकरणे।तथाहि।वर्णानामुद्भवः पश्चाद्व्यक्तिः संख्या ततः परम् । भूतबीजविचारश्च ततो वर्णग्रहा अपीत्यारभ्य एतत्सर्वमविज्ञाय यदि पद्यंवदेत्कविः ॥ केतकारूढकपिवद्भवेत्कंटकपीडितः॥इति॥कारणात्पञ्चभूतानामुद्भूता मातृका यतः।अतो भूतात्मका वर्णाः पंच पंचविभागतः॥वाय्वग्निभूजलाकाशाः पञ्चाशल्लिपयः क्रमात्।पंच ह्रस्वाः पंच दीर्घा बिंद्वन्ताःसंधयस्तथा॥तत्र स्वरेभ्यःसूर्योयं कवर्गेभ्यस्तुलोहितः।चवर्गप्रभवःकाव्यष्टवर्गाद्बुधसंभवः॥

तवर्गोत्थः सुरगुरुः पवर्गोत्थः शनैश्चरः । यवर्गजोऽयं शीतांशुरिति सप्तग्रहाः क्रमादिति ॥ किंबहुना व्यासादिभिस्तपोयोगबलान्मातृकात एव तत्तच्छास्त्राण्याविर्भावितानि । तदुक्तम् । तपोयोगप्रभावेण चक्रे वेदविभाजनम् । इतिहासपुराणानि व्यासो नारायणः स्वयम् ॥ गौतमं रूपमास्थाय न्यायशास्त्रं जगौ हरिः । मातृकामेव निर्मथ्य काणादश्च विशेषकम् ॥ मातृकामेव निर्मथ्य धृत्वा जैमिनिरूपकम् । व्यरचत्पूर्वमीमांसां सर्वभूतात्मको हरिः ॥ छन्दःशास्त्रं योगशास्त्रं शब्दशास्त्रमथापि वा । पतंजलिर्मुनिर्भूत्वा विचार्य च मुहुर्मुहुः ॥ मातृकामेव व्यवदद्योगमास्थाय नैपुणम् । कापिलं रूपमास्थाय सांख्यं नारायणोऽब्रवीत् ॥ मातृकामेव संवीक्ष्य लोकानां हितकाम्यया । वात्स्यायनेन रूपेण कामशास्त्रं तथा जगौ ॥ बहुना किमिहोक्तेन तत्तद्रूपेण माधवः । तत्तच्छास्त्रं तत्र तत्र प्रादुश्चक्रे युगादिषु ॥ मातृकैव चतुर्वेदी सांगोपांगा समीरिता । मातृकैव पुराणानीतिहासश्चैव मातृका । मातृकातो जगज्जातं मातृकायां प्रलीयते । यावद्वाग्विषयं तावन्मातृकायां स्थितं पुरा ॥ वटबीजाच्च वटवत्प्रादुर्भूतं ततः पुनः । मातृका सर्वकल्पेषु ह्येकैवाविकृता सदा ॥ न किंचिद्वस्तु विकृतिमेति कल्पांतरेषु वै । सूर्याचंद्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ॥ सर्ववस्तुतथात्वे हि श्रुतिरेवोपलक्षणम् ॥ कालिकापुराणेऽपि । पुरा कल्पे यथा वृत्तं प्रतिकल्पं तथैव तु । प्रवर्तंत इति । तथा ब्रह्मवैवर्त्ते प्रथमेंऽशे प्रतिकल्पं कृष्णचरितमेकमेवोततान्यथेति नारदप्रश्ने । प्रतिकल्पं त्वेकमेव चरितं नात्र संशयः इति ब्रह्मण उत्तराच्च मातृकाऽपि सर्वकल्पेष्वेकरूपैव । किञ्चित्कदाचिद्भेदोऽपि भवेत्कल्पांतरे मुन इत्युक्तेर्मातृकाविकारेषु पुराणादिषु किंचिद्भेदोऽपि भवति । मातृका तु ब्रह्मवदविकृतैवेति तत्त्वम् । मातृकावैभवं वक्तुं साकल्येन नहीश्वरः । सहस्रास्योऽपि काऽन्येषां वार्ताऽज्ञानां नृणामिह ॥ कृपाकटाक्षतः

प्रोक्तं गुरूणां किंचिदेव हि। वंशीधरेण विदुषा खण्डपत्तनवासिना॥ गौडकौशिकगोत्रेण शास्त्रतत्त्वविदां मुदे। यद्यत्र स्खलितं किञ्चिद्धीमांद्याद्वा प्रमादतः। मय्यल्पज्ञे कृपां कृत्वा विद्वांसः पूरयन्तु तत्र॥ किं च॥मातृकापाठनादौ हि पाठयंति क्वचिद्बुधाः। ओंनमः सिद्धमित्येतत्तदर्थस्त्वेष ईर्यते॥ ओंकोर्थः। ब्रह्मणे सगुणनिर्गुणमूर्त्तये नमो नतिरस्तु। अत्र इतिपदमध्याहृत्य सिद्धपदेन योज्यम्। इह नम इत्युपलक्षणमर्चनादेरपि। अत्रायं भावः। यदिह लोके सगुणपदवाच्या ये भगवतो गुणावतारलीलावतारादयस्तथा निर्गुणपदवाच्यं यत्सच्चिदानंदाद्वितीयं ब्रह्म तेषां तस्य च यथासंभवं नत्यादयो विचारश्च नृभिः क्रियंते चैतदेव सिद्धं सर्वशास्त्रपरिशीलनेनैतदेव सिद्धांतत्वेन निश्चितमिति। तदुक्तम्। वेदे रामायणे चैव पुराणोपपुराणयोः। भारते धर्मशास्त्रे च पांचरात्रादिषु क्रमात्॥ वर्ण्यते सर्वशास्त्रज्ञैर्ध्येयो नारायणः सदेति॥ तथा। यत्कीर्त्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्। लोकस्य सद्यो विधुनोति किल्बिषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥ इति श्रीमुनींद्रोक्तेः। सर्वे वेदा यत्पदमामनंतीति श्रुत्याऽपि सर्वं वेदसिद्धांतत्वेनैतदेव निर्णीतं स्वयं भगवताऽपि वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य इति वर्णितम्। तथा पृथुचरित्रेऽपि। शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां क्षेमस्य सम्यङ्‌ विमृशेषु हेतुः। असंगमात्मव्यतिरिक्त आत्मनि दृढा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या॥इति सर्वं त्यक्त्वा ब्रह्मण्येव रतिः कार्येति विहितम्। श्रीकपिलदेवेनाप्युक्तम्। एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां निःश्रेयसोदयः। तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरमिति। भक्त्यंगेष्वपि प्रणतेरैहिकामुष्मिकफलदत्वेन मुख्यत्वम्। तदुक्तं भारते। एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः॥ दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवायेति। किञ्च। ओमिति ब्रह्मण्यर्थेऽव्ययं तत्त्वाच्च चतुर्थ्या

लुक् चतुर्थी तु 'नमआदियोगे' इति । 'कर्तृकर्मक्रियादीनां यदि स्थानं न लभ्यते । अध्याहारं तदा कुर्यान्मुख्यार्थप्रतिपत्तये ॥' इत्यनुशासनादित्यलं प्रपञ्चेन ॥ इति श्रीकौशिकगोत्रगौडवंशीधरसंगृहीतो मातृकाविलासाख्यो निबन्धः समाप्तिं पफाण श्रीकृष्णकृपया ॥ श्रीमातृकाविलासाख्या वाक्पुष्पस्रक्समर्पिता । कृष्णकण्ठे स गृह्णातु श्रीवंशीधरशर्मणा ॥ गोश्रुतिनन्दचंद्राब्दे शुचिकृष्णे ज्ञवासरे । समाप्तः सुनिबंधोयं पञ्चम्यां गुर्वनुग्रहात् ॥ श्रीः ॥

---

अथ ग्रन्थान्ते स्मरणपथमागतां स्वकृतिं तावदत्रैव निवेदयामः ।

हारबधोयम्

| | | |
|---|---|---|
| | प २ | |
| तैः | र | द्या |
| | नृ २ | |
| | त २ | |
| रा | ता २ | ह |
| | रिः १ | |
| | र २ | |
| री | स | म्यैः |
| | प २ | |
| | ति २ | |
| र | यो | र्न |
| | हि २ | |
| | नि २ | |
| शा | र | द्रा |
| | व २ | |
| | स २ | |
| वा | रा | र |
| | स २ | |
| | यः २ | |
| य | व | स |
| | श २ | |
| | श २ | |
| पे | री | क |
| | रम् २ | |

मूलश्लोकश्चायम् ।

पद्मानृतैः परनृतं हरिराततारी रम्यैः परो रसपतिर्नहिरंति यो हि॥निद्रावशानिरवसं रसवीसरासं यः संशयंयवशशंकरणेशरीरम् ॥ १ ॥

टीका—एकस्मिन्नवसरे श्रीनारद इंद्रसदसि स्थितं काममिदमाह हे र काम 'रश्चकामे नले वह्न' इति कोशात् । यो हरिः श्रीकृष्णः पद्मायाः श्रीराधाया नृतैर्नर्तनैः समं तुल्यं परेषां गोपीजनानां नृतम् अंति कोर्थःन आतत अमंस्त । इहांति निषेधेऽव्ययम् । तनुधातुश्च ज्ञानेर्थे बोध्यः।'धातवश्चोपसर्गाश्च निपाताश्चेति ते त्रयः । अनेकार्थाः स्मृताः सर्वे पाठास्तेषां निदर्शनाम्॥'इत्युक्तेः।'वैकुंठे या रमा सैव राधा वृंदावने स्मृता' इत्यादिपुराणात् श्रीराधापद्मयोरभेद एव । लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा' इत्यमरः। यादृशं नर्तनं श्रीकृष्णस्य राधायाः प्रियं नान्यासां तादृशं प्रियमिति भावः ॥

किंभूतैः पद्मानृतै रम्यैर्मनोहरैः । किंविशिष्टो हरिः नहिः नह्यंते बध्यंते वाकृतंत्या सर्वे येन स नहिः । णह् बंधने कर्मणि किरौणादिकः । 'तस्य वाक्तंती' इत्यादिश्रुतेः । पुनः परः पिपर्त्ति पालयति लोकान्कामैः पूरयति वेति परः। पृ पालनपूरणयोरतोऽच् । पुनः रसस्य शृंगारादेः पतिर्नाथः पुनः आसमंतादियर्तीत्यारिः सर्वगतः। ऋ गतावतो धातोरिरौणादिकः । च पुनः यो रसस्य शृंगारस्य वासो यस्मिंस्तं रासं रासमंडलमातत व्यस्तारीत् । अत्र चेति शेषः। तनुधातुर्विस्तार एव । किंभूतं परनृतं निद्रावशेन आ ईषत् निरवसं सदोपमप्रियमित्यर्थः । यश्च हरिः यवान् शीलंते धारयंतीति यवशा मुनयस्तदर्थं शरीरमातत धृतवान्।अत्र तनुर्धारणे ज्ञेयः। सप्तमी तु निमित्तोयवोपपदाच्छीलेर्डः प्रत्ययः।मुनीनां कल्याणार्थमेव श्रीकृष्णरूपं धृतवानिति भावः । किंभूतं शरीरं सम्यक् शेरते प्रलये सर्वे लोका यस्मिंस्तत् संशयम् । शेतेरच् ॥ 'यस्मिंश्च प्रलयं यांति' इतिस्मृतेः ॥ १ ॥

अस्य ग्रंथस्य संपाठात्सर्वशास्त्रस्य निश्चितम् ॥
अनायासेन ज्ञायेत ततो ज्ञेयः प्रयत्नतः ॥ १ ॥
अस्य ज्ञानं विना कथं वाच्यो विज्ञोयमिति ।
मातृकार्थापरिज्ञानान्न मानं लभतेतराम् ॥
इति विज्ञाय कृतवानिमं वंशीधरः कृती ॥ २ ॥
नाभिकंजाभिधपुरे गोकुलेन्द्रनिशान्तके ॥
राज्ये वज्रमृगेन्द्रस्य प्रीतये गोपिकापतेः ॥ ३ ॥

समाप्तोऽयं मातृकाविलासः ।

---

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना-( बम्बई. )

जाहिरात।

# श्रीमहाभारत सटीक मोटे अक्षरका।

महर्षि श्रीवेदव्यास प्रणीत और पंचमवेद संज्ञा होनेसे विशेष प्रशंसा करना निरर्थक है ये वही पुस्तक गणपतकृष्णाजीके छापेकी है जो पूर्वकालमें ८०। ६० रुपयेको मिलताथा उसीको हमने सब लेकर ४० रुपयेमें देते हैं. टपाल महसूल ५ रु० अलग है; परंतु अब थोड़ी पुस्तकें रहगई हैं, महाभारतके प्रेमीलोगोंको शीघ्र लेना चाहिये कुछ कालके पीछे मूल्य अधिक होजायगा. ऐसा ग्रंथ उत्तम छपनेकी आशा कमती है—लीजिये. ट० खर्चा सहित मूल्य पैंतालीस ही ४५ रुपये हैं.

## मिताक्षरा(धर्मशास्त्र)पद योजना तात्पर्य्यार्थ भाषाटीका।

इस असारसंसारमें मर्यादा स्थितीके हेतु अनेक प्राचीन आचार्योंका मत लेकर "आचार" "व्यवहार" प्रायश्चित्त" नामक तीनभागोंमें महर्षि याज्ञवल्क्यजीने भारतवर्षके चतुर्वर्णोंके नीतिपूर्वक स्वधर्ममें तत्पर रहनेके हेतु रचनाकी. आचाराध्यायमें गर्भाधानसे लेकर मरण पर्यन्तके समस्त संस्कार, सबजातियोंकी उत्पत्ति, ब्राह्मणादि चतुर्वर्णोंके धर्माचरण, आठ प्रकारके विवाहोंके लक्षण, भक्ष्याभक्ष्य पदार्थोंका विवेक, दानलेनेदेनेकी विधि, श्राद्ध तथा नवग्रहोंकी शान्ति, राजाओंके धर्माचरण वर्णित हैं।

## शुकसागर अर्थात् श्रीमद्भागवत भाषा।

इसमें शंका समाधान और अनेकानेक दृष्टांत इतिहास तथा उत्तमोत्तम दोहा चौपाई भजन कवित्त मिश्रित सुंदर वार्तिक प्राकृत भाषामें बड़े २ अक्षरोंमें छपी है. आजपर्य्यंत ऐसी उत्तम पुस्तक अन्यत्र कहीं नहीं छपी. कीमत डाक महसूल सहित १२ रु. १० आ० है. प्रतीकके लिये श्लोकांकभी डालेगये हैं॥

# जाहिरात।

## ताजिकनीलकंठी भाषाटीका।

उक्त ग्रंथका भाषानुवाद तीनो तंत्र एकत्रित कर ज्योतिर्विद् पं० महीधरजीने ऐसा कठिन ग्रंथ होनेपरभी ऐसी सरल टीका तथा गूढाशयों का प्रकाश कियाहै कि जिसके द्वारा सामान्य श्रेणीके मनुष्यभी भलीभांति वर्ष जन्मपत्र फलादेश प्रश्नादि बता सकेहैं वैसेही शुद्धतापूर्वक टैपमें चक्र और उदाहरणों सहित उत्तम कागजमें छापी गई है जिसके देखनेसे चित्त प्रसन्न होजायगा और उत्तम विलायती कपडेकी जिल्द बाँधी गईहै. मूल्य केवल १॥ रु० मात्र है

---

## शार्ङ्गधर वैद्यक दत्तराम चौबेकृतभाषाटीकासहित।

यह टीका आढमल्ली और गूढार्थ प्रकाशिका जो इस्की संस्कृतटीका हैं उनके अनुसार भाषाटीका करीगई है. यद्यपि इस ग्रंथकी टीका कई भिषग्वरोंने कीहैं परन्तु इस रीतिसे गूढाशयोंकी टिप्पणी समन्वितकर विस्तार पूर्वक किसीने नहींकीहै तिसपरभी मूल्य केवल तीन ३ रु० रक्खाहै विलायती कपडेकी जिल्द बँधीहै और नया छपाहै।

---

## पातंजलि-योगदर्शन तथा सांख्यदर्शन भाषानुवाद सहित।

देखो! इसपातंजलि सूत्र मात्रका ऐसा पटुत्व और रुचिर भाषानुवाद किया गया है कि पढते २ ग्रंथका आशय चित्तमें चुभ जाता है। मूल्य केवल योगदर्शनका १ रु० और सांख्यदर्शनका १॥ रु० है।

---

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास.

"श्रीवेंकटेश्वर" छापाखाना-मुम्बई.

श्रीः।

# व्याकरणग्रंथोंकी सूचना।

व्याकरणमहाभाष्यम् कैय्यटकृतभाष्यप्रदीपसहित और बाल-शास्त्रिकृतटिप्पणीसमेत किंमत १२ रुपये. कारकसमासतद्धित-दिक् क्रियाकलापः आख्यातचन्द्रिकाधातुरूपभेदः श्लोकयोगनिको-पायः की० ६ आना समासकुवलयाकर नियमोंके साथ उदाहरण की० ४ आना सारस्वतसटीक प्रसादटीका की० १२ आना सारस्वतमूल पूर्वार्द्धजिल्द टाईपका की० ८ आना सारस्वत तीनों-वृत्ति की० १२ आना सारस्वतचंद्रकीर्तिटीकासह परसोत्तम किं० १। रु० कारकवादार्थशब्दबोध व्याकरणन्याय किं० २ आना.

सिद्धांतकौमुदी अष्टाध्यायी, गणपा० धातुपा० लिंगानुशासन पा० और सूत्रसूचीस० अक्षर मोठा की० ४ रु० सिद्धांतकौमुदी अतिउत्तम और बारीक टैपमें छप रहीहै की० २ रु० अष्टाध्या-यी, गणपाठ, धातुपाठ, लिंगानुशासन की० १ रु० लघुसिद्धांत कौमुदी टिप्पण सहित जिल्द मोठे अक्षर की० १२ आ० लघु-सिद्धांतकौमुदी टिप्पणस० ग्लेज छोटा कि० ४ आ०

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास.

"श्रीवेंकटेश्वर" छापाखाना—बंबई.

# जाहिरात.

## भक्तमाला रामरसिकावली ।

उपरोक्त ग्रंथ में सतयुग से कलियुग पर्यन्त चारों युगों के भगवद्भक्तों के जीवनचरित्र रोचक सरल दोहा चौपाई कवित्तादि छन्दों में श्रीमहाराजा साहब रीवांधिपति श्रीरघुराजसिंहदेव जू बहादुर जी ने रचे हैं, काव्य की रोचकता से वांचतेही हृदयमें भक्ति उत्पन्न होजाती है । ग्रंथ पृष्ठ ११५८ में पूर्त्ती है, जिल्द बँधी है । मूल्य केवल ४ रु० मात्र ॥

## महाभारत सबलसिंह १८ पर्व ।

महाशयो ! आजतक यह अमूल्य ग्रंथ जहाँ तहाँ छपा, परन्तु अपूर्ण होनेसे भारतकथाभिलाषियोंका अभीष्टप्रद न हुवा । अतएव हमने वर्षोंसे ढूँढ़ते २ बहुत बड़े परिश्रमसे संपूर्ण ( १८ ) पर्व एकत्रितकर स्वच्छतापूर्वक सुन्दर अक्षरोंमें मुद्रित की है विलायती कपड़ेकी अच्छी जिल्द बंधीहै मूल्य केवल ३ ॥ रु० मात्र रक्खे हैं सर्व सामान्यकी सुगमताके लिये चार भागकर मू० एक एक रु०रक्खाहै.

और भी भाषाकाव्यकी नाना प्रकारकी प्राचीन नवीन पुस्तकें छपकर विक्रयार्थ प्रस्तुत हैं ।

पुस्तक मिलने का ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना

बम्बई.